3.3

महामुनि आदिकवि श्रीवाल्मीकिप्रणीत

श्रीरामायण महाकाव्य

[चतुर्थ भाग]

(४)

अरण्य-काण्ड

हिन्दीअनुवाद व उपसंहार सहित

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

साहित्य-वाचस्पति, गीतालंकार, अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल

आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

प्रथम आवृत्ति

संवत २००७, शके १८७२, सन १९५०

मूल्य ४ रु०

मुद्रक और प्रकाशक
वसंत श्रीपाद सातवळेकर B. A.
भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय-मण्डल,
'आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

अरण्यकाण्डका प्रकाशन

स्वाध्याय मण्डल और उसका मुद्रणालय औंध (जि० सातारा) से किल्ला पारडी (जि० सूरत) लाना पडा। इस स्थान परिवर्तनके लिये एक सवा वर्षका समय लगा। इस कारण औंधमें इसका आधेसे अधिक भाग छप जानेपर भी सम्पूर्ण प्रकाशनमें इतना विलम्ब हुआ। आशा है इसके लिये वाचक क्षमा करेंगे। क्योंकि यह कालातिक्रम अपरिहार्य कारणोंसे हुआ है। अब इससे अगले भाग शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

किल्ला पारडी (जि० सूरत)
१ भाद्रपद संवत् २००७

—प्रकाशक

*



श्रीवाल्मीकि रामायणके

अरण्यकाण्डकी विषयसूची

सर्ग ५, पृ. १६-२२

श्रीराम शरभंग ऋषिके आश्रममें जाते हैं। वहाँ देवसम्राट् इन्द्र आये हुए रहते हैं। इन्द्रका वैभव [१-१९] इन्द्र रामसे बिना मिले ही निकल जाता है तथा 'उचित समय पर मिलूंगा' ऐसा कहता है [२०-३१] शरभंग रामसे सुतीक्ष्ण मुनिसे मिलनेके लिये कहते हैं और देहत्याग करके ब्रह्मलोक चले जाते हैं।

सर्ग ६, पृ. २२-२६

सब ऋषिमुनियोंने रामसे कहा 'जो राजा प्रजाका रक्षण नहीं करते उन्हें पाप लगता है। [१-१५] इन आश्रमोंमें राक्षस हमारा नाश कर रहे हैं। मरे हुए ऋषियोंके ये अस्थि पंजर देखो और हमारी रक्षा करो' [१-१०] राम राक्षसोंसे मुनियोंका रक्षण करनेकी प्रतिज्ञा करता है। [२१-२६]

सर्ग ७, पृ. २६-२९

राम सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमके समीप गये। हरनोंको अपने धनुष बाणसे कोई त्रास न हो पावे, इस बातका वे ध्यान रखते हैं। राम सायं सन्ध्या करते हैं तथा बादमें सायं भोजन करते हैं। [१-२४]

सर्ग ८, पृ. ३०-३१

सुतीक्ष्णमुनिके आश्रममें रामने एक रात बिताई। प्रातः उठकर उन्होंने स्नान किया और सूर्य तेज होनेसे पूर्व ही आगे चलना प्रारम्भ कर दिया। [१-३०]

सर्ग ९, पृ. ३२-३७

सीताका मत– 'राक्षसोंका वध करना उचित नहीं है। सभी राक्षस सदा दुष्ट ही होते हैं, ऐसी बात नहीं है। असत्य भाषण नहीं करना चाहिये। परस्त्री सेवन न करना चाहिये तथा विना शत्रुताके क्रूरता न दिखानी चाहिये। राम वनमें जो राक्षस-वध कर रहे हैं वह ठीक नहीं। [१-१३]

सर्ग १६, पृ. ७१-७८

नवान्न भक्षण करनेके दिन आये। विजयेच्छु राजा इस अवसरपर ससैन्य बाहर निकलते हैं। [१-७] शीतवर्णन। धानके खेत सुवर्ण जैसे दिखाई दे रहे हैं। [८-२०] भरत भूमिपर सोते हैं, तथा थंडे पानीसे प्रातः स्नान करते हैं। [२७-३५]

सर्ग १७, पृ. ८७-८२

राम प्रातःकाल शीतलस्नान करते हैं। शूर्पणखा आती है। उसका रामके साथ संवाद। शूर्पणखा अपना वृत्तान्त कहती है। [१-२८]

सर्ग १८, पृ. ८२-८६

शूर्पणखा काममोहित हो जाती है। उसे राम लक्ष्मणकी ओर भेजते हैं। लक्ष्मणने कहा कि 'मैं दास हूँ, मेरी पत्नी बन जानेपर तू दासी रहेगी' [१-१२]. शूर्पणखाके नाक कान काट दिये गये। [२१-२६]

सर्ग १९, पृ. ८६--९०

विरूप होकर शूर्पणखा खरके पास जाती है खर राक्षस क्रोधसे लाल-पीला हो जाता है। [१-२६]

सर्ग २०, पृ. ९०-९३

राक्षसोंसे युद्ध और उनका संहार। [१२-२२]

सर्ग २१, पृ. ९३-९७

शूर्पणखाका आक्रोश।

सर्ग २२, पृ. ९७--१००

खर १४ हजार राक्षसोंके साथ रामपर आक्रमण करता है। [१-२४]

सर्ग २३-.२४ पृ. १००--११०

खरको अशुभ चिन्ह दिखाई देते हैं। राम लक्ष्मणके साथ सीताको गुहामें सुरक्षित रख देते हैं।

'हे लक्ष्मण दौड़ो' इस प्रकार वह चिल्लाया। तब रामका विश्वास हो गया कि यह सब कपट है। (२१-२७)

सर्ग ४५, पृ. २००–२०६

रामका शब्द सुनकर सीता घबरा गई और 'रामकी सहायताके लिये जाओ' ऐसा लक्ष्मणसे कहने लगी। लक्ष्मणने बहुत कहा कि यह राक्षसी माया है। किन्तु उसका कोई असर न हुआ और सीता लक्ष्मणपर अत्यन्त क्रोधित हुई। वह मनमाने आक्षेप करने लगी। (१-४१)

सर्ग ४६, पृ. २०६–२११

सीताका कठोर भाषण लक्ष्मणको सहन नहीं हुआ। विवश होकर वे रामके पास गये। (१-८) यह देखकर रावण संन्यासीके वेशमें रामके आश्रममें आया। रावण सीताके सौन्दर्यका वर्णन करता है। (९-२३) सीताने रावणको संन्यासी समझकर उसका सत्कार किया। (२४-३७)

सर्ग ४७, पृ.२११-२१८

सीता अपना वृत्तान्त रावणसे कहती है। वह सुननेपर रावण उसे कहता है कि यहाँ वनमें इस प्रकारके कष्ट भोगनेकी अपेक्षा तू मुझसे प्रेम कर। मैं तुम्हारी सेवाके लिये ५००० दासियां सदैव तत्पर रखूंगा। इसपर रावणको सीताने खूब धिक्कारा। (१-५०)

सर्ग ४८, पृ. २१८–२२२

रावण पुनः अपने प्रतापका वर्णन करता है और सीताको वश होनेके लिये कहता है; यह सुनकर सीता उसे पुनः धिक्कारती है। (१-२४)

सर्ग ४९, पृ. २२२–२२७

रावणने सीताको उठा लिया और वह उसे लेजाने लगा। तब सीता लक्ष्मणको पुकारती है। सीताका क्रन्दन सुनकर जटायु उसकी सहायताके लिये आता है (१–४०)



सर्ग ५०, पृ. २२७–२३१

जटायुका रावणको आह्वान। (१-२९)

सर्ग ५१, पृ. २३१–२३७

जटायुका रावणके साथ युद्ध। जटायुने रावणके सारथीको मार गिराया, रथ तोड दिया, घोडे मार डाले, किन्तु अन्तमें रावणने जटायुका वध कर दिया। यह देखकर सीता शोक करती है। (१-४६)

सर्ग ५२, पृ. २३८–२४४

सीताका विलाप, रावणने सीताको उठाकर ले जाना प्रारम्भ किया। ब्रह्मा और ऋषियोंने कहा ‘ हमारा काम बन गया ’ (१-४४)

सर्ग ५३, पृ. २४४–२४७

सीता रावणको चुभनेवाला निषेधात्मक भाषण करती है। (१-२७)

सर्ग ५४, पृ. २४८–२५२

सीता अपने आभूषण वानरके समीप फेंकती है। (१-६) सीताको लेकर रावण लंका नगरीमें पहुँचता है और वह उसे वहाँ सुरक्षित रखता है। रामको मारनेके लिये राक्षस भेजता है। (७-३७)

सर्ग ५५, पृ. २५२-२५७

रावण सीताको अपना वैभव दिखाता है और वशमें होनेका आग्रह करता है। साथही वह समर्थन करता है कि ऐसा करना वेदप्रतिपादित ही है। (१-३७)

सर्ग ५६, पृ. २५७-२६२

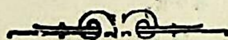
सीता रामकी प्रशंसा करती है और रावण निषेध करता है। (१-३६)

सर्ग ५७, पृ. २६२–२६६

इन्द्र गुप्तरूपसे हविष्यान्न लाकर सीताको देता है। वह देवराज है, इस बातका विश्वास हो जानेपर वह उस अन्नको ग्रहण करती है। (१-२६)

॥ अरण्यकाण्ड समाप्त ॥

अरण्यकाण्डकी समालोचना



श्रीमहामुनि-वाल्मीकि-प्रणीतं

श्री रा मा य ण म्

अरण्यकाण्डम् ।

प्रथमः सर्गः ।

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् ।
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् १
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम् ।
यथा प्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमण्डलम् २
शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा ।
मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम् ३
पूजितं चोपनृत्तं च नित्यमप्सरसां गणैः ४
विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैराजिनैः कुशैः ।
समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् ५
आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम् ।

जितेन्द्रिय, किसीसे भी तिरस्कृत न होनेवाले रामने बडे गहन दण्डक वनमें प्रवेश कर तपस्वियोंके आश्रमसमूहको देखा, जो कुशा तथा वल्कलके वस्त्रोंसे व्याप्त, ब्रह्मतेजकी कान्तिसे सम्पन्न और आकाशमण्डलमें प्रदीप्त सूर्यमण्डलके सदृश देखनेमें कठिन, सब प्राणियोंका रक्षक, सदा निर्मल आंगनवाला, बहुतसे मृगोंसे भरा हुआ, पक्षिसमूहसे आच्छादित, नित्य अप्सराओंके नृत्यसे युक्त अतएव उनसे सत्कृत, बडे बडे अग्निहोत्रके घरों, स्रुवादि यज्ञपात्रों, मृगछालाओं, कुशों, समिधा, जलसे पूर्ण कलश, फूल, मूल, वनके बडे बडे वृक्ष और स्वादु फलोंसे युक्त, भूतबलि और

बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ६
पुष्पैश्चान्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया ।
फलमूलाशनैर्दान्तैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः ७
सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम् ।
पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ८
तद्ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ।
ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ९
तद् दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ।
अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः १०
दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ।
अभिजग्मुस्तदा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् ११
ते तु सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणम् ।
लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा तु वैदेहीं च यशस्विनीम् १२
मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः ।

वैश्वदेवादि होमसे सत्कृत, वेदके शब्दोंसे गुञ्जायमान, पूजार्थ लाये वनके पुष्पों और कमलसहित तडागोंसे व्याप्त, फल मूलोंके खानेवाले, दमनशील, छाल और मृगछालाके वस्त्र धारण किये हुए, सूर्य तथा अग्निके समान कान्तिवाले, वृद्ध मुनियोंसे युक्त, बडे पवित्र और अल्पाहारी महर्षियोंसे शोभित, वेदमन्त्रोंके शब्दसे घोषित, परब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणोंसे अलङ्कृत वह ब्रह्मलोकके तुल्य था । (१–९)

बडे तेजस्वी श्रीमान् रामचन्द्र उस तपस्वियोंकी मण्डलीको देखकर धनुषसे प्रत्यञ्चा उतार कर उनके समीप गये, दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न वे महर्षि राम और यशस्विनी सीताको देख कर बडे प्रसन्न हुए और उनके सम्मुख आये । धर्मात्मा महर्षियोंने उदय हुए चन्द्रमाके समान राम, लक्ष्मण और यशस्विनी सीताको देखकर शुभाशीर्वाद देते हुए अटल व्रतधारी मुनियोंने उन्हें स्वीकार किया । तदनन्तर वे सब वनवासी रामचन्द्रके शरीरकी दृढता, सुन्दरता और सुकुमारताको देखकर बडे

रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् १३
ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ।
वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव १४
आश्चर्यभूतान्ददृशुः सर्वे ते वनवासिनः ।
अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रताः १५
अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ।
ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः १६
आजह्रुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः ।
मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः १७
मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मनः ।
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते तु प्राञ्जलयोऽब्रुवन् १८
धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यश्च महायशाः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः १९
इन्द्रस्यैव चतुर्भागः प्रजा रक्षति राघव ।
राजा तस्माद्वरान्भोगान्रस्यान्भुङ्क्ते नमस्कृतः २०

विस्मित हुए और राम, लक्ष्मण तथा सीताको जो कि आश्चर्यभूत थे, न मिचते हुए नेत्रोंसे एक टक देखने लगे। बडे भाग्यशील उन तपस्वियों-ने सब प्राणियोंके हितमें लगे हुए अतिथि रामको पर्णशालामें टिका दिया। तत्पश्चात् अग्नितुल्य तेजस्वी महाभाग ऋषियोंने रामका विधिपूर्वक सत्कार कर उन्हें जल दिया और तदनु वे धर्मात्मा मङ्गल वचन प्रयुक्त करते हुए बडे प्रफुल्लित हुए। (१०–१७)

धर्मके जाननेवाले वे ऋषि लोग महात्मा रामको वनोत्पन्न मूल पुष्प, फल और आश्रम निवेदन कर हाथ जोड बोले– "हे राम ! आपही सब वर्णाश्रम-धर्मोंके पालक मुनिजनोंके रक्षक, यशस्वी पूजनीय सत्कार-के योग्य हैं, क्योंकि राजा दण्डके धारण करनेवाला होनेसे सबका गुरु होता है। हे राम ! राजा इन्द्रका चतुर्थांश होता है, प्रजाकी रक्षा करता है और सब उत्तम भोगोंको भोगता है, अतएव लोकको नमस्करणीय

❀

ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः ।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः २१
न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
रक्षणीयास्त्वया शश्वद्गर्भभूतास्तपोधनाः २२
एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैरन्यैश्च राघवम् ।
वन्यैश्च विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन् २३
तथाऽन्ये तापसाः सिद्धा रामं वैश्वानरोपमाः ।
न्यायवृत्ता यथान्यायं तर्पयामासुरीश्वरम् २४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥ [२४]

द्वितीयः सर्गः ।

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
आमन्त्र्य स मुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत १
नानामृगगणाकीर्णमृक्षशार्दूलसेवितम्
ध्वस्तवृक्षलतागुल्मं दुर्दर्शसलिलाशयम् २

होता है। इसलिये आपके देशवासी होनेसे हमारी आपको रक्षा करनी चाहिये। आप नगरमें रहें, चाहे वनमें, हमारे राजा आपही हैं। हे राजन्! हमने क्रोध तथा इन्द्रियोंके जीत लेनेसे दण्ड देना छोड दिया, अतः आपकी प्रजातुल्य हम तपस्वियोंकी भी आपको रक्षा करनी उचित है।" ऐसा कहकर उन मुनियोंने वनके फल, मूल, पुष्प तथा अन्य विविध प्रकारके भोजनोंसे लक्ष्मणसहित रामका सत्कार किया। इसी प्रकार श्रेष्ठाचारी अग्निके तुल्य तेजस्वी अन्य तपस्वी तथा सिद्ध पुरुषोंने भी स्तुत्यादिसे यथोचित रामकी पूजा की। (१८–२४)

यहाँ प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥ १ ॥

रामचन्द्र वहां इस प्रकार अतिथिसत्कार पाकर सूर्योदय होनेपर सब मुनिजनोंसे आज्ञा ले वनमें विचरने लगे। लक्ष्मणके सहित रामने उस वनका बीच देखा तो अनेक प्रकारके मृगोंसे भरा हुआ, सिंह व्याघ्रादि हिंसक पशुओंसे युक्त, टूटे फूटे वृक्ष, बेल और गुच्छोंवाला

निष्कूजमानशकुनि झिल्लिकागणनादितम् ।
लक्ष्मणानुचरो रामो वनमध्यं ददर्श ह ३
सीतया सह काकुत्स्थस्तास्मिन्घोरमृगायुते ।
ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम् ४
गभीराक्षं महावक्त्रं विकटं विकटोदरम् ।
बीभत्सं विषमं दीर्घं विकृतं घोरदर्शनम् ५
वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्यमिवान्तकम् ६
त्रीन्सिंहांश्चतुरो व्याघ्रान्द्वौ वृकौ पृषतान्दश ।
सविषाणं वसादिग्धं गजस्य च शिरो महत् ७
अवसज्ज्यायसे शूले विनदन्तं महास्वनम् ।
स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वा च मैथिलीम् ८
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः ।
स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ९

कठिनतासे देखनेयोग्य, तालाब युक्त था, तथा विना बोलते हुए जिसमें अनेक प्रकारके पक्षी थे और झींगरोंके शब्दसे गुञ्जायमान था। सीताके सहित रामने उस भयङ्कर मृगवाले वनमें पर्वतके शिखरतुल्य पुरुषोंके खानेवाले और घोर शब्द करते हुए एक राक्षसको देखा। जिसकी आंख गहरी, बडा विकट मुख, उंचा नीचा पेट था, अतिभयङ्कर, छोटे बडे अङ्गोवाला, बडा लम्बायमान, विकारयुक्त और बुरे दर्शनका था। चरबीसे गीली और रुधिरसे भीगी हुई व्याघ्रकी खाल ओढे हुए, सब प्राणियोंको भयप्रद, यमराजके समान मुख फाडे हुए था और जो तीन सिंह, चार व्याघ्र, दो भेडिये, दश चीतल मृग, दांतोंके सहित चरबीसे लिपटे हस्तीके बडे शिरको लोहेके शूलमें बांधकर लिये हुए भयंकर शब्द करता था। (१-८)

वह राम, लक्ष्मण और जनकनन्दिनी सीताको देखकर कुपित हो ऐसा दौडा जैसा प्रलयकालमें प्रजाके सम्मुख यमराज। वह घोर शब्द कर पृथ्वीको

अङ्केनादाय वैदेहीमपक्रम्य तदाऽब्रवीत् ।
युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ १०
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिपाणिनौ ।
कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह ११
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ ।
अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः १२
चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन् ।
इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति १३
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे ।
तस्यैवं ब्रुवतो दुष्टं विराधस्य दुरात्मनः १४
श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं संभ्रान्ता जनकात्मजा ।
सीता प्रवेपितोद्वेगात्प्रवाते कदली यथा १५
तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता । १६
पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसंभवाम् ।
मम भार्यां शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम् १७

कंपाता हुआ सीताको गोदमें ले और कन्धोंपर चढा रामचन्द्रजीसे बोला-
"जटा-वल्कल धारण किये, धनुष बाण तलवार हाथमें लिये हुए तुम दोनों स्त्रीसहित इस दण्डक वनमें चले आये, अतः अब तुम्हारा जीवन कोई क्षणमात्रकाही है। तुम दो तपस्वियोंका एक स्त्रीके साथ रहना कैसा है? अधर्माचरणकर्ता, पापी और मुनियोंको दूषित करनेवाले तुम दोनों कौन हो? यह वन बडा दुर्गम है। मैं विराध नामक राक्षस हूं। नित्य ऋषियोंका मांस खाता हुआ सशस्त्र इस वनमें विचरता हूं। यह सुन्दर नारी मेरी भार्या होगी और मैं युद्धमें तुम दोनों पापियोंका रुधिरपान करूंगा।" (८-१४)

इस प्रकार कुवाक्य कहते हुए उस दुष्टात्मा विराधके इस साभिमान वचनको सुनकर जनकपुत्री सीता भयसे ऐसे कांपने लगी जैसे प्रचण्ड

अत्यन्तसुखसंवृद्धां राजपुत्रीं यशस्विनीम्।
यदभिप्रेतमस्मासु प्रियं वरवृतं च यत् १८
कैकेयास्तु सुसंवृत्तं क्षिप्रमद्यैव लक्ष्मण।
या नु तुष्यति राज्येन पुत्रार्थे दीर्घदर्शिनी १९
ययाहं सर्वभूतानां प्रियः प्रस्थापितो वनम्।
अद्येदानीं सकामा सा या माता मध्यमा मम २०
परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे।
पितुर्विनाशात्सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा २१
इति ब्रुवति काकुत्स्थे बाष्पशोकपरिप्लुतः।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धो रुद्धो नाग इव श्वसन् २२
अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः।
मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्यसे २३
शरेण निहतस्याद्य मया क्रुद्धेन रक्षसः।
विराधस्य गतासोर्हि मही पास्यति शोणितम् २४

वायुसे केला! रामचन्द्र विराधकी गोदमें प्राप्त सुन्दर सीताको देखकर उदासमुख हो लक्ष्मणसे बोले, "हे सौम्य! जनकराजाकी पुत्री शुद्धाचरण करनेवाली मेरी भार्या सीताको विराध राक्षसकी गोदमें बैठी हुई देखो। जो बडी यशस्विनी, सुखसे पालन की हुई और राजपुत्री है। हे लक्ष्मण! कैकेयीका हमारे विषयमें वरके कपटसे मांगा हुआ जो अभिप्राय था, वह अभी फलीभूत हो गया। जो दूरके सोचनेवाली पुत्रके लिये राज्यसे तृप्त न हुई किन्तु जिसने प्राणिमात्रके हितमें लगे हुए मुझको वनमें भिजवा दिया, उस मेरी बिचली माताका मनोरथ आज पूर्ण हो गया। हे लक्ष्मण! सीताका दूसरेसे छुए जानेका जैसा मुझे अति दुःख है, वैसा पिताके वियोग और राजहरणसे नहीं।" (१४–२१)

शोकके आंसुओंसे भरे हुए रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर मन्त्रद्वारा रुके हुए सर्पके समान श्वास लेता और कुपित हुआ लक्ष्मण बोला-"हे काकुत्स्थ! इन्द्रके तुल्य सब भूतोंके स्वामी! आप मुझ सेवकके होते हुए अनाथवत्

राज्यकामे मम क्रोधो भरते यो बभूव ह।
तं विराधे विमोक्ष्यामि वज्री वज्रमिवाचले २५
मम भुजबलवेगवेगितः पततु शरोऽस्य महान्महोरसि।
व्यपनयतु तनोश्च जीवितं पततु ततश्च महीं विघूर्णितः २६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥ [५०]

तृतीयः सर्गः ।

अथोवाच पुनर्वाक्यं विराधः पूरयन्वनम्।
पृच्छतो मम हि ब्रूतं कौ युवां क्व गमिष्यतः १
तमुवाच ततो रामो राक्षसं ज्वलिताननम्।
पृच्छन्तं सुमहातेजा इक्ष्वाकुकुलमात्मनः २
क्षत्रियौ वृत्तसंपन्नौ विद्धि नौ वनगोचरौ।
त्वां तु वेदितुमिच्छावः कस्त्वं चरसि दण्डकान् ३
तमुवाच विराधस्तु रामं सत्यपराक्रमम्।
हन्त वक्ष्यामि ते राजन्निबोध मम राघव ४

क्यों विलाप करते हैं ? क्रुद्ध हुए मेरे बाणसे इस विराध राक्षसके रुधिरको यह भूमि पियेगी। राज्यकी कामनावाले भरतपर जो मेरा क्रोध था अब उसे इस विराधपर इस प्रकार छोड़ूँगा जैसे इन्द्र पर्वतके ऊपर वज्र छोडता है। मेरी भुजाओंके बलके वेगसे वेगयुक्त हुआ बाण इसके बडे हृदयपर पडेगा, इसका जीव शरीरसे दूर हो जावेगा और तदनन्तर यह घूमता हुआ पृथ्वीपर पडेगा।" (२२-२४)

यहाँ द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ॥ २ ॥

वह विराध अपने वचनसे सम्पूर्ण वनको गुञ्जायमान करता हुआ फिर बोला कि "मैं तुमसे पूछता हूं वह कहो। तुम दोनों कौन हो और कहां जाना चाहते हो?" उसके ऐसा कहनेपर प्रज्वलित मुखवाले और पूछते हुए उस राक्षससे अपना इक्ष्वाकु-कुल बतलाते हुए बडे तेजस्वी राम बोले- "शुद्धाचरणयुक्त वनमें विचरनेवाले हम दोनोंको तू क्षत्रिय जान और हम तुझसे यह पूछना चाहते हैं कि तू कौन है जो दण्डक

पुत्रः किल जवस्याहं माता मम शतह्रदा।
विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः ५
तपसा चाभिसंप्राप्ता ब्रह्मणो हि प्रसादजा।
शस्त्रेणावध्यता लोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेव च ६
उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम्।
त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे ७
तं रामः प्रत्युवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः।
राक्षसं विकृताकारं विराधं पापचेतसम् ८
क्षुद्र धिक्त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम्।
रणे प्राप्स्यसि संतिष्ठ न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ९
ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान्।
सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह १०
धनुषा ज्यागुणवता सप्त बाणान्मुमोच ह।
रुक्मपुङ्खान्महावेगान्सुपर्णानिलतुल्यगान् ११

वनमें विचरता है ?" विराध सत्यपराक्रमी रामसे बोला कि "मैं तुझसे अपना वृत्तान्त कहता हूं। हे राघव ! तू मुझसे उसे विदित कर। मैं जव नामक राक्षसका पुत्र हूं, मेरी माताका नाम शतह्रदा है और पृथिवीपर सब राक्षस मुझे विराध नामसे पुकारते हैं। तप और ब्रह्माके वरसे न कोई मुझे शस्त्रसे मार सकता है, न काट सकता और न भेदन कर सकता है। अतः तुम इस स्त्रीको छोडकर और इसकी इच्छा न करते हुए जैसे आये हो शीघ्र चले जाओ, अन्यथा जीवित नहीं रह सकते।" (१--७)

कोपसे रक्तनेत्र हो राम उस घोराकार पापात्मा विराध राक्षससे यह बोले- "हे अधम ! नीच कर्म करनेवाले तुझको धिक्कार है। निश्चय तू मृत्युको तलाश करता है। तू रणमें अवश्य मृत्युको प्राप्त होगा। खडा रह, मुझसे तू जीता नहीं जा सकता।" तदनन्तर रामने धनुष्पर रोदा चढाकर बहुत शीघ्रतासे बडे तीक्ष्ण बाणोंको उस राक्षसपर छोडा। रोदा चढे धनुष्यसे सुवर्णके पंखयुक्त गरुड और वायुके समान वेगवाले बडे तेज

ते शरीरं विराधस्य भित्त्वा बार्हिणवाससः ।
निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां पावकोपमाः १२
स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः ।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम् १३
स विनद्य महानादं शूलं शक्रध्वजोपमम् ।
प्रगृह्याशोभत तदा व्यात्तानन इवान्तकः १४
अथ तौ भ्रातरौ दीप्तं शरवर्षं ववर्षतुः ।
विराधे राक्षसे तस्मिन्कालान्तकयमोपमे १५
स प्रहस्य महारौद्रः स्थित्वाजृम्भत राक्षसः ।
जृम्भमाणस्य ते बाणाः कायान्निष्पेतुराशुगाः १६
स्पर्शात्तु वरदानेन प्राणान्संरोध्य राक्षसः ।
विराधः शूलमुद्यम्य राघवावभ्यधावत १७
तच्छूलं वज्रसंकाशं गगने ज्वलनोपमम् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः १८
तद्रामविशिखैश्छिन्नं शूलं तस्यापतद्भुवि ।
पपाताशनिना च्छिन्नं मेरोरिव शिलातलम् १९

सात बाण छोडे । मोरकी पुच्छके समान विचित्र वर्ण, अग्नितुल्य तेजस्वी वे बाण विराधके शरीरको बींध कर रुधिरसे लिप्त पृथिवीमें गिरे । बाणोंसे बिंधा विराध सीताको बैठा, शूल उठाकर, कुपित हो, राम और लक्ष्मणके सम्मुख दौडा । वह बडा भयंकर शब्द कर इन्द्रकी ध्वजाके समान शूलको ग्रहण कर ऐसा शोभित हुआ जैसा मुख फाडे यमराज हो ! तब उन दोनों भाई राम, लक्ष्मणने प्रलयकालमें यमके तुल्य उस विराध राक्षसपर बडी प्रचण्ड बाणोंकी वर्षा की । (८–१५)

बडे भयंकर उस राक्षसने हंस कर और खडा होकर जंभाई ली । तब जंभाई लेते हुए उसके शरीरसे बडे तीव्रगामी वे बाण बाहर निकल पडे । वरदानके सम्बन्धसे वह राक्षस प्राणोंको रोककर, शूल उठा रामचन्द्रके सम्मुख दौडा । शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ रामने आकाशमें जलते हुए वज्रतुल्य उस

तौ खड्गौ क्षिप्रमुद्यम्य कृष्णसर्पाविवोद्यतौ।
तूर्णमापेततुस्तस्य तदा प्रहरतां बलात् २०
स वध्यमानः सुभृशं भुजाभ्यां परिगृह्य तौ।
अप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत २१
तस्याभिप्रायमाज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
वहत्वयमलंतावत्पथानेन तु राक्षसः २२
यथा चेच्छति सौमित्रे तथा वहतु राक्षसः।
अयमेव हि नः पन्था येन याति निशाचरः २३
स तु स्वबलवीर्येण समुत्क्षिप्य निशाचरः।
बालाविव स्कन्धगतौ चकारातिबलोद्धतः २४
तावारोप्य ततः स्कन्धं राघवौ रजनीचरः।
विराधो विनदन्घोरं जगामाभिमुखो वनम् २५
वनं महामेघनिभं प्रविष्टो द्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम्।
नानाविधैः पक्षिकुलैर्विचित्रं शिवायुतं व्यालमृगैर्विकीर्णम् २६
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥ [७६]

शूलको दो बाणोंसे काट दिया। रामके बाणसे कटा हुआ वह शूल उसके हाथसे इस प्रकार गिर गया जैसे सुमेरु पर्वतसे वज्रसे कटी हुई शिला। फिर राम और लक्ष्मणने काले सर्पके समान बडे सुन्दर दो खड्ग शीघ्र उठाकर वेगसे आते हुए राक्षसके ऊपर प्रहार किये। (१६--२०)

इस प्रकार मारे जाते हुए भी विराध राक्षसने बडे गम्भीर मनुष्योंमें सिंहसदृश राम-लक्ष्मणको भुजाओंसे पकड कहीं दूर ले जानेकी इच्छा की। उसके इस अभिप्रायको जानकर रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले कि, "अच्छा हो, यह राक्षस इसी मार्गसे हमें ले जावे। हे लक्ष्मण! यह राक्षस जो चाहता है उसी मार्गसे ले जाये, क्योंकि यही तो हमारे जानेका मार्ग है जिससे यह जा रहा है।" उसने अपने बलवीर्यसे बडे बली राम लक्ष्मणको बालकोंके समान उठा कर कन्धेपर बैठा लिया। तदनन्तर वह विराध राक्षस राम-लक्ष्मणको कन्धोंपर चढा कर घोर शब्द करता हुआ वनके सम्मुख

चतुर्थः सर्गः ।

ह्रियमाणौ तु काकुत्स्थौ दृष्ट्वा सीता रघूत्तमौ ।
उच्चैः स्वरेण चुक्रोश प्रगृह्य सुमहाभुजौ १
एष दाशरथी रामः सत्यवाञ्छीलवाञ्शुचिः ।
रक्षसा रौद्ररूपेण ह्रियते सहलक्ष्मणः २
मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा ।
मां हरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम ३
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
वेगं प्रचक्रतुर्वीरौ वधे तस्य दुरात्मनः ४
तस्य रौद्रस्य सौमित्रिः सव्यं बाहुं बभञ्ज ह ।
रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः ५
स भग्नबाहुः संविग्नः पपाताशु विमूर्च्छितः ।
धरण्यां मेघसंकाशो वज्रभिन्न इवाचलः ६
मुष्टिभिर्बाहुभिः पद्भिः सूदयन्तौ तु राक्षसम् ।
उद्यम्योद्यम्य चाप्येनं स्थण्डिले निष्पिपेषतुः ७

चल दिया । तदनन्तर वह राक्षस मेघके समान सघन, अनेक प्रकारके बडे बडे वृक्षोंसे युक्त, विविध प्रकारके पक्षियोंसे मनोहर और शृगाली तथा दुष्ट मृगोंसे भरे हुए उस वनमें प्रवेश कर गया। (२१–२६)

यहाँ तृतीय सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

सुन्दर भुजावाली सीता राक्षससे हरण किये हुए राम-लक्ष्मणको देखकर भुजा पकडके ऊंचे स्वरसे चिल्लाने लगी। "यह भयानक रूप राक्षस सत्यवक्ता, अच्छे स्वभाव और शुद्धाचरणवाले राम-लक्ष्मणको हरण कर ले जा रहा है। मुझको यहां चीते, सिंह और व्याघ्र खा जायंगे। हे राक्षस-श्रेष्ठ ! मैं तुझे नमस्कार करती हूं। राम—लक्ष्मणको छोड दे और मुझे हरण कर ले जा।" सीताके ऐसे दीन वचन सुनकर बडे वीर राम-लक्ष्मणने उस दुष्टात्माके मारनेमें बडी शीघ्रता की। लक्ष्मणने उस भयंकर रूप राक्षसकी बाईं भुजा और रामचन्द्रने सीधी बडे वेगसे तोड दी।

स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः ।
निष्पिष्टो बहुधा भूमौ न ममार स राक्षसः ८
तं प्रेक्ष्य रामः सुभृशमवध्यमचलोपमम् ।
भयेष्वभयदः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ९
तपसा पुरुषव्याघ्र राक्षसोऽयं न शक्यते ।
शस्त्रेण युधि निर्जेतुं राक्षसं निखनावहे १०
कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण ।
वनेऽस्मिन्सुमहच्छ्वभ्रं खन्यतां रौद्रवर्चसः ११
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति ।
तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान् १२
तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं राक्षसः प्रश्रितं वचः ।
इदं प्रोवाच काकुत्स्थं विराधः पुरुषर्षभम् १३
हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै ।
मया तु पूर्वं त्वं मोहान्न ज्ञातः पुरुषर्षभ १४

भुजा कट जानेसे विकल हुआ मेघसदृश यह राक्षस पृथ्वीपर बहुत शीघ्रतासे इस प्रकार गिरा जैसे वज्रसे टूटा हुआ पर्वत। फिर मुष्टि, घुटने और पावोंसे मारते हुए राम-लक्ष्मणने राक्षसको उठा उठा कर पृथ्वीमें पीसा। वह राक्षस इस प्रकार बहुतसे बाणोंसे बिंधा, तलवारोंसे कटा और पृथ्वीमें मर्दन किया हुआ भी न मरा। (१-८)

तब शत्रुओंको भी अभय देनेवाले श्रीमान् रामचन्द्र उसे पर्वतके समान अवध्य देखकर लक्ष्मणसे यह बोले- "हे पुरुषश्रेष्ठ ! तपके प्रभावसे यह राक्षस संग्राममें शस्त्रसे नहीं जीता जा सकता, अतः इसे पृथ्वीमें गाड देना चाहिये। हे लक्ष्मण ! दुष्ट हस्तीके समान घोराकार और बडे पराक्रमी इस राक्षसके लिये इस वनमें बडा गढा खोदिये।" बडे वीर राम लक्ष्मणसे यह कहकर कि- 'गढा खोदिये' पांवसे उस राक्षसका गला दबाकर खडे हो गये। वह विराध रामके कहे इस वचनको सुनकर ककुत्स्थ-कुलोत्पन्न पुरुषोत्तम रामचन्द्रसे यह बोला-"हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं आपके इन्द्रके

कौसल्या सुप्रजास्तात रामस्त्वं विदितो मया ।
वैदेही च महाभागा लक्ष्मणश्च महायशाः १५
अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसीं तनुम् ।
तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः शप्तो वैश्रवणेन हि १६
प्रसाद्यमानश्च मया सोऽब्रवीन्मां महायशाः ।
यदा दाशरथी रामस्त्वां वधिष्यति संयुगे १७
तदा प्रकृतिमापन्नो भवान्स्वर्गं गमिष्यति ।
अनुपस्थीयमानो मां स क्रुद्धो व्याजहार ह १८
इति वैश्रवणो राजा रम्भासक्तमुवाच ह ।
तव प्रसादान्मुक्तोऽहमभिशापात्सुदारुणात् १९
भुवनं स्वं गमिष्यामि स्वस्ति वोऽस्तु परंतप ।
इतो वसति धर्मात्मा शरभङ्गः प्रतापवान् २०
अध्यर्धयोजने तात महर्षिः सूर्यसंनिभः ।
तं क्षिप्रमभिगच्छ त्वं स ते श्रेयोऽभिधास्यति २१

समान पराक्रमसे निहत हो गया हूं। मैंने पहले अज्ञानसे यह नहीं जाना कि आप पुरुषोत्तम हैं। हे राम ! कौसल्या सुपुत्रवती है। हे तात! मैंने जान किया कि आप राम हैं, यह महाभागा सीता है और ये बड़े यशस्वी लक्ष्मण हैं। मुझे शापसे यह घोर राक्षसी देह मिला था। मैं तुम्बुरु नामक गन्धर्व हूं और कुबेरने मुझे शाप दिया था। (९–१६)

" फिर प्रसन्न किये जानेपर बडे यशस्वी कुबेरने मुझसे कहा कि जब दशरथपुत्र राम तुझको सङ्ग्राममें मारेंगे, तब तू अपना गन्धर्वस्वरूप प्राप्त कर स्वर्गको जायगा। हे पापरहित ! इस प्रकार रम्भा अप्सरामें आसक्त मुझको अपनी यथासमय सेवाके न होनेसे क्रुद्ध हुए राजा वैश्रवणने यह शाप दिया था। अब मैं आपकी प्रसन्नतासे इस घोर शापसे मुक्त हो अपने स्वर्गलोकको जाऊंगा। हे परन्तप ! आपका कल्याण हो। हे तात ! यहांसे छः कोसकी दूरी पर धर्मात्मा, प्रतापी और सूर्यके समान तेजस्वी महर्षि शरभङ्ग रहते हैं। आप शीघ्र उनके समीप जाइये, वे आपका शुभ करेंगे।

अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज ।
रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः २२
अवटे ये निधीयन्ते तेषां लोकाः सनातनाः ।
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं विराधः शरपीडितः २३
बभूव स्वर्गसंप्राप्तो न्यस्तदेहो महाबलः ।
तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं लक्ष्मणं व्यादिदेश ह २४
कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण ।
वनेऽस्मिन्सुमहाञ्छ्वभ्रः खन्यतां रौद्रकर्मणः २५
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति ।
तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान् २६
ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम् ।
अखनत्पार्श्वतस्तस्य विराधस्य महात्मनः २७
तं मुक्तकण्ठमुत्क्षिप्य शङ्कुकर्णं महास्वनम् ।
विराधं प्राक्षिपच्छ्वभ्रे नदन्तं भैरवस्वनम् २८
तमाहवे दारुणमाशुविक्रमौ स्थिरावुभौ संयति रामलक्ष्मणौ ।
मुदान्वितौ चिक्षिपतुर्भयावहं नदन्तमुत्क्षिप्य बलेन राक्षसम् २९

हे राम ! आप मुझको इस गढेमें गाडकर कुशलपूर्वक प्रस्थान कीजिये । मरे हुए राक्षसोंका यह सनातन धर्म है कि जो मृत राक्षस गढेमें डाल दिये जाते हैं, उन्हें अच्छे लोक प्राप्त होते हैं ।" बाणसे पीडित विराध रामसे ऐसा कह कर वह बली शरीर त्यागकर स्वर्गवासी हो गया । (१७-२४)

उसका यह वचन सुनकर रामने लक्ष्मणको आज्ञा दी कि "हे लक्ष्मण ! दुष्ट वनगजके समान घोर कर्म करनेवाले इस राक्षसके लिये इस वनमें बहुत बडा गढा खोदो ।" रामचंद्र लक्ष्मणसे "गढा खोदो" यह कर विराधके कण्ठको पांवसे दबाकर खडे हो गये । तदनन्तर लक्ष्मणने कसला लेकर उस महात्मा विराधके पासमें उत्तम गढा खोदा । तब रामने उसके कण्ठसे पांव हटा गधेके समान कानवाले, भयंकर शब्द करते हुए विराधको गढेमें डाल दिया । वेगसे प्रहार करनेवाले बडे दृढ

अवध्यतां प्रेक्ष्य महासुरस्य तौ शितेन शस्त्रेण तदा नरर्षभौ ।
समर्थ्य चात्यर्थविशारदावुभौ बिले विराधस्य वधं प्रचक्रतुः ३१
स्वयं विराधेन हि मृत्युमात्मनः प्रसह्य रामेण यथार्थमीप्सितः ।
निवेदितः काननचारिणा स्वयं न मे वधः शस्त्रकृतो भवेदिति ३२
तदेव रामेण निशम्य भाषितं कृता मतिस्तस्य बिलप्रवेशने ।
बिलं च तेनातिबलेन रक्षसा प्रवेश्यमानेन वनं विनादितम् ३३
प्रहृष्टरूपाविव रामलक्ष्मणौ विराधमुर्व्यां प्रदरे निपात्य तम् ।
ननन्दतुर्वीतभयौ महावने दिवि स्थितौ चन्द्रदिवाकराविव ३४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥४ [१०९]

पञ्चमः सर्गः ।

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने ।
ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान् १
अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ।

और हर्षयुक्त राम-लक्ष्मणने संग्राममें परास्त किये और भयके शब्द करते हुए उस राक्षसको उठाकर गढेमें डाल दिया । नरश्रेष्ठ राम-लक्ष्मणने तीक्ष्ण शस्त्रसे उसका वध न देखकर तब बडे नीतिनिपुण उन दोनोंने बिलमें डालकरही उसका वध किया । (२४–३१)

स्वयं विराधकोही रामके द्वारा अपना वध ईप्सित था, अतः उस वनचारीने रामसे स्वयं निवेदन कर दिया था कि मेरा वध शस्त्रसे नहीं हो सकता । रामने उसका वही वचन सुनकर उसको बिलमें पाटनेका विचार किया । रामके द्वारा बिलमें प्रवेश कराये जाते हुए उस बली राक्षसने अपने घोर चिल्लानेसे बिल और वन दोनोंको गुञ्जायमान कर दिया । आनन्दसे रोमाञ्चित राम–लक्ष्मण विराधको पृथ्वीके गढेमें डालकर बडे प्रसन्न हो, आकाशस्थित सूर्य–चन्द्रमाके समान वनमें निर्भय विहार करने लगे । (३१–३३)

यहाँ चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

रामचन्द्र बडे बली विराध राक्षसको मार, सीताको प्रेमसे लिपटा

कष्टं वनमिदं दुर्गं न च स्मो वनगोचराः २
अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम्।
आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह ३
तस्य देवप्रभावस्य तपसा भावितात्मनः।
समीपे शरभङ्गस्य ददर्श महदद्भुतम् ४
विभ्राजमानं वपुषा सूर्यवैश्वानरप्रभम्।
रथप्रवरमारूढमाकाशे विबुधानुगम् ५
असंस्पृशन्तं वसुधां ददर्श विबुधेश्वरम्।
संप्रभाभरणं देवं विरजोऽम्बरधारिणम् ६
तद्विधैरेव बहुभिः पूज्यमानं महात्मभिः।
हरितैर्वाजिभिर्युक्तमन्तरिक्षगतं रथम् ७
ददर्शादूरतस्तस्य तरुणादित्यसंनिभम्।
पाण्डुराभ्रघनप्रख्यं चन्द्रमण्डलसंनिभम ८
अपश्यद्विमलं छत्रं चित्रमाल्योपशोभितम्।

और समझा कर बडे तेजस्वी लक्ष्मणसे बोले– "यह वन बडा कष्टप्रद तथा दुर्गम है और न कभी हमने वन देखे, अतः शीघ्रही महात्मा शरभङ्गके समीप चलें, जिसका तपही धन है।" देवताके समान प्रभाव-शाली, तपसे शुद्धान्तःकरण महात्मा शरभङ्गके आश्रमको राम चल दिये। वहां रामने शरभङ्गके आश्रमके समीप एक बडा आश्चर्यजनक यह दृश्य देखा कि शरीरसे दैदीप्यमान, सूर्य और अग्निके समान कान्तिवाले, रथसे उतरकर पृथ्वीको न छूते हुए और अन्यदेवता भी जिसके साथ पीछे पींछे आते थे, ऐसे देवराज इन्द्रको देखा, जो अच्छी कान्तिवाले आभूषण और उज्ज्वल वस्त्र धारण किये हुए था और स्वसदृशही अलंकृत अन्य महात्माओंसे भी पूजित था, और उसके पासमेंही वेगवाले अश्वोंसे युक्त, सूर्यसमान कान्तिवाले और आकाशमें ठहरे हुए रथको देखा। (१-७)

सफेद रंगके मेघोंके तुल्य, चन्द्रमण्डलके सदृश, विचित्र वर्णकी मालाओंसे शोभित श्वेत वर्णका उज्ज्वल छत्र देखा। बहुमूल्य, सुवर्णके

चामरव्यजने चाग्न्ये रुक्मदण्डे महाधने ९
गृहीते वरनारीभ्यां धूयमाने च मूर्धनि ।
गन्धर्वामरसिद्धाश्च बहवः परमर्षयः १०
अन्तरिक्षगतं देवं गीर्भिरग्र्याभिरैडयन् ।
सह संभाषमाणे तु शरभङ्गेन वासवे ११
दृष्ट्वा शतक्रतुं तत्र रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
रामोऽथ रथमुद्दिश्य भ्रातुर्दर्शयताद्भुतम् १२
अर्चिष्मन्तं श्रिया जुष्टमद्भुतं पश्य लक्ष्मण ।
प्रतपन्तमिवादित्यमन्तरिक्षगतं रथम् १३
ये हयाः पुरुहूतस्य पुरा शक्रस्य नः श्रुताः ।
अन्तरिक्षगता दिव्यास्त इमे हरयो ध्रुवम् १४
इमे च पुरुषव्याघ्र ये तिष्ठन्त्यभितो दिशम् ।
शतं शतं कुण्डलिनो युवानः खड्गपाणयः १५
विस्तीर्णविपुलोरस्काः परिघायतबाहवः ।
शोणांशुवसनाः सर्वे व्याघ्रा इव दुरासदाः १६
उरोदेशेषु सर्वेषां हारा ज्वलनसंनिभाः ।

दण्डेवाले चमर और बीजनाओंको उत्तमाङ्गनाएं शिरपर घुमा रहीं थीं। गन्धर्व, देवता, सिद्ध और बहुतसे महर्षि आकाशमें स्थित इन्द्रकी उत्तम वाणियोंसे स्तुति करते थे। इस प्रकार महात्मा शरभङ्गके साथ इन्द्रको बातचीत करते देखकर राम रथकी तरफ संकेत कर लक्ष्मणको दिखलाते हुए बोले– "हे लक्ष्मण! कान्तिवाले, शोभायुक्त, आकाशमें स्थित अद्भुत रथको देखो, जो गिरते हुए सूर्यके समान प्रतीत होता है। जो अश्व बडे यज्ञ करनेवाले इन्द्रके हमने सुने थे, आकाशमें आये और बडे दिव्य निस्सन्देह ये वेही अश्व हैं। और जो ये पुरुषोंमें श्रेष्ठ कुण्डल धारण किये, तलवार हाथमें लिये सैकडों युवा पुरुष रथके चारों ओर खडे हैं, जिनकी छाती और कन्धे बडे लम्बे-चौडे हैं, वज्रके तुल्य भुजा हैं, रक्तवर्णके वस्त्र धारण किये और सिंहके समान अगम्य हैं, सबके वक्षःस्थलोंमें अग्नि-

रूपं बिभ्रति सौमित्रे पञ्चविंशतिवार्षिकम् १७
एतद्धि किल देवानां वयो भवति नित्यदा।
यथेमे पुरुषव्याघ्रा दृश्यन्ते प्रियदर्शनाः १८
इहैव सह वैदेह्या मुहूर्तं तिष्ठ लक्ष्मण।
यावज्जानाम्यहं व्यक्तं क एष द्युतिमान्रथे १९
तमेवमुक्त्वा सौमित्रिमिहैव स्थीयतामिति।
अभिचक्राम काकुत्स्थः शरभङ्गाश्रमं प्रति २०
ततः समभिगच्छन्तं प्रेक्ष्य रामं शचीपतिः।
शरभङ्गमनुज्ञाप्य विबुधानिदमब्रवीत् २१
इहोपयात्यसौ रामो यावन्मां नाभिभाषते।
निष्ठां नयत तावत्तु ततो मां द्रष्टुमर्हति २२
जितवन्तं कृतार्थं हि तदाहमचिरादिमम्।
कर्म ह्यनेन कर्तव्यं महदन्यैः सुदुष्करम् २३
अथ वज्री तमामन्त्र्य मानयित्वा च तापसम्।
रथेन हययुक्तेन ययौ दिवमरिंदमः २४

तुल्य हार हैं और हे लक्ष्मण! सब पच्चीस वर्षकी अवस्था जैसे रूपको धारण किये हुए हैं। यह निस्सन्देह है कि ऐसी नित्य तरुणावस्था देवताओंकी हुआ करती हैं, जैसे ये पुरुषोत्तम प्रियदर्शन दीख रहे हैं। हे लक्ष्मण! तबतक तुम सीताके सहित यहीं ठहरो जबतक मैं यह मालूम करूं कि रथमें यह कान्तियुक्त पुरुष कौन हैं।" (८-१९)

रामचन्द्र लक्ष्मणसे यह कह कर कि 'तुम यहीं ठहरो' शरभंगके आश्रमके समीपको चल दिये। तब इन्द्र समीपमें आते हुए रामको देखकर, शरभंगके समीप जा, एकान्तमें यह बोले- "यह राम मेरे समीप आते हैं। जबतक ये मुझसे संभाषण न कर पावें तबतक अन्यत्र चलो, क्योंकि ये पहिले अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करें, तदनन्तर मुझे देखें। जब ये राक्षसगणको जीत कृतार्थ होंगे तबही मैं इनके अचिर कालमेंही दर्शन करूंगा। क्योंकि इन्हें वह कर्म करना है जो औरोंके लिये अति दुष्कर है।" इस प्रकार इन्द्र



प्रयाते तु सहस्राक्षे राघवः सपरिच्छदः ।
अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत् २५
तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः ।
निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः २६
ततः शक्रोपयानं तु पर्यपृच्छत राघवः ।
शरभङ्गश्च तत्सर्वं राघवाय न्यवेदयत् २७
मामेष वरदो राम ब्रह्मलोकं निनीषति ।
जितमुग्रेण तपसा दुष्प्रापमकृतात्मभिः २८
अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः ।
ब्रह्मलोकं न गच्छामि तामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् २९
त्वयाहं पुरुषव्याघ्र धार्मिकेण महात्मना ।
समागम्य गमिष्यामि त्रिदिवं चावरं परम् ३०
अक्षया नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः ।
ब्राह्मयाश्च नाकपृष्ठयाश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान् ३१

तपस्वी शरभंगका सत्कार कर और उनसे आज्ञा ले अश्व जुडे रथसे स्वर्गको चले गये । (२०–२४)

इन्द्रके चले जानेपर लक्ष्मण और सीताके सहित राम अग्निहोत्रमें बैठे हुए शरभंगजीके समीप आये । राम, लक्ष्मण और सीता शरभंगजीके चरण पकड, उनसे बैठनेकी आज्ञा पा, आसन ले और भोजनार्थ निमन्त्रित हो बैठ गये । तदनन्तर रामने इन्द्रके वहां आनेका वृत्तान्त पूछा और शरभंगने उन्हें सब सुनाया। " हे राम ! वरके देनेवाला यह इन्द्र मुझे ब्रह्मलोक ले जाना चाहता था, जिसको मैंने उग्र तपसे जीत लिया है और जो अजितेन्द्रिय पुरुषोंको मिलना दुर्लभ है । परन्तु हे नरश्रेष्ठ ! मैंने आपको समीपमें आये जानकर और आपसे प्रिय अतिथिके विना दर्शन किये वहां जानेकी इच्छा न की । हे पुरुषसिंह ! मैं आप धार्मिक महात्माके साथ मिलकरही देवसेवित ब्रह्मलोकको जाऊंगा । हे नरोत्तम ! मैंने चिरस्थायी सब शुभ लोगोंको जीत लिया है, अतः आप मेरे ब्रह्मलोक तथा स्वर्गादि सब

एवमुक्तो नरव्याघ्रः सर्वशास्त्रविशारदः ।
ऋषिणा शरभङ्गेन राघवो वाक्यमब्रवीत् ३२
अहमेवाहरिष्यामि सर्वांल्लोकान्महामुने ।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ३३
राघवेणैवमुक्तस्तु शक्रतुल्यबलेन वै ।
शरभङ्गो महाप्राज्ञः पुनरेवाब्रवीद्वचः ३४
इह राम महातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः ।
वसत्यरण्ये नियतः स ते श्रेयो विधास्यति ३५
इमां मन्दाकिनीं राम प्रतिस्रोतामनुव्रज ।
नदीं पुष्पोडुपवहां ततस्तत्र गमिष्यसि ३६
एष पन्था नरव्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम् ।
यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः ३७
ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत् ।
शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम् ३८

लोकोंको ग्रहण कीजिये ।" (२५-३१)

ऋषि शरभंगके ऐसा कहनेपर नरश्रेष्ठ, सब शास्त्रोंमें निपुण राम यह वचन बोले- "हे महामुने! यदि आप कहें तो मैं यहीं उन सब लोगोंको प्राप्त कर दूं, क्योंकि मैं इस वनमें आपके बतलाये स्थानमें निवास करना चाहता हूं, सो आप बतलाइये।" इन्द्रतुल्य पराक्रमी रामके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान् शरभंग फिर यह बोले- "हे राम! यहांसे थोडी दूरीपरही वनमें बडे तेजस्वी सुतीक्ष्ण नामक धर्मात्मा रहते हैं, वे आपका कल्याण करेंगे। हे राम! पश्चिमवाहिनी, नावके सदृश पुष्पोंवाली इस मन्दाकिनी नदीके तटसे जाइये, आप वहीं पहुंच जयंगे। हे नरश्रेष्ठ! वहां जानेका यह मार्ग है, परन्तु हे तात! आप मुझे एक मुहूर्तमात्र देखते रहिये, जबतक कि मैं सर्पकी पुरानी केंचुलीके समान अपने शरीरको छोडूं।" (३२-३७)

तदनंतर मन्त्रवेत्ता महात्मा शरभंगने काष्ठादिसे अग्नि चिन, घृतकी

तस्य रोमाणि केशांश्च तदा वह्निर्महात्मनः ।
जीर्णां त्वचं तदस्थीनि यच्च मांसं च शोणितम् ३९
स च पावकसंकाशः कुमारः समपद्यत ।
उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभङ्गो व्यरोचत ४०
स लोकानाहिताग्नीनामृषीणां च महात्मनाम् ।
देवानां च व्यतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्यरोहत ४१
स पुण्यकर्मा भुवने द्विजर्षभः पितामहं सानुचरं ददर्श ह ।
पितामहश्चापि समीक्ष्य तं द्विजं ननन्द सुस्वागतमित्युवाच ४२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥[१५१]

षष्ठः सर्गः ।

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते मुनिसङ्घाः समागताः ।
अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम् १
वैखानसा वालखिल्याः संप्रक्षाला मरीचिपाः ।
अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः २

आहुति दे उसमें प्रवेश किया। अग्निने उस महात्माके रोम, दाढी-मूछ, पुरानी त्वचा, हड्डी, मांस और रुधिरको भस्मीभूत कर दिया। तदनन्तर शरभंग उस अग्निके ढेरसे अग्निके तुल्य तेजस्वी बालकके रूपमें निकलकर बडे दीप्तिमान् हुए। वह अग्निहोत्र करनेवाले ऋषि, महात्मा और देवताओंके लोगोंको उल्लंघन कर ब्रह्मलोकको चले गये। पुण्य-कर्म करनेवाले द्विजोत्तम शरभंगने अपने भुवनमें सेवकोंके सहित बैठे ब्रह्माको देखा। ब्रह्मा भी उस ब्राह्मणको देखकर बडे प्रसन्न हुए और यह बोले कि 'आपका बहुत अच्छा आगमन हुआ'। (३८–४४)

यहाँ पंचम सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

शरभङ्गके स्वर्ग चले जानेपर बहुतसे मुनि लोग अग्निके समान तेजस्वी रामके समीप आये। वैखानस (भगवान्के नखोंसे उत्पन्न) बालखिल्य (बालोत्पन्न), संप्रक्षाल (भगवान्के पादप्रक्षालन जलसे पैदा हुए), मरीचिपा (किरणपानकर्ता), अश्मकुट्ट (पत्थरोंसे कूटे अन्नके

दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे ।
गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः ३
मुनयः सलिलाहारा वायुभक्षास्तथापरे ।
आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थण्डिलशायिनः ४
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससः ।
सजपाश्च तपोनिष्ठास्तथा पञ्चतपोऽन्विताः ५
सर्वे ब्राह्म्या श्रिया युक्ता दृढयोगसमाहिताः ।
शरभङ्गाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः ६
अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतां वरम् ।
ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसङ्घाः समागताः ७
त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः ।
प्रधानश्चापि नाथश्च देवानां मघवानिव ८
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु यशसा विक्रमेण च ।
पितृव्रतत्वं सत्यं च त्वयि धर्मश्च पुष्कलः ९

भक्षक), पत्राहार (पत्रभोजी), दन्तोलूखली (दांतही जिनकी ओखली थी), जलमें डुबकी लगा रहनेवाले, पृथ्वीपर कुछ न बिछाकर सोनेवाले, निरंतर न सोनेवाले, आकाशस्थ हो रहनेवाले, केवल जलपान करनेवाले, वायु-भक्षक, वृक्षादिके ऊपर निवासशील, कुशादि बिछा भूमिपर सोनेवाले, व्रतोपवासमें लगे हुए, इन्द्रियदमनकर्ता, गीले वस्त्र ओढनेवाले, जपपरायण, नित्य तपोऽनुष्ठानमें लगे हुए, ग्रीष्म ऋतुमें पांच अग्नियोंके मध्यमें रहने-वाले, ब्रह्मतेजसे युक्त, दृढ योगवाले और जो सावधानचित्त थे, ऐसे सब तपस्वी लोग शरभङ्गके आश्रममें रामचन्द्रजीके पास आये । (१-६)

धर्मके वेत्ता शुद्धान्तःकरण वे सब ऋषिमुनि धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ रामके सम्मुख जाकर बोले, " हे महारथ ! आप इक्ष्वाकुकुलमें प्रधान हो और पृथ्वीके पालन करनेवाले हो जैसे देवताओंके इन्द्र । आप कीर्ति और बलसे तीनों लोगोंमें प्रसिद्ध हैं। पिताकी भक्ति, सत्य और पूर्ण धर्म आपमें विराजमान है । हे नाथ ! आप धर्मके ज्ञाता, धर्म-प्रिय और महात्माके

त्वामासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम् ।
अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि १०
अधर्मः सुमहान्नाथ भवेत्तस्य तु भूपतेः ।
यो हरेद्बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत् ११
युञ्जानः स्वानिव प्राणान्प्राणैरिष्टान्सुतानिव ।
नित्ययुक्तः सदा रक्षन्सर्वान्विषयवासिनः १२
प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं स बहुवार्षिकीम् ।
ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते १३
यत्करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः ।
तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः १४
सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान् ।
त्वं नाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्हन्यते भृशम् १५
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने १६
पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि ।

पास आकर याचकभावसे हम कुछ कहेंगे, अतः आप क्षमा करें । हे तात! उस राजाको बडा अधर्म लगता है कि जो प्रजासे छठे हिस्सा रूप बलि लेकर उसका पुत्रवत् पालन न करे । जो राजा अपने सब देशनिवासियोंकी अपने प्राणों और प्राणोंसे भी अधिक प्रिय पुत्रोंके समान रक्षा करनेमें नित्य लगा रहता है, वह इस लोकमें चिरस्थायिनी कीर्तिको प्राप्त होता है और फिर ब्रह्मलोकको पाकर वहां भी पूजित होता है। मुनि वनके मूल-- फलोंको खाता हुआ जो धर्म करता है, उसका चौथा भाग उस राजाको मिलता है कि जो धर्मसे प्रजाकी रक्षा करता है । हे राम! यह महान् वानप्रस्थोंका समूह जिसमें अधिकतर ब्राह्मण हैं, आप नाथके होते हुए अनाथोंके समान राक्षसोंसे अत्यन्त पीडित हो रहा है । (७–१५)

"आप आइये और वनमें परमात्माके ध्यानमें निष्ठ असंख्य उन मुनियोंके मृत शरीरोंको देखिये, जो घोर राक्षसोंके द्वारा मारे गये हैं । पम्पानदी,

चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् १७
एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम् ।
क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः १८
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः ।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः १९
परा त्वत्तो गतिर्वीर पृथिव्यां नोपपद्यते ।
परिपालय नः सर्वान्राक्षसेभ्यो नृपात्मज २०
एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम् ।
इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः २१
नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम् ।
केवलेन स्वकार्येण प्रवेष्टव्यं वनं मया २२
विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम् ।
पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं वनम् २३
भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोऽहं यदृच्छया ।
तस्य मे यं वने वासो भविष्यति महाफलः २४

मन्दाकिनी नदी और चित्रकूट पर्वतपर रहनेवाले ऋषियोंका महान् वध किया जाता है। भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंसे इस प्रकार किया जाता हुआ मुनियोंका तिरस्कार वा नाश हमसे नहीं सहा जाता। इसलिये शरणागतोंके रक्षक आपकी हम शरणमें आये हैं, हे राम! राक्षसोंसे मारे जाते हुए हमारी आप रक्षा कीजिये। हे वीर! आपको छोडकर संसारमें और कोई हमारा रक्षक नहीं, अतः आप राक्षसोंसे हमारा पालन कीजिये।" (१६–२०)

धर्मात्मा रामचन्द्र तपस्वी और मुनियोंका यह वचन सुनकर उन सब तपस्वियोंसे यह वचन बोले, "आप मुझसे ऐसे प्रार्थनायुक्त वचन न कहें; क्योंकि मैं तपस्वियोंका आज्ञाकारी हूं। मैंने केवल अपनेही कार्यसे राक्षसोंसे आप लोगोंके तिरस्कारको दूर करनेके लियेही वनमें प्रवेश किया है। पिताकी आज्ञा करने रूप बहानेसे आप लोगोंकी अर्थसिद्धिके

तपस्विनां रणे शत्रून्हन्तुमिच्छामि राक्षसान् ।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः २५
दत्त्वा वरं चापि तपोधनानां धर्मे धृतात्मा सह लक्ष्मणेन ।
तपोधनैश्चापि सहार्यदत्तः सुतीक्ष्णमेवाभिजगाम वीरः २६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥ [१७.

सप्तमः सर्गः ।

रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परंतपः ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः १
स गत्वा दूरमध्वानं नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ।
ददर्श विमलं शैलं महामेरुमिवोन्नतम् २
ततस्तादिक्ष्वाकुवरौ सततं विविधैर्द्रुमैः ।
काननं तौ विविशतुः सीतया सह राघवौ ३
प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमम् ।
ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम् ४

लियेही दैवगतिसे मैं वनमें प्रविष्ट हुआ हूं। मेरा यह वनवास मह फलप्रद होगा। मैं युद्धमें तपास्वियोंके शत्रु राक्षसोंको मारना चाहता हूं आप सब तपस्वी और ऋषि भ्रातासहित मेरे बलको देखें।" धर्मके विषय निश्चलचित्त राम तपस्वियोंको इस प्रकार अभय देकर उनके किये सत्कार पाकर वह वीर लक्ष्मणके सहित सुतीक्ष्णके आश्रमकी ओर च दिये। (२१–२६)

यहाँ षष्ठ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

शत्रुओंको सन्तापित करनेवाले राम, लक्ष्मण, सीता और उ बालखिल्यादि द्विजोंके सहित सुतीक्ष्णके आश्रमको चल दिये। उन्हों थोडेही मार्गमें जाकर, विपुल जलवाली मन्दाकिनी नदीको पारकर मेघ समान ऊंचा एक महान् पर्वत देखा। तदनन्तर इक्ष्वाकुवंशमें श्रेष्ठ रा लक्ष्मणने सीताके सहित अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त उस वनमें प्रवे किया। बहुतसे पुष्प फलवाले वृक्षोंसे युक्त उस भयङ्कर वनमें प्रवेश क

तत्र तापसमासीनं मलपङ्कजधारिणम् ।
रामः सुतीक्ष्णं विधिवत्तपोधनमभाषत ५
रामोऽहमस्मि भगवन्भवन्तं द्रष्टुमागतः ।
तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ६
स निरीक्ष्य ततो धीरो रामं धर्मभृतां वरम् ।
समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ७
स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतां वर ।
आश्रमोऽयं त्वयाक्रान्तः सनाथ इव सांप्रतम् ८
प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः ।
देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले ९
चित्रकूटमुपादाय राज्यभ्रष्टोऽसि मे श्रुतः ।
इहोपयातः काकुत्स्थ देवराजः शतक्रतुः १०
उपागम्य च मे देवो महादेवः सुरेश्वरः ।
सर्वाँल्लोकाञ्जितानाह मम पुण्येन कर्मणा ११

रामने एकान्तमें वल्कल-पंक्तियोंसे अलंकृत एक आश्रम देखा और उस आश्रममें बैठे, मल तथा कीचडयुक्त जटा धारण किये हुए, तपोवृद्ध सुतीक्ष्ण नामक तपस्वीके समीप जा विधिवत् बोले– "हे भगवन् ! मैं राम हूं, आपके दर्शनार्थ यहां आया हूं । हे धर्मज्ञ, हे महर्षे, सत्यपराक्रमवाले ! आप हमसे संभाषण कीजिये ।" (१–६)

वह सुतीक्ष्ण धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ और वीर रामको देखकर, भुजाओंसे आलिङ्गन कर यह वचन बोला–" हे वीर, हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राम! आपका अच्छा आगमन हुआ । आपने अपने पावोंके रखनेसे अब इस आश्रमको सनाथ वा कृतार्थ कर दिया । हे यशस्विन् ! आपके आनेकी प्रतीक्षासेही मैं भूमण्डलमें इस शरीरको छोड देवलोकको न गया। क्योंकि मैंने राज्यसे भ्रष्ट हो चित्रकूटपर आये आपको सुन लिया था । हे राम ! देवराज इन्द्र यहां आये थे और उस देवाधिप, बडी कान्तिवाले देवने मेरे समीप आकर मुझसे कहा था कि 'आपने अपने पुण्य कर्मोंसे सब

तेषु देवर्षिजुष्टेषु जितेषु तपसा मया ।
मत्प्रसादात्सभार्यस्त्वं विहरस्व सलक्ष्मणः १२
तमुग्रतपसं दीप्तं महर्षिं सत्यवादिनम् ।
प्रत्युवाचात्मवान्रामो ब्रह्माणमिव वासवः १३
अहमेवाहरिष्यामि स्वयं लोकान्महामुने ।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने १४
भवान्सर्वत्र कुशलः सर्वभूतहिते रतः ।
आख्यातं शरभङ्गेन गौतमेन महात्मना १५
एवमुक्तस्तु रामेण महर्षिर्लोकविश्रुतः ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं हर्षेण महता युतः १६
अयमेवाश्रमो राम गुणवान्रम्यतामिति ।
ऋषिसङ्घानुचरितः सदा मूलफलैर्युतः १७
इममाश्रममागम्य मृगसङ्घा महीयसः ।
अहत्वा प्रतिगच्छन्ति लोभयित्वाकुतोभयाः १८

लोगोंको जीत लिया है, अतः आप वहींको निवासार्थ चलिये ।' इसलि हे राम! तपद्वारा मेरे जीते हुए उन लोकोंमें जिसमें देवता और तपस्वि रहते हैं, मेरी प्रसन्नतासे आप लक्ष्मण और सीताके साथ विहार कीजिये। (७–१२)

उग्र तपसे युक्त, सत्यवक्ता उस महर्षिसे राम, ब्रह्मासे इन्द्रके समा बोले– "हे महामुने! मैं स्वयंही उन लोगोंको प्राप्त कर लूंगा। अब मैं इस वनमेंही आपके बतलाये किसी स्थानमें रहना चाहता हूं। आ बडे निपुण, प्राणिमात्रके हितमें लगे हुए हैं, यह मुझसे गौतमवंशी महात्मा शरभङ्गने कथन किया था।" रामके ऐसा कहनेपर संसार विख्यात महर्षि सुतीक्ष्ण बडे प्रफुल्लित हो यह मधुर वचन बोले–" राम! यही आश्रम बडा उत्तम है, आप यहीं निवास कीजिये; क्यों यहां बहुतसे ऋषि लोग आते जाते हैं और यह सब कालमें मूल, फलों युक्त रहता है। हे महा-यशस्विन्! बहुतसे मृग इस आश्रममें आक

नान्यो दोषो भवेदत्र मृगेभ्योऽन्यत्र विद्धि वै ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य महर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः १९
उवाच वचनं धीरो विगृह्य सशरं धनुः ।
तानहं सुमहाभाग मृगसङ्घान्समागतान् २०
हन्यां निशितधारेण शरेणानतपर्वणा ।
भवांस्तत्राभिषज्येत किं स्यात्कृच्छ्रतरं ततः २१
एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरं तु न समर्थये ।
तमेवमुक्त्वोपरमं रामः संध्यामुपागमम् २२
अन्वास्य पश्चिमां संध्यां तत्र वासमकल्पयत् ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च २३
ततः शुभं तापसयोग्यमन्नं स्वयं सुतीक्ष्णः पुरुषर्षभाभ्याम् ।
ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा संध्यानिवृत्तौ रजनीं समीक्ष्य २४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥७॥ [२०१]

इधर उधर घूम, मुनिजनोंको लोभित कर निःशङ्क वापिस चले जाते हैं। बस, मृगोंके अतिरिक्त और कोई दोष आप यहां न समझिये।" (१२-१९)

बडे वीर राम उस मुनिके यह वचन सुन, बाणसहित धनुष्य खींचकर, यह वाक्य बोले- "हे महाभाग ! मैं यहां आये उन मृगोंको तीक्ष्णधारवाले, वज्रके तुल्य बाणोंसे तो अवश्य मारूं, परन्तु ऐसा करनेमें आपके वैमनस्य होनेकी संभावना है, अतः इससे अधिक फिर क्या कष्ट होगा। इसलिये मैं यहां चिरकालतक रहनेमें समर्थ नहीं।" रामचन्द्रजी उस ऋषिसे ऐसा कह कर संध्योपासनके लिये चले गये। सायंकालकी संध्या कर वहां सुतीक्ष्णके आश्रममें रामने सीता और लक्ष्मणके सहित निवास किया। तदनन्तर सन्ध्या-कर्मके अवसानमें रात्रिको देखकर महात्मा सुतीक्ष्णने तपस्वियोंके खानेयोग्य पवित्र अन्न उन दोनों राम, लक्ष्मणको बडे सत्कारपूर्वक स्वयं दिया। (१९-२४)

यहाँ सप्तम सर्ग समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ।

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ।
परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत १
उत्थाय च यथाकालं राघवः सह सीतया ।
उपस्पृश्य सुशीतेन तोयेनोत्पलगन्धिना २
अथ तेऽग्निं सुरांश्चैव वैदेही रामलक्ष्मणौ ।
काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने ३
उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः ।
सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ४
सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः ।
आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ५
त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम् ।
ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम् ६
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सहैभिर्मुनिपुंगवैः ।
धर्मनित्यैस्तपोदान्तैर्विशिखैरिव पावकैः ७
अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते ।

रामचन्द्र वहां लक्ष्मणके सहित सुतीक्ष्णसे सत्कार पा, रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल होनेपर जागे । रामने सीताके सहित यथोचित समयमें उठकर कमलपुष्पोंकी सुगन्धिवाले शीतल जलसे स्नान किया । तदनन्तर राम, लक्ष्मण और सीता तपस्वियोंसे सेवित उस वनमें कालानुकूल अग्नि और देवताओंका विधिवत् पूजन कर, उदित हुए सूर्यका दर्शन कर, निर्मल स्वरूप हो, सुतीक्ष्णके सम्मुख जा मधुर वचन बोले, " हे भगवन्! पूजनीय आपसे सत्कार पाकर हम बडे सुखसे रहे । अब आपसे आगे जानेकी आज्ञा मांगते हैं, क्योंकि मुनि लोग हमसे चलनेके लिये शीघ्रता कराते हैं । और हमको भी पुण्यशील, दण्डक वनमें रहनेवाले ऋषियोंके सब आश्रमोंके देखनेकी शीघ्रता है । शिखारहित अग्निके समान तेजस्वी, धर्ममें तत्पर, तपोयुक्त और इन्द्रियोंके जीतनेवाले इन मुनियोंके साथही

अमार्गेणागतां लक्ष्मीं प्राप्येवान्वयवर्जितः ८
तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः ।
ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः ९
तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुंगवः ।
गाढमाश्लिष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् १०
अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह ।
सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया ११
पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम् ।
एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् १२
सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च ।
प्रशस्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च १३
फुल्लपङ्कजखण्डानि प्रसन्नसलिलानि च ।
कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च १४
द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च ।
रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च १५

हम जाना चाहते हैं । कुमार्गसे आयी सम्पत्तिको पाकर अकुलीन पुरुषके समान जबतक यह सूर्य अपने असह्य तापको फैलाकर प्रचण्ड नहीं होता है, तब तक हम जाना चाहते हैं । " रामने ऐसा कह कर सीता, लक्ष्मणके सहित मुनिके चरणोंको प्रणाम किया । (१–९)

वह मुनिश्रेष्ठ चरण छूते हुए राम-लक्ष्मणको उठाकर और अच्छे प्रकार आलिंगन कर स्नेह-भरे यह वचन बोले– " हे राम ! लक्ष्मण और छायाके समान आचरण करनेवाली इस सीताके साथ आप प्रस्थान कीजिये । मार्गमें आपका कल्याण हो । हे वीर ! दण्डक वनमें रहनेवाले, तपश्चर्यासे शुद्धचित्त इन तपस्वियोंके रमणीय आश्रमोंको देखिये । आप मार्गमें बडे बडे फल, मूल तथा पुष्पोंवाले वनोंको, श्रेष्ठ मृगसमूहको, शान्तस्वभाव पक्षिगणोंको, विकसित कमलोंवाले निर्मल जलसे युक्त और जलमुर्गा आदि पक्षियोंसे भरे हुए तालाब तथा नदियोंको, नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले पर्वतके

गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु ।
आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं प्रति १६
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।
प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे १७
ततः शुभतरे तूणी धनुषी चायतेक्षणा ।
ददौ सीता तयोर्भ्रात्रोः खड्गौ च विमलौ ततः १८
आबध्य च शुभे तूणी चापे चादाय सस्वने ।
निष्क्रान्तावाश्रमाद्गन्तुमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ १९
शीघ्रं तौ रूपसंपन्नावनुज्ञातौ महर्षिणा ।
प्रस्थितौ धृतचापासी सीतया सह राघवौ २०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे अष्टमः सर्गः॥८॥ [२२१

नवमः सर्गः ।

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम् ।
हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् १

झरनों, रमणीय वनोंको देखेंगे और मयूरोंके कर्णप्रिय शब्दोंको सुनें। हे वत्स लक्ष्मण ! आप जाइये, हे राम ! आप भी प्रस्थान कीजिये और तात ! फिर भी आप मेरे आश्रममें आइये।" (१०–१६)

लक्ष्मणसहित 'राम ऐसाही होगा' कहकर और मुनिकी परिक्रमा करके चलनेको उद्यत हुए। तब विशाल नेत्रोंवाली सीताने उन दोनों भाइयोंको शोभायमान तरकस तथा धनुष दिये, फिर निर्मल खड्ग दिये वे दोनों राम-लक्ष्मण शुभ तरकसोंको बांधकर और शब्दवाले धनुषोंको लेकर चलनेके लिये आश्रयसे निकले। बडे शोभायमान, सुन्दर रूपवाले अपने तेजसे दीप्यमान और धनुष धारण किये हुए वे दोनों रघु-कुमार सीताके सहित चल दिये। (१७–२०)

यहाँ अष्टम सर्ग समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

सीता प्रेमयुक्त स्निग्ध वाणीसे सुतीक्ष्णसे आज्ञापित, प्रस्थान करते हुए रघुनन्दन अपने भर्तासे यह वचन बोली कि "बडा भारी यह मुनि

अधर्मं तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान् ।
निवृत्तेन च शक्योऽयं व्यसनात्कामजादिह २
त्रीण्येव व्यसनान्यद्य कामजानि भवन्त्युत ।
मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद्गुरुतरावुभौ ३
परदाराभिगमनं विनावैरं च रौद्रता ।
मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ४
कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् ।
तव नास्ति मनुष्येन्द्र न चाभूत्ते कदाचन ५
मनस्यपि तथा राम न चैतद्विद्यते क्वचित् ।
स्वदारनिरतश्चैव नित्यमेव नृपात्मज ६
धर्मिष्ठः सत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः ।
त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ७
तच्च सर्वं महाबाहो शक्यं वोढुं जितेन्द्रियैः ।
तव वश्येन्द्रियत्वं च भूतानां शुभदर्शन ८

धर्म धर्मकामोंद्वारा बडे सूक्ष्म मार्गसे प्राप्त होता है, सो इस वनमें इच्छाकृत व्यसनोंसे निवृत्त आपसे यह धर्म पालने योग्य है। लोकमें कामज व्यसन तीन होते हैं, जो कि इस प्रकार हैं- प्रथम मिथ्या बोलना, इससे भी भारी परदाराभिगमन और विना वैरके हिंसकना ये दो हैं। हे राघव! आपने कभी मिथ्या-वाक्य नहीं कहा और न कहोगे, फिर भला धर्मनाश करनेवाला दूसरोंकी स्त्रीका अभिलाष तो होही कैसे सकता है? हे मनुष्येन्द्र! आपमें परदाराभिलाष नहीं है और न कभी हुआ है, हे राम! यह कभी मनमें भी नहीं उत्पन्न होता है। हे नृपात्मज! आप सदा अपनी-ही स्त्रीमें रत हैं, क्योंकि आप धर्मिष्ठ, सत्यप्रतिज्ञावाले और पिताकी आज्ञा पालनेवाले हैं। हे सत्यप्रतिज्ञ महाभाग! हे श्रीमन् लक्ष्मणाग्रज! आपमें सत्य और धर्म स्थित है तथा सब कुछ आपमें प्रतिष्ठित है। (१-७)

"हे महाबाहो! आपके जितेन्द्रियोंद्वारा धारण करनेयोग्य वे सब धर्मिष्ठ आदि गुण और आपकी इन्द्रियवशताको मैं जानती हूं। परन्तु

तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् ।
निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम् ९
प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् ।
ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम् १०
एतन्निमित्तं वचनं दण्डका इति विश्रुतम् ।
प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः ११
ततस्त्वां प्रस्थितं दृष्ट्वा मम चिन्ताकुलं मनः ।
त्वद्वृत्तं चिन्तयन्त्या वै भवेन्निःश्रेयसं हितम् १२
नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान्प्रति ।
कारणं तत्र वक्ष्यामि वदन्त्याः श्रूयतां मम १३
त्वं हि बाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रा सह वनं गतः ।
दृष्ट्वा वनचरान्सर्वान्कच्चित्कुर्याः शरव्ययम् १४
क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च ।
समीपतः स्थितं तेजो बलमुच्छ्रयते भृशम् १५
पुरा किल महाबाहो तपस्वी सत्यवाक्छुचिः ।

तीसरा जो यह दूसरोंके प्राणोंकी हिंसारूप रौद्रव्यसन है जो कि मोह निर्वैर किया जाता है, सो आपमें प्राप्त है । अर्थात् आप इसे करनेको उ हुए हैं । हे वीर ! आपने दण्डकारण्यमें रहनेवाले ऋषियोंकी रक्षाके लि संग्राममें राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है । इसलिये धनुर्बाण धा किये आपने भाईसहित दण्डक नाम प्रसिद्ध वनके प्रति प्रस्थान किया है इस कारण प्रस्थान करते हुए आपको देखकर तथा सत्यप्रतिज्ञत्वादि आप वृत्तको विचार कर आपके सुख तथा कल्याणको चिन्तन करती हुई मेरा मन आकुल हो रहा है । हे वीर ! दण्डक वनमें जाना मुझे अच नहीं लगता । इसमें हेतु कहती हूं, कहती हुई मुझसे सुनिये । (८–१३)

“धनुष्को हाथमें लिये आप भाईसहित वनमें प्राप्त हुए सब राक्षसों देखकर कहीं न कहीं अवश्य बाण छोडेंगे; क्योंकि क्षत्रियोंके समी स्थित धनुष् तेजोरूप बलको बढाता है जैसे कि अग्निके समीपमें स्थि

कस्मिंश्चिदभवत्पुण्ये वने रतमृगद्विजे १६
तस्यैव तपसो विघ्नं कर्तुमिन्द्रः शचीपतिः।
खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमं भटरूपधृक् १७
तस्मिंस्तदाश्रमपदे निहितः खड्ग उत्तमः।
स न्यासविधिना दत्तः पुण्ये तपसि तिष्ठतः १८
स तच्छस्त्रमनुप्राप्य न्यासरक्षणतत्परः।
वने तु विचरत्येव रक्षन्प्रत्ययमात्मनः १९
यत्र गच्छत्युपादातुं मूलानि च फलानि च।
न विना याति तं खड्गं न्यासरक्षणतत्परः २०
नित्यं शस्त्रं परिवहन्क्रमेण स तपोधनः।
चकार रौद्रीं स्वां बुद्धिं त्यक्त्वा तपसि निश्चयम् २१
ततः स रौद्राभिरतः प्रमत्तोऽधर्मकर्षितः।
तस्य शस्त्रस्य संवासाज्जगाम नरकं मुनिः २२
एवमेतत्पुरावृत्तं शस्त्रसंयोगकारणम्।

ईंधन अग्निको बढाता है। हे महाबाहो! पहिले मृग तथा पक्षियोंसे युक्त किसी पवित्र वनमें सत्य बोलनेवाला, पवित्राचारी एक तपस्वी रहता था। उसके तपोभंग करनेके लिये शचीपति इन्द्र योधाका रूप धारे हुए खड्ग हाथमें लिये हुए उस आश्रममें आया। उसने उस आश्रममें रहनेवाले, पवित्र तपमें स्थित उस मुनिको वह उत्तम तेज धारावाला खड्ग धरोहर रूपसे दे दिया। (१४-१८)

"उस शस्त्रको पाकर धरोहरकी रक्षामें तत्पर वह मुनि अपने विश्वासपर रखे हुए उस खड्गकी रक्षा करता हुआ वनमें विचरने लगा। धरोहरकी रक्षामें तत्पर वह मुनि जहां कहीं फलमूल लेनेको जाता तो उस खड्गके विना न जाता अर्थात् खड्ग साथही ले जाता। इस तरह क्रमसे नित्य शस्त्रको धारण करते हुए जैसे तपोधनीने तपस्यामें निश्चयको त्याग कर हिंसाकर्मसे युक्त बुद्धि धारण की, तदनन्तर हिंसाकर्ममें आसक्त, प्रमत्त और अधर्मसे पीडित वह मुनि उस शस्त्रके सहवासके कारण नरकको चला गया।



अग्निसंयोगवद्धेतुः शस्त्रसंयोग उच्यते २३
स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये ।
न कथंचन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया २४
बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् ।
अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते २५
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम् ।
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् २६
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च ।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम् २७
कदर्यकलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात् ।
पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां क्षत्रधर्मं चरिष्यसि २८
अक्षया तु भवेत्प्रीतिः श्वश्रूश्वशुरयोर्मम ।
यदि राज्यं हि संन्यस्य भवेस्त्वं निरतो मुनिः २९

शस्त्रके संयोगसे उत्पन्न यह प्राचीन वृत्तान्त है। अग्निके संयोगके तु शस्त्रसंयोग कहा है, इसलिये स्नेहसे और आप जो मेरी बहुत इज्ज करते हैं इस हेतुसे मैं आपको याद दिलाती हूं न कि शिक्षा करती हूं धनुर्धारी आपको किसी प्रकार भी दण्डकारण्यमें रहनेवाले राक्षसोंको वि वैर मारनेको ऐसा विचार नहीं करना चाहिये। हे वीर! अपराध वि प्राणियोंका मारना मैं पसन्द नहीं करती। (१९-२५)

"वीर क्षत्रियोंको वनमें रहनेवाले आर्त प्राणियोंका रक्षणमात्र धनुष्द्वारा कर्तव्य-कर्म है, हिंसन करना नहीं। देखिये, कहां शस्त्र, क वन और कहां क्षात्रधर्म तथा कहां तप, ये सबही एक दूसरेके विरुद्ध हमें तो यहां देशधर्म अर्थात् तपोवन-धर्मही करना चाहिये। हे आर्य इस कारण शस्त्रसेवनसे बुद्धि कलुषित होती है। अयोध्यामें जाकर फि क्षत्रधर्मको धारण कीजिये। जो आपकी बुद्धि अकलुषा होगी अर्थात् आप मुनिधर्म धारण करेंगे तो मेरे सास-सुसरकी प्रीति भी तुममें अधि होगी, क्योंकि उन्होंने इसही प्रकारकी आज्ञा दी है कि राज्यत्याग क

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ३०
आत्मानं नियमैस्तैस्तैः कर्षयित्वा प्रयत्नतः ।
प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभते सुखम् ३१
नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने ।
सर्वं तु विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तत्त्वतः ३२
स्त्रीचापलादेतदुपाहृतं मे धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः ।
विचार्य बुद्ध्या तु सहानुजेन यद्रोचते तत्कुरु माचिरेण ३३

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥ [२५४]

दशमः सर्गः ।

वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया ।
श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ जानकीम् १
हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः ।
कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे २

मुनि होकर वनको जाओ। (२६-२९)

"धर्मसे अर्थ होता है, अर्थसे सुख होता है और धर्मसे सब कुछ प्राप्त होता है, यह जगत्ही धर्मसारवाला है। विद्वान् मनुष्य प्रयत्नसे नियमों द्वारा शरीर संयमित करनेसेही धर्मको प्राप्त करते हैं, सुखसे सुख प्राप्त नहीं होता है। हे सौम्य! शुद्धबुद्धि होकर इस तपोवनमें नित्य धर्माचरण कीजिये। त्रिलोकीमें होनेवाला सब कुछ कार्य तत्त्वसे आपको विदित है। हे स्वामिन्! स्त्रीस्वभावके चञ्चल होनेसे मैंने यह कहा है। आपको धर्मोपदेश करनेको कौन समर्थ है? कोई नहीं। लक्ष्मणसहित आपको जो अच्छा लगे सो बुद्धिसे विचार कर शीघ्र कीजिये।" (३०-३३)

यहाँ नवम सर्ग समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

पतिभक्ता सीताके कहे इस वचनको सुनकर धर्मनिष्ठ राम जानकीसे यह बोले- "हे धर्मके जाननेवाली, देवि जानकी! अपने महाकुलीनत्वको प्रकटित करता हुआ और प्रेम करनेवाला तूने जो वचन कहा है, वह

किं नु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः ।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ३
ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः ।
मां सीते स्वयमागम्य शरण्यं शरणं गताः ४
वसन्तः कालकालेषु वने मूलफलाशनाः ।
न लभन्ते सुखं भीरु राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ।
भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः ५
ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः ।
अस्मानभ्यवपद्यैते मामूचुर्द्विजसत्तमाः ६
मया तु वचनं श्रुत्वा तेषामेवं मुखाच्च्युतम् ।
कृत्वा वचनशुश्रूषां वाक्यमेतदुदाहृतम् ७
प्रसीदन्तु भवन्तो मेऽह्रीरेषा तु ममातुला ।
यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ८
किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसंनिधौ ।
सर्वैरेव समागम्य वागियं समुदाहृता ९

बहुतही हितकर है । परन्तु हे देवि ! मैं कहता हूं तू सुन । यह वच तूनेही कहा है कि ज्ञानियोंको इसलिये धनुष् धारण करना चाहिये कि दुःखी पुरुषोंका शब्द सुनाई न देवे । हे सीते ! दण्डक वनमें रहनेवाले रक्षा करने योग्य, व्रतनिष्ठ मुनि लोग दुःखी हो स्वयं आकर मेरी शरण प्राप्त हुए । वनमें वसते हुए, धर्ममें तत्पर, मूलफलोंके खानेवाले मुनि क्रूरकर्मा राक्षसोंसे भयभीत हुए सुख नहीं पाते । वे ऋषि मुनि बडे भयंक और मनुष्योंके मांससे जीनेवाले राक्षसोंसे खाये जाते हैं । राक्षसोंसे खा जाते हुए दण्डकवासी उन सब द्विजोत्तमोंने मुझसे स्वयं यह कहा कि 'आ हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिये ।' (१–६)

"मैंने उन मुनियोंके मुखसे यह वचन सुन और उनकी चरणसेव करके यह वचन कहा था कि– "आप मुझपर प्रसन्न हो जावें, मेरे लि यह बडी लज्जाकी बात है कि ऐसे सेवा करनेयोग्य ऋषि मुनि मुझ

राक्षसैर्दण्डकारण्ये बहुभिः कामरूपिभिः।
अर्दिताः स्म भृशं राम भवान्नस्तत्र रक्षतु १०
होमकाले तु संप्राप्ते पर्वकालेषु चानघ।
धर्षयन्ति स्म दुर्धर्षा राक्षसाः पिशिताशनाः ११
राक्षसैर्धर्षितानां च तापसानां तपस्विनाम्।
गतिं मृगयमाणानां भवान्नः परमा गतिः १२
कामं तपःप्रभावेण शक्ता हन्तुं निशाचरान्।
चिरार्जितं न चेच्छामस्तपः खण्डयितुं वयम् १३
बहुविघ्नं तपो नित्यं दुश्चरं चैव राघव।
तेन शापं न मुञ्चामो भक्ष्यमाणाश्च राक्षसैः १४
तदर्द्यमानान्रक्षोभिर्दण्डकारण्यवासिभिः।
रक्षकस्त्वं सह भ्रात्रा त्वंनाथा हि वयं वने १५
मया चैतद्वचः श्रुत्वा कार्त्स्न्येन परिपालनम्।

प्रार्थना करें। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूं।" उन ब्राह्मणोंके सम्मुख जब मैंने यह कहा, तब उन सब द्विजोंने मिलकर यही वाणी कथन की– 'हे राम! दण्डक वनमें स्वेच्छारूपधारी अनेक राक्षसोंसे हम बडे पीडित हैं, अतः आप हमारी रक्षा कीजिये। निष्कलङ्क! दूर न किये जानेयोग्य, मांसभोजी वे राक्षस अग्निहोत्र और पर्वकालमें आकर हमारा तिरस्कार करते हैं। राक्षसोंसे पीडित, तपोनिष्ठ और रक्षकको अन्वेषण करनेवाले हम तपास्वियोंके अब आपही परम रक्षक हैं। हे राम! यद्यपि तपःप्रभावसे हम राक्षसोंके मारनेको समर्थ हैं, परन्तु बहुत कालसे सञ्चित तपको हम खण्डित करना नहीं चाहते। हे राघव! तप नित्य है और कठिनतासे किया जाता है और बहुत विघ्नवाला होता है, इसलिये राक्षसोंसे भक्ष्यमाण भी हम शाप नहीं देते हैं। इसलिये भाईसहित आप दण्डकारण्यमें रहनेवाले राक्षसोंसे पीडित हमारी रक्षा करो, क्योंकि वनमें आपही हमारे नाथ हैं।' (७–१५)

"हे जनकात्मजे! मैंने यह वचन सुनकर दण्डकारण्यमें सम्पूर्णतया

ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे १६
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्।
मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा १७
अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः १८
तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्।
अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय कथं पुनः १९
मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वया वचः।
परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते २०
सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने।
सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरियसी २१
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा सीतां प्रियां मैथिलराजपुत्रीम्।
रामो धनुष्मान्सह लक्ष्मणेन जगाम रम्याणि तपोवनानि २२

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे दशमः सर्गः ॥१०॥ [२७६]

ऋषियोंके पालनकी प्रतिज्ञा कर ली है। मुनियोंके मध्यमें प्रतिज्ञा करके प्राण रहते हुए मैं प्रतिज्ञाको भङ्ग करनेके लिये समर्थ नहीं हूं, क्योंकि सत्यही मेरा सदा प्रिय है। हे सीते! लक्ष्मणसहित तुझको और अपने प्राणोंको भी मैं त्याग सकता हूं, किन्तु प्रतिज्ञाको नहीं त्याग सकता, विशेष कर ब्राह्मणोंके प्रति प्रतिज्ञा करके तो कदापि नहीं त्यागूंगा। वैदेहि! ऋषियोंके न कहनेपर भी मुझे ऋषियोंका परिपालन अवश्य करना योग्य है, प्रतिज्ञा करनेपर तो कहनाही क्या है? हे अनघे! मेरे स्नेहसे तथा मेरेमें तेरी प्रीति होनेसे तूने यह कहा है। हे सीते! मैं प्रसन्न हूं, क्योंकि कोई भी अप्रिय पुरुष इस प्रकार शिक्षा नहीं देता है। यह कथन तेरे योग्य तथा तेरे कुलके योग्यही है। प्राणोंसे भी अधिक प्रिय तू मेरी सहधर्मिणी है।" धनुर्धारी महात्मा राम मिथिलाधिपतिकी पुत्री प्यारी सीतासे इस प्रकार कह कर लक्ष्मणसहित रमणीय तपोवनोंको चल दिये। (१६–२२)

यहाँ दशम सर्ग समाप्त हुआ॥ १०॥

एकादशः सर्गः ।

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना ।
पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥ १
तौ पश्यमानौ विविधाञ्शैलप्रस्थान्वनानि च ।
नदीश्च विविधा रम्या जग्मतुः सह सीतया ॥ २
सारसांश्चक्रवाकांश्च नदीपुलिनचारिणः ।
सरांसि च सपद्मानि युतानि जलजैः खगैः ॥ ३
यूथबन्धांश्च पृषतां मदोन्मत्तान्विषाणिनः ।
महिषांश्च वराहांश्च गजांश्च द्रुमवैरिणः ॥ ४
ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे ।
ददृशुः सहिता रम्यं तटाकं योजनायतम् ॥ ५
पद्मपुष्करसंबाधं गजयूथैरलंकृतम् ।
सारसैर्हंसकादम्बैः संकुलं जलजातिभिः ॥ ६
प्रसन्नसलिले रम्ये तस्मिन्सरसि शुश्रुवे ।
गीतवादित्रनिर्घोषो न तु कश्चन दृश्यते ॥ ७
ततः कौतूहलाद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः ।
मुनिं धर्मभृतं नाम प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ ८

आगे राम और पीछे सुशोभना सीता चली तथा धनुर्धारी लक्ष्मण सबके पीछे चला । सीताके सहित वे दोनों पर्वतोंके शिखर, वन, रमणीक बहुतसी नदी, नदीके किनारेपर विचरनेवाले सारस, चक्रवाकोंको, जलपक्षियोंसे युक्त तथा कमलोंसे पूर्ण तालाबोंको, इकट्ठे हुए बिन्दुमृगोंको, मदोन्मत्त सींगवाले भैंसोंको, सूअरोंको, द्रुमवैरी हाथियोंको देखते हुए चल दिये। उन्होंने बहुतसा मार्ग चल कर सूर्यके अस्तायमान होनेपर कमल तथा सपोंसे व्याप्त, जलचारी सारसपक्षियों, राजहंसों और कलहंसोंसे पूर्ण और गजयूथोंसे शोभित एक योजन लम्बा चौडा तालाब देखा । निर्मल जलवाले रमणीय उस तालाबमें उन्होंने गीतों और बाजोंका शब्द सुना, किन्तु वहां कोई दिखाई न दिया । तब आश्चर्यमें हो महाबली राम तथा

इदमत्यद्भुतं श्रुत्वा सर्वेषां नो महामुने ।
कौतूहलं महज्जातं किमिदं साधु कथ्यताम् ९
तेनैवमुक्तो धर्मात्मा राघवेण मुनिस्तदा ।
प्रभावं सरसः क्षिप्रमाख्यातुमुपचक्रमे १०
इदं पञ्चाप्सरो नाम तटाकं सार्वकालिकम् ।
निर्मितं तपसा राम मुनिना माण्डकर्णिना ११
स हि तेपे तपस्तीव्रं माण्डकर्णिर्महामुनिः ।
दशवर्षसहस्राणि वायुभक्षो जलाशये १२
ततः प्रव्यथिताः सर्वे देवाः साग्निपुरोगमाः ।
अब्रुवन्वचनं सर्वे परस्परसमागताः १३
अस्माकं कस्यचित्स्थानमेष प्रार्थयते मुनिः ।
इति संविग्नमनसः सर्वे तत्र दिवौकसः १४
ततः कर्तुं तपोविघ्नं सर्वदेवैर्नियोजिताः ।
प्रधानाप्सरसः पञ्च विद्युच्चलितवर्चसः १५
अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः ।

लक्ष्मण साथ आये हुए मुनियोंमेंसे धर्मभृत मुनिसे पूछने लगे— 'हे महामुने इस अद्भुत दृश्यको सुनकर हमारे सबके मनमें बडा भारी कौतूहल उत्प हुआ है, यह क्या है सो ठीक ठीक कहिये ।' (१–९)

तब रामचन्द्रसे इस प्रकार प्रार्थित धर्मात्मा मुनि उस तालाब सब कारण कहने लगे— 'हे राम ! सब कालमें रहनेवाला यह पञ्चाप्स नामक तालाब है, इसको माण्डकर्णि नामक मुनिने तपद्वारा निर्माण कि था । जलके आश्रयवाले तथा पवनभोजी महामुनि उस माण्डकर्णिने य दश हजार वर्ष घोर तप किया था । उस तपसे व्यथित हुए अग्न्या सब देवता इकट्ठे होकर आपसमें कहने लगे— 'यह मुनि हमारेमेंसे किसी स्थान चाहता है' ऐसा विचार कर सब देवता उद्विग्नचित्त हुए । तब स देवताओंने तपके नष्ट करनेको बिजलीके समान आभावाली पांच मुख अप्सराएं नियुक्त कीं । (१०–१५)

नीतो मदनवश्यत्वं देवानां कार्यसिद्धये १६
ताश्चैवाप्सरसः पञ्च मुनेः पत्नीत्वमागताः ।
तटाके निर्मितं तासां तस्मिन्नन्तर्हितं गृहम् १७
तत्रैवाप्सरसः पञ्च निवसन्त्यो यथासुखम् ।
रमयन्ति तपोयोगान्मुनिं यौवनमास्थितम् १८
तासां संक्रीडमानानामेष वादित्रनिःस्वनः ।
श्रूयते भूषणोन्मिश्रो गीतशब्दो मनोहरः १९
आश्चर्यमिति तस्यैतद्वचनं भावितात्मनः ।
राघवः प्रतिजग्राह सह भ्रात्रा महायशाः २०
एवं कथयमानः स ददर्शाश्रममण्डलम् ।
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम् २१
प्रविश्य सह वैदेह्या लक्ष्मणेन च राघवः ।
तदा तस्मिन्स काकुत्स्थः श्रीमत्याश्रममण्डले २२
उषित्वा स सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः ।

"तब उन अप्सराओंने देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये पारावारदर्शी अर्थात् परमात्मा तथा जीवके स्वरूप जाननेवाले उस ऋषिको कामदेवके वशमें कर दिया। वे पांचों अप्सरा मुनिकी भार्या हुईं, तब मुनिने इस तालाबके बीचमें उनका घर निर्माण किया। वे पांचों अप्सरा सुखपूर्वक इसमें रहती हुईं तपोबलसे यौवनावस्थाको प्राप्त उस मुनि माण्डकर्णिको आनन्दित करने लगीं। क्रीडा करती हुईं उनके आभूषण (गहने) की आवाजसे युक्त मनोहर यह बाजों तथा गीतोंका शब्द सुनाई देता है।" महायशस्वी रामने लक्ष्मणसहित पवित्रात्मा उस महर्षिका यह कथन आश्चर्यकी न्याई सुना। (१६-२०)

मुनिके ऐसा कहते हुए रामने कुशा तथा चीरोंसे व्याप्त ब्राह्मण-सम्बन्धिनी लक्ष्मीसे पूर्ण आश्रममण्डलको देखा। आश्रममण्डलमें प्रवेश करके सम्पूर्ण मुनियोंसे पूज्यमान महायशस्वी वह राम सीता तथा लक्ष्मण-सहित वहां रहे। उक्त प्रकारसे उस शोभायमान आश्रममें कुछ समय रहकर

जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् २३
येषामुषितवान्पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित् ।
क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरं क्वचित् २४
क्वचिच्च चतुरो मासान्पञ्च षट् च परान्क्वचित् ।
अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकं क्वचित् २५
त्रीन्मासानष्टमासांश्च राघवो न्यवसत्सुखम् २६
तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ।
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश २७
परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह २८
स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः ।
तत्रापि न्यवसद्रामः किञ्चित्कालमरिंदमः २९
अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचित्तं महामुनिम् ।
उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ३०
अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः ।

वहांके रहनेवाले महर्षियोंसे पूज्यमान महान् अस्त्रोंको जाननेवाले रामचन्द्र जिनके पास पहिले रहे थे, उन तपस्वियोंके आश्रमोंमें दुबारा गये। वे राम किसी आश्रममें दस महीने, किसीमें एक वर्ष, किसीमें चार महीने किसीमें पांच मास, किसीमें छः मास, किसीमें सात, कहीं सवा महीने कहीं डेढ महीने, कहीं तीन महीने और कहीं आठ महीनेपर्यन्त सुखपूर्वक रहे। (२१–२६)

इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंमें रहते हुए ऋषियोंकी अनुकूलता विहार करते हुए रामके दस वर्ष वीत गये। धर्मज्ञ वे सीताके सहित इस प्रकार आश्रमोंकी परिक्रमा करके पुनः सुतीक्ष्णके आश्रममें आये। उस आश्रममें आकर ऋषियोंसे पूजित तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला वह राम वहां भी कुछ काल रहा। इसके अनन्तर किसी समय आश्रममें रहते हुए तथा बैठे हुए रामने विनयपूर्वक महामुनि सुतीक्ष्णसे यह कहा कि

वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम् ३१
न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया।
कुत्राश्रमपदं रम्यं महर्षेस्तस्य धीमतः ३२
प्रसादार्थं भगवतः सानुजः सह सीतया।
अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम् ३३
मनोरथो महानेष हृदि संपरिवर्तते।
यदहं तं मुनिवरं शुश्रूषेयमपि स्वयम् ३४
इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः।
सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम् ३५
अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम्।
अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव ३६
दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन्स्वयमेव ब्रवीषि माम्।
अयमाख्यामि ते राम यत्रागस्त्यो महामुनिः ३७
योजनान्याश्रमात्तात याहि चत्वारि वै ततः।
दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ३८

"हे भगवन्! मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य इस वनमें रहते हैं- यह मैंने कथा कहते हुए ऋषियोंके मुखसे सुना है, किन्तु इस वनकी महत्ता (बडा होने) के कारण उस स्थानको मैं नहीं जानता हूं। उस बुद्धिमान् महर्षिका पवित्र आश्रम कहां है? आपकी प्रसन्नतासे लक्ष्मण तथा सीतासहित मैं अगस्त्य मुनिको अभिवादन करनेको उस जगह जाना चाहता हूं! मेरे हृदयमें यह बडा भारी मनोरथ (अभिलाष) विद्यमान है कि मैं स्वयं उस मुनिकी शुश्रूषा करूं।" (२७-३४)

वह सुतीक्ष्ण मुनि धर्मात्मा रामके इस वचनको सुनकर प्रसन्न हुआ और दशरथपुत्र रामके प्रति यह बोला कि- "हे राघव! मैं भी लक्ष्मणसहित तुमसे यही कहनेको था कि सीतासहित तुम अगस्त्यके पास जाओ। दैवयोगसे अब तुमने स्वयंही इस विषयमें मुझसे कहा है, अतः हे वत्स! मैं तुझे बतलाता हूं कि जहां महामुनि अगस्त्य रहते हैं। इस आश्रमसे

स्थलीप्रायवनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते ।
बहुपुष्पफले रम्ये नानाविहगनादिते ३९
पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः ।
हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ४०
तत्रैकां रजनीं व्युष्य प्रभाते राम गम्यताम् ।
दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः ४१
तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम् ।
रमणीये वनोद्देशे बहुपादपशोभिते ४२
रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च त्वया सह ।
स हि रम्यो वनोद्देशो बहुपादपसंयुतः ४३
यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम् ।
अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महामते ४४
इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राऽभिवाद्य च ।
प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सह सीतया ४५

दक्षिण मार्गसे चार योजन जाओ, वहां अगस्त्यके भाईका बडा शोभायमान आश्रम है, जो कि पिप्पलीके वृक्षोंके वनसे शोभित, बहुतसे फूलवाले अधिकभूमिवाले, विविधपक्षियोंके शब्दोंसे युक्त और रमणीक वनमें है वहां हंस तथा कारण्डवनामक पक्षियोंसे व्याप्त, चक्रवाकोंसे शोभित साफ जलवाले और शुभ विविध सरोवर हैं। हे राम ! वहां एक रात बसकर प्रभातकालमें दक्षिण दिशाको लक्ष्यमें करके वनखंडके समीप जाना। एक योजन दूर जाकर वहांपर बहुतसे वृक्षोंसे व्याप्त रमणीक वन स्थानमें अगस्त्यका आश्रमस्थान है। सीता और लक्ष्मण तुम्हारे साथ वहांपर विहार करेंगे, क्योंकि बहुत वृक्षोंसे युक्त वह वन अतिरमणीय है। यदि उस महामुनिके देखनेका विचार है तो हे महायशस्विन् ! आजही गमन कीजिये।" (३५–४४)

लक्ष्मणसहित रामचन्द्र मुनिके इस कथनको सुनकर और अभि वादन करके सीता तथा लक्ष्मण सहित अगस्त्यको लक्ष्यमें करके च

पश्यन्वनानि चित्राणि पर्वतांश्चाभ्रसंनिभान् ।
सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान् ४६
सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् ।
इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ४७
एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः ।
अगस्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ४८
यथा हीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः ।
संनताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ४९
पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः ।
गन्धोऽयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ५०
तत्र तत्र च दृश्यन्ते संक्षिप्ताः काष्ठसंचयाः ।
लूनाश्च परिदृश्यन्ते दर्भा वैदूर्यवर्चसः ५१
एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् ।
पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं संप्रदृश्यते ५२
विविक्तेषु च तीर्थेषु कृतस्नाना द्विजातयः ।

दिये । रामचन्द्र रमणीक वन, मेघोंके तुल्य पर्वतों, तालाबों और मार्गमें आई हुई नदियोंको देखते हुए सुतीक्ष्णके बतलाये हुए मार्गसे सुखपूर्वक जाकर बडे आनन्दित हो लक्ष्मणसे यह वाक्य बोले कि– "निश्चय यह आश्रम महात्मा अगस्त्य मुनिके पवित्रकर्मवाले भाईका दीखता है । क्योंकि जैसे चिह्न इसके सुने थे, वैसेही इस वनके मार्गमें मैं पुष्प तथा फलोंके भारसे झुके हुए हजारों वृक्ष देखता हूं । देखो, पके हुए पिप्पलीके फलोंकी कटुरसवाली तथा पवनद्वारा सहसा उठाई यह गन्ध इस वनमें आती है । (४५–५०)

"जहां तहां काष्ठके समूह पडे हुए दिखाई देते हैं और रास्तेमें वैदूर्यमणिके वर्णसदृश हरे हरे कटे हुए दर्भ (कुशा) भी दीख पडते हैं । यह देखो, वनके बीचमें आश्रमकी अग्निके धुएंका अग्रभाग काले काले मेघोंके शिखरके समान दिखलाई दे रहा है । देखो, पवित्र तीर्थोंके जलमें स्नान

पुण्योपहारं कुर्वन्ति कुसुमैः स्वयमर्जितैः ५३
ततः सुतीक्ष्णवचनं यथा सौम्य मया श्रुतम् ।
अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ५४
न्निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया ।
यस्य भ्रात्रा कृतेयं दिक् शरण्या पुण्यकर्मणा ५५
इहैकदा किल क्रूरो वातापिरपि चेल्वलः ।
भ्रातरौ सहितावास्तां ब्राह्मणघ्नौ महासुरौ ५६
धारयन्ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन् ।
आमन्त्रयति विप्रान्स श्राद्धमुद्दिश्य निर्घृणः ५७
भ्रातरं संस्कृतं कृत्वा ततस्तं मेषरूपिणम् ।
तान्द्विजान्भोजयामास श्राद्धदृष्टेन कर्मणा ५८
ततो भुक्तवतां तेषां विप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् ।
वातापे निष्क्रमस्वेति स्वरेण महता वदन् ५९
ततो भ्रातुर्वचः श्रुत्वा वातापिर्मेषवन्नदन् ।

किये हुए ये द्विजाति लोग स्वयं इकट्ठे किये हुए फूलों द्वारा इष्टदेवताओंके प्रति पुष्पावलि (फूलोंकी भेट) दे रहे हैं। हे सौम्य! सुतीक्ष्णका जैसा कथन मैंने सुना है, उसके अनुसार निश्चय अगस्त्यके भाईका यह आश्रम है। जिसके भाई अगस्यने लोगोंके हितकी इच्छासे अपने बलके द्वारा वातापिको मारकर यह पवित्र कर्मवाली दक्षिण दिशा सबके वसनेयोग्य कर दी है। (५१–५५)

"एक समय यहांपर ब्राह्मणोंके मारनेवाले बडे भारी राक्षस वातापि तथा इल्वल दो भाई रहते थे। घृणारहित इल्वल ब्राह्मणका रूप धर कर संस्कृत भाषा बोलता हुआ श्राद्ध बता करके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करता था। तदनन्तर मेषरूपी अपने भाईको संस्कृत करके श्राद्धकी विधिके अनुसार कर्मद्वारा उन द्विजोंको भोजन कराता था। तदनु उन ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर वह इल्वल कहता था कि 'हे वातापे! बडे स्वरसे बोलता हुआ निकल।' तदनन्तर वातापि भाईके वचन सुनकर मेषके

भित्त्वा भित्त्वा शरीराणि ब्राह्मणानां विनिष्पतत् ६०
ब्राह्मणानां सहस्राणि तैरेवं कामरूपिभिः।
विनाशितानि संहत्य नित्यशः पिशिताशनैः ६१
अगस्त्येन तदा देवैः प्रार्थितेन महर्षिणा।
अनुभूय किल श्राद्धे भक्षितः स महासुरः ६२
ततः संपन्नमित्युक्त्वा दत्त्वा हस्ते वने जलम्।
भ्रातरं निष्क्रमस्वेति इल्वलः समभाषत ६३
स तदा भाषमाणं तु भ्रातरं विप्रघातिनम्।
अब्रवीत्प्रहसन्धीमानगस्त्यो मुनिसत्तमः ६४
कुतो निष्क्रमितुं शक्तिर्मया जीर्णस्य रक्षसः।
भ्रातुस्तु मेषरूपस्य गतस्य यमसादनम् ६५
अथ तस्य वचः श्रुत्वा भ्रातुर्निधनसंश्रितम्।
प्रधर्षयितुमारेभे मुनिं क्रोधान्निशाचरः ६६
सोऽभ्यद्रवद्द्विजेन्द्रं तं मुनिना दीप्ततेजसा।
चक्षुषानलकल्पेन निर्दग्धो निधनं गतः ६७
तस्यायमाश्रमो भ्रातुस्तटाकवनशोभितः।

[भ]याई शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके शरीरोंको भेदन कर निकल पडता। [का]मरूपी मांसभक्षक वे इस प्रकार नित्य सहस्रों ब्राह्मणोंको नष्ट करते थे। [त]ब देवताओंसे प्रार्थित महर्षि अगस्त्यने श्राद्धमें वह महा असुर भक्षण कर लिया ऐसा प्रसिद्ध है। (५६–६२)

"श्राद्धकी समाप्तिमें इल्वलने श्राद्ध पूरा हो गया ऐसा कहकर और [ह]ाथ धुलाकर निकल आओ, इस प्रकार भाईको कहा। विप्रघाती भाईको [इ]स प्रकार कहते हुए इल्वलको देखकर महामुनि धीमान् अगस्त्य हंसते [हु]ए कहने लगे। 'मेरे द्वारा पचाये हुए और यमालयको प्राप्त मेषरूपी तेरे [भ]ाईको निकलनेकी शक्ति कहां है?' वह राक्षस भाईका मरणात्मक [म]ुनिका वचन सुनकर क्रोधसे अगस्त्यको मारनेको उद्यत हुआ। वह [म]ुनिके ऊपर दौडा, बडे तेजस्वी मुनिद्वारा अग्निके तुल्य नेत्रसे निर्दग्ध

त्रिप्रानुकम्पया येन कर्मेदं दुष्करं कृतम् ६८
एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह ।
रामस्यास्तं गतः सूर्यः संध्याकालोऽभ्यवर्तत ६९
उपास्य पश्चिमां संध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि ।
प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत् ७०
सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः ।
न्यवसत्तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च ७१
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते रविमण्डले ।
भ्रातरं तमगस्त्यस्य आमन्त्रयत राघवः ७२
अभिवादये त्वा भगवन्सुखमस्म्युषितो निशाम् ।
आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्रजम् ७३
गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः ।
यथोद्दिष्टेन मार्गेण वनं तच्चावलोकयन् ७४
नीवारान्पनसान्सालान्वञ्जुलांस्तिनिशांस्तथा ।

हुआ और मृत्युको प्राप्त हो गया । तालाब तथा वनसे शोभित यह आश्रम उसके भाईका है, जिसने ब्राह्मणों पर दया करके बडा दुष्कर यह कर्म किया था ।" (६३ ६८

लक्ष्मणके साथ रामके ऐसा कहते हुए सूर्य अस्त हो गया और सन्ध्या समय हो गया। तब भाईके साथ विधिपूर्वक सायंकालकी सन्ध्या सम्पादन करके उस आश्रममें प्रवेश किया और उस ऋषि (अगस्त्यभ्राता) को अभिवादन किया। उस मुनिने भी रामका अच्छे प्रकार स्वागत किया। फलमूलोंको खाकर वहां एक रात रहे। उस रातके बीतने पर सूर्यमण्डलके साफ होनेपर रामचन्द्रने अगस्त्यके भाईसे निवेदन किया– "हे भगवन्! हम आपको प्रणाम करते हैं, सुखपूर्वक हमने रात्रिको बिताया है। अब हम आपसे आज्ञा चाहते हैं; क्योंकि आपके बडे भाई गुरुदेव अगस्त्यके देखनेको हम जाते हैं।" 'जाइये' इस प्रकार उस ऋषिसे आज्ञप्त रामचन्द्र सुतीक्ष्णद्वारा बतलाये मार्गसे उस वनको देखते हुए चल दिये। रामचन्द्र

चिरिबिल्वान्मधूकांश्च बिल्वानथ च तिन्दुकान् ७५
पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् ।
ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान् ७६
हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् ।
मत्तैः शकुनिसङ्घैश्च शतशः प्रतिनादितान् ७७
ततोऽब्रवीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः ।
पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ७८
स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा क्षान्ता मृगद्विजाः ।
आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः ७९
अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ।
आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्तश्रमापहः ८०
प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः ।
प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः ८१
निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया ।
दक्षिणा दिक् कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा ८२

वहांपर फूले हुए तथा फूलोंसे लदी हुई बेलोंसे वेष्टित जलकदम्ब, पनस, तिनिश, वकुल, अलमतास, महुआ, बेल और तिन्दुक नामक सैकडों वनवृक्ष देखे, जोकि हाथियोंकी सूंडोंसे भग्न, वानरोंसे शोभित और सैंकडों मस्त पक्षियोंके समूहसे गुञ्जायमान थे ॥ (६९-७७)

तब कमलनेत्र राम समीपमें स्थित पीछे चलते हुए, पराक्रमी और शोभाको बढानेवाले लक्ष्मणसे बोले- "जिस हेतुसे वृक्ष सरस पत्तोंवाले तथा मृग और पक्षिगण शान्त दिखाई देते हैं, इससे अनुमान होता है कि उस शुद्धात्मा महर्षिका आश्रम अति दूर नहीं है । जो संसारमें अपनेही कर्मोंसे ' अगस्त्य ' ऐसे प्रसिद्ध हैं, उसका थके हुए प्राणियोंका श्रम दूर करनेवाला यह आश्रम दिखाई देता है । जो बहुतसे धूमसे व्याप्त, चीरोंकी पंक्तियोंसे शोभित, शान्त है, मृगोंका यूथ जिसमें और विविध पक्षियोंसे शब्दायमान है । पवित्र कर्मवाले जिसने लोकोंके हितकी कामनासे अपने

तस्येदमाश्रमपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः।
दिगियं दक्षिणा त्रासाद् दृश्यते नोपभुज्यते ८३
यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा।
तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः ८४
नाम्ना चेयं भगवतो दक्षिणा दिक्प्रदक्षिणा।
प्रथिता त्रिषु लोकेषु दुर्धर्षा क्रूरकर्मभिः ८५
मार्गं निरोद्धुं सततं भास्करस्याचलोत्तमः।
संदेशं पालयंस्तस्य विन्ध्यशैलो न वर्धते ८६
अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः।
अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान्विनीतमृगसेवितः ८७
एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यं रतः सताम्।
अस्मानधिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति ८८
आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यं तं महामुनिम्।
शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो ८९

बलद्वारा वातापिको मारकर दक्षिण दिशाको शरण लेनेयोग्य अर्थात् भयरहित कर दिया है और जिसके प्रभावसे राक्षस इस दक्षिण दिशाको दुःखसे देख सकते हैं, पूर्वकालकी न्याई इसमें नहीं विचरते, उस महर्षिका यह आश्रम है। जिस समयसे पवित्र कर्मवाले इस महर्षिद्वारा यह दिशा आक्रान्त अर्थात् इसके अधिकारमें आई है उसही समयसे राक्षस निर्वैर और शान्त हो गये हैं (७८–८४)

"इस ही लिये ऐश्वर्यशाली उसके नामसे दुष्टकर्मवालोंसे दुःसह्य यह दक्षिण दिशा 'अगस्त्य दिशा' तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुई है। सूर्यका मार्ग रोकनेमें तत्पर, पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्यपर्वत जिसकी आज्ञाको पालता हुआ नहीं बढता है, संसारमें प्रसिद्ध कर्मवाले दीर्घायु उस अगस्त्यका श्रेष्ठ मनुष्योंसे सेवित शोभावाला यह आश्रम है। यह महर्षि लोकपूजित, साधु और श्रेष्ठ मनुष्योंके हितमें नित्य रत है। यह आए हुए हमको कल्याणसे युक्त करेगा। यहांपर मैं महामुनि उस अगस्त्यकी आराधना

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
अगस्त्यं नियताहाराः सततं पर्युपासते ९०
नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः।
नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष यथाविधः ९१
अत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैः सह।
वसन्ति नियताहारा धर्ममाराधयिष्णवः ९२
अत्र सिद्धा महात्मानो विमानैः सूर्यसंनिभैः।
त्यक्त्वा देहान्नवैर्देहैः स्वर्याताः परमर्षयः ९३
यक्षत्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च।
अत्र देवाः प्रयच्छन्ति भूतैराराधिताः शुभैः ९४
आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः।
निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया ९५

इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकादशः सर्गः ॥११॥ [३७१]

करूंगा। हे सौम्य! हे ऐश्वर्यशालिन्! मैं यहांपरही वनवासका शेष समय विताऊंगा। (८५-८९)

"यहां गन्धर्वों सहित देवता, सिद्ध और परमर्षि नियताहारी अगस्त्य-की उपासना करते हैं। यह मुनि इस प्रकारके हैं कि यहांपर मिथ्यावादी, क्रूर, शठ, पुरुषघाती और कामाचारी कोई भी नहीं जी सकता। यहांपर नियताहारी और धर्मकी आराधनाकी इच्छावाले देवता, यक्ष, नाग और किन्नर रहते हैं। यहांपर महात्मा और तपसे सिद्ध हुए महर्षि शरीर त्याग-कर नवीन देहोंसे सूर्यके तुल्य दैदीप्यमान विमानोंद्वारा स्वर्गको गये हैं। शुभकर्मा प्राणियोंद्वारा आराधित ब्रह्मादि देवता यहांपर यक्षत्व, अमरत्व और विविध राज्योंको प्रदान करते हैं! हे लक्ष्मण! हम आश्रममें आ गये हैं, अतः तुम आगे जाओ और सीतासहित यहां प्राप्त मुझे ऋषिसे निवेदन करो।" (९०-९५)

यहाँ एकादश सर्ग समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ।

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः ।
अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह १
राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली ।
रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया २
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः ।
अनुकूलश्च भक्तश्च यदि ते श्रोत्रमागतः ३
ते वयं वनमत्युग्रं प्रविष्टाः पितृशासनात् ।
द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम् ४
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः ।
तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम् ५
स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम् ।
कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा ६
यथोक्तं लक्ष्मणेनैव शिष्योऽगस्त्यस्य संमतः ।
पुत्रौ दशरथस्येमौ रामो लक्ष्मण एव च ७
प्रविष्टावाश्रमपदं सीतया सह भार्यया ।
द्रष्टुं भवन्तमायातौ शुश्रूषार्थमरिंदमौ ८

रामानुज लक्ष्मणने आश्रम-स्थानमें प्रवेश करके अगस्त्यके शिष्यको प्राप्त होकर यह वाक्य कहा कि– "एक दशरथ नामी राजा हैं, उनका बलवान् बडा पुत्र राम भार्या सीतासहित मुनिको देखनेके लिये आया है। मेरा नाम लक्ष्मण है, मैं उसका हितकारी, भक्त और आज्ञाकारी छोटा भाई हूं, जो कभी आपने सुना हो। हम सब पिताकी आज्ञासे अत्युग्र वनमें प्रविष्ट हुए हैं। हम सब भगवान् मुनिको देखना चाहते हैं, सो आप उनके प्रति निवेदन कीजिये।" वह तपोधनी शिष्य लक्ष्मणका यह वचन सुनकर 'अच्छा' ऐसा कहकर निवेदन करनेके लिये अग्निगृहमें प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर हाथ जोडे हुए अगस्त्यशिष्यने तपोबलसे दुर्धर्ष मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यके प्रति रामके आनेका वृत्तान्त जैसे कि लक्ष्मणने कहा था, कहा-

यदत्रानन्तरं तत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि।
ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् ९
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत्।
दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः १०
मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति।
गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सह लक्ष्मणः ११
प्रवेश्यतां समीपं मे किमसौ न प्रवेशितः।
एवमुक्तस्तु मुनिना धर्मज्ञेन महात्मना १२
अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेति नियताञ्जलिः।
तदा निष्क्रम्य संभ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् १३
क्वासौ* रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम्।
ततो गत्वाश्रमपदं शिष्येण सह लक्ष्मणः १४
दर्शयामास काकुत्स्थं सीतां च जनकात्मजाम्।
तं शिष्यः प्रश्रित वाक्यमगस्त्यवचनं ब्रुवन् १५

"हे मुने! राजा दशरथके ये दोनों पुत्र शत्रुको दमन करनेवाले राम, लक्ष्मण भार्या सीतासहित आपको देखने तथा शुश्रूषा करनेके लिये आये हैं, इस विषयमें जो कुछ करना चाहिये वह आप आज्ञा दीजिये।" (१-९)

तब महर्षि अगस्त्य शिष्यद्वारा लक्ष्मणसहित राम तथा महाभागा सीताको आया हुआ सुनकर कह कहने लगे कि— "बहुत कालके बाद प्रारब्धसे (दैवयोगसे) आज राम मुझे देखनेको आये हैं, मैंभी बहुत दिनोंसे उनका आगमन चाहता था। जल्दी जाओ, सत्कारयुक्त लक्ष्मणसहित तथा सीतासहित रामको मेरे समीप लाओ, अबतक उन्हें प्रवेश क्यों नहीं कराया?" धर्मज्ञ महात्मा मुनिसे इस प्रकार प्रेरित वह शिष्य प्रणाम करके हाथ जोडे हुए 'बहुत अच्छा' इस प्रकार कहने लगा। तब वहांसे निकलकर वह शिष्य संभ्रान्तकी न्याईं लक्ष्मणसे बोला कि 'वह राम कहां है, स्वयं मुनिके देखनेको प्रवेश करें।' तदनन्तर शिष्यसहित लक्ष्मणने आश्रमके बाहर आकर रामचन्द्रसहित जनकपुत्री सीताको दिखाया। तब अगस्त्य

प्रावेशयद्यथान्यायं सत्कारार्हं सुसत्कृतम् ।
प्रविवेश ततो रामः सीतया सह लक्ष्मणः १६
प्रशान्तहरिणाकीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् ।
स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्नेः स्थानं तथैव च १७
विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः ।
सोमस्थानं भगस्थानं स्थानं कौबेरमेव च १८
धातुर्विधातुः स्थानं च वायोः स्थानं तथैव च ।
स्थानं च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः १९
स्थानं तथैव गायत्र्या वसूनां स्थानमेव च ।
स्थानं च नागराजस्य गरुडस्थानमेव च २०
कार्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति ।
ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत् २१
तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसम् ।
अब्रवीद्वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् २२
एष लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः ।
औदार्येणावगच्छामि निधानं तपसामिदम् २३

मुनिके कथनको कहते हुए शिष्यने यथायोग्य सत्कारके योग्य रामको प्रवेश कराया। (९–१६)

तब सीता और लक्ष्मणसहित रामने शान्त मृगोंसे व्याप्त आश्रमको देखते हुए प्रवेश किया। उसने वहां ब्रह्मा, अग्नि, विष्णु, महेन्द्र, विवस्वान, चन्द्र, भग नामक देवता, कुबेर, धाता, विधाता, वायु, नागराज महात्मा अनन्त (शेष), गायत्री, वसुओं, महात्मा पाशहस्त वरुण, कार्तिकेय और धर्म इनके पृथक् पृथक् स्थान देखे। उस समय शिष्योंसे परिवृत मुनि अगस्त्य भी होमशालासे निकले। रामचन्द्रने बडे तेजस्वी मुनियोंके आगे स्थित अगस्त्यजीको देखा। पराक्रमी रामने शोभाके बढानेवाले लक्ष्मणसे कहा कि 'हे लक्ष्मण ! ऐश्वर्यशाली यह अगस्त्य ऋषि होमशालासे निकले हैं उदारतासे हम अब तपोंके निधि इनके पास चलेंगे।' (१७–२३)

एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम् ।
जग्राहापततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः २४
अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः कृताञ्जलिः ।
सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः २५
प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः ।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत् २६
अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्य च ।
वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ २७
प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुंगवः ।
उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम् २८
अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदाचरन् ।
दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत् २९
राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्तः प्रियातिथिः ३०

शत्रुओंको तपानेवाले, महाबाहु बडे प्रसन्न हुए रामने सूर्यतुल्य तेजस्वी अगस्त्यको लक्ष्यमें रखकर, लक्ष्मणसे ऐसा कहकर मुनिके चरणोंको ग्रहण किया। धर्मात्मा राम मुनिको अभिवादन करके लक्ष्मण तथा वैदेही सीतासहित हाथ जोडकर खडे रहे। उस मुनिने रामको अतिथित्वेन स्वीकार किया और अर्घ्य, पाद्य, आसनादिसे उसकी पूजा करके तथा कुशलप्रश्न कहकर 'बैठो' इस प्रकार कहा। उनके बैठ जानेपर मुनिने बलिवैश्वदेव करके, अर्घ्य देकर और उन अतिथियोंका पूजन करके वानप्रस्थधर्मद्वारा उनको भोजन दिया। इसके बाद धर्मज्ञ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य प्रथम आप बैठकर बैठे हुए, हाथ जोडे हुए और धर्मके जाननेवाले रामसे बोले कि– "हे काकुत्स्थ! बलिवैश्वदेव करके तथा अर्घ्य देकर अतिथिकी पूजा करे। यह निश्चय है कि अन्यथा प्रकारसे आचरण करता हुआ तपस्वी झूंठी गवाही देनेवालेके समान दूसरे लोकमें अपने मांसको भक्षण करता है। आप तो राजा धर्मचारी, महारथी, सब लोगोंद्वारा पूजनीय तथा माननीय

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्च राघवम् ।
पूजयित्वा यथाकामं ततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत् ३१
इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम् ।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ३२
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः ।
दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ ३३
संपूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ।
महाराजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ३४
अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान् ।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम् ३५
तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद ।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ३६
एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् ।
दत्त्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ३७

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥१२॥[४

हैं और प्रिय अतिथि होकर यहांपर आये हैं।" (२४-३०)

अगस्त्य ऋषि इस प्रकार कहकर फल, मूल, पुष्प और अ सत्कारयोग्य द्रव्योंसे यथेष्ट रामकी पूजा करके फिर बोले- "हे पुरुषश्रेष्ठ यह सुवर्ण तथा रत्नोंसे भूषित, विश्वकर्माद्वारा निर्मित बडा दिव्य वैष्णव धनुष् है और ब्रह्माका दिया हुआ, अमोघ और सूर्यके तेजके तुल्य है बडा उत्तम शर (तीर) है। जलती हुई अग्निके तुल्य निशित बाणों, पूर्ण, अक्षयतीरवाले ये दोनों तरकस मुझे महेन्द्रने दिये थे। सुवर्णसे भूषित यह और सुवर्णके कोश (म्यान) वाली यह तलवार है। हे राम! पुराकालमें विष्णुने इस धनुष् आदिसे बडे भारी असुरोंको नष्ट करके देवताओंको दीप्तिमती संपत्ती दी थी! हे मानद! वह धनुष्, दोनों तरकस शर और खड्ग (तलवार) को जीतके लिये तुम ग्रहण करो जैसे इन्द्रने वज्रको ग्रहण किया था।" महातेजस्वी, ऐश्वर्यशाली अगस्त्यने इस प्रती

त्रयोदशः सर्गः ।

राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोऽस्मि लक्ष्मण।
अभिवादयितुं यन्मां प्राप्तौ स्थः सह सीतया १
अध्वश्रमेण वां खेदो बाधते प्रचुरश्रमः ।
व्यक्तमुत्कण्ठते वापि मैथिली जनकात्मजा २
एषा च सुकुमारी च खेदैश्च न विमानिता ।
प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता ३
यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु ।
दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छती ४
एषा हि प्रकृतिः स्त्रीणामासृष्टे रघुनन्दन ।
समस्थमनुरज्यन्ते विषमस्थं त्यजन्ति च ५
शतह्रदानां लोलत्वं शस्त्राणां तीक्ष्णतां तथा ।
गरुडानिलयोः शैघ्र्यमनुगच्छन्ति योषितः ६
इयं तु भवतो भार्या दोषैरेतैर्विवर्जिता ।

कहकर और सम्पूर्ण वे श्रेष्ठ आयुध रामको देकर फिर कहा । (३१-३७)

यहाँ द्वादश सर्ग समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

" हे राम ! तेरेपर मैं प्रसन्न हुआ हूं, हे लक्ष्मण ! तेरे ऊपर भी प्रसन्न हुआ हूं, क्योंकि सीतासहित आप मुझे अभिवादन करने प्राप्त हुए हैं। मार्गके श्रमसे अधिक परिश्रमसे उत्पन्न खेद तुम दोनोंको बाधित करता है और जनकात्मजा सीता भी विश्रामकी इच्छा करती है । यह सुकुमारी है, दुःखोंसे परिभूत (सतायी हुई) नहीं है और पतिस्नेहसे प्रेरित हुई यह बडे दोषोंवाले वनमें आयी है । हे राम ! जैसे यह सीता यहां विहार करे वैसे कीजिये, क्योंकि बडे कठिन कर्म करनेवाली यह इस वनमें तुम्हारे पीछे चलती है । हे रघुनन्दन ! सृष्टिके आरंभसेही स्त्रियोंकी यह प्रकृति चली आती है कि अच्छी दशामें पतिकी अनुगामिनी होती हैं और दुर्दशासे युक्तको त्याग देती हैं। स्त्रियां बिजुलियोंकी चंचलता, शस्त्रोंकी तीक्ष्णता (तेजी) और गरुड तथा पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं,

श्लाघ्या च व्यपदेश्या च यथा देवेष्वरुन्धती ७
अलंकृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह ।
वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिंदम ८
एवमुक्तस्तु मुनिना राघवः संयताञ्जलिः ।
उवाच प्रश्रितं वाक्यमृषिं दीप्तमिवानलम् ९
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गवः ।
गुणैः सभ्रातृभार्यस्य गुरुर्नः परितुष्यति १०
किं तु व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम् ।
यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम् ११
ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य भाषितम् ।
ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा ततोवाच वचः शुभम् १२
इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः ।
देशो बहुमृगः श्रीमान्पञ्चवट्यभिविश्रुतः १३
तत्र गत्वाऽऽश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह ।

किन्तु यह आपकी भार्या तो इन सब दोषोंसे रहित है, श्लाघनीय पतिव्रताओंमें अग्रगण्य है जैसे कि देवी अरुन्धती । हे शत्रुनाशक रा वह स्थान बडा अलंकृत होगा जहांपर लक्ष्मणसहित तथा इस वैदे सहित तुम रहोगे । " (१-८)

मुनिद्वारा इस प्रकार प्रशंसित रामने हाथ जोडकर दीप्त अ तुल्य तेजस्वी महर्षि अगस्त्यसे विनीत वचन कहा कि– "मैं धन्य अनुगृहीत हूं, क्योंकि भाई तथा भार्यासहित जिस मेरे गुणोंसे वर देने ऋषिश्रेष्ठ आप प्रसन्न हुए हैं । अब आप मुझे बहुत वनवाला और ज युक्त ऐसा स्थान बतलाइये जहांपर मैं आश्रम बनाकर निरन्तर सुखपू रहूं । " तब रामके उस कथनको सुनकर धैर्यसम्पन्न धर्मात्मा मुनि अगस्त्यजी कुछ देर ध्यान करके बहुत निश्चयवाला वचन बोले । (९-१

"हे तात! यहांसे दो योजन (आठ कोस) पर बहुत फल मूलों जलवाला, सुहावना, बहुतसे मृगोंसे युक्त और पञ्चवटी नामसे प्र

रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् १४
विदितो ह्येष वृत्तान्तो मम सर्वस्तवानघ।
तपसश्च प्रभावेण स्नेहाद्दशरथस्य च १५
हृदयस्थं च ते च्छन्दो विज्ञातं तपसा मया।
इह वासं प्रतिज्ञाय मया सह तपोवने १६
अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति।
स हि रम्यो वनोद्देशो मैथिली तत्र रंस्यते १७
स देशः श्लाघनीयश्च नातिदूरे च राघव।
गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते १८
प्राज्यमूलफलैश्चैव नानाद्विजगणैर्युतः।
विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च १९
भवानपि सदाचारः शक्तश्च परिरक्षणे।
अपि चात्र वसन् राम तापसान्पालयिष्यसि २०
एतदालक्ष्यते वीर मधूकानां महावनम्।
उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमपि गच्छता २१

थान है, वहां जाकर आश्रमस्थान (कुटी) बनाकर लक्ष्मणसहित तथा स सीतासहित रहो और हे शत्रुनाशक राम! पिताके कथनको यथार्थ लन करते हुए वहां रमण करो। और तपसे मैंने आपके मनका अभिप्राय ी जान लिया है कि आप इस तपोवनमें मेरे साथ रहनेकी प्रतिज्ञा रके (मेरे कहनेसे) पंचवटीको जाओगे। हे रघुनन्दन! इसलिये मैं मसे यह कहता हूं कि तुम पंचवटीको जाओ, क्योंकि वह वनोद्देश मणीय है, इसलिये सीता वहाँ सुखसे रहेगी। वह वन श्लाघनीय है तथा हुत दूर नहीं है और गोदावरीके समीप होनेसे वहांपर सीता अच्छे कार रमण करेगी। (१३–१८)

"हे महाबाहो! वह देश बडे फल मूलोंवाला, तरह तरहके पक्षियोंके मूहसे युक्त, निर्जन, पवित्र, रमणीय है। रक्षणमें समर्थ और सदाचारी ाप भी वहां रहते हुए तपस्वियोंकी रक्षा कर सकोगे। हे वीर! देखो,

ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः ।
ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्यपुष्पितकाननः २२
अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह ।
सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम् २३
तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ ।
तमाश्रमं पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया २४
गृहीतचापौ तु नराधिपात्मजौ विषक्ततूणी समरेष्वकातरौ ।
यथोपदिष्टेन पथा महर्षिणा प्रजग्मतुः पञ्चवटीं समाहितौ ।

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रयोदशः सर्गः॥१३॥[४

चतुर्दशः सर्गः ।

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः ।
आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम् १
तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ ।

यह महुओंका बडा भारी वन दिखलाई देता है, न्यग्रोध आश्र जाते हुए इसके उत्तरीय मार्गसे जाना चाहिये । उससे आगे एक नि प्रवेश (वनरहित जंगल) में प्राप्त होकर एक पर्वत दिखलाई देगा, पर्वतके पासही नित्य पुष्पोंसे युक्त काननवाला पन्चवटी नामसे प्रसिद्ध स्थान है । " अगस्त्यद्वारा इस प्रकार प्रेरित रामचन्द्रने लक्ष्मणसहित सत्यवादी उस ऋषिको प्रदक्षिणा अभिवादनासे सत्कृत करके आज्ञा मांग उस मुनिसे आज्ञापित और अभिवादनकार्यको सम्पादित किये हुए दोनों सीतासहित उस आश्रमसे पन्चवटीको चल दिये । धनुषको हुए राजकुमार, तरकस बांधे हुए, युद्धमें अकातर अर्थात् न डरनेवाले एकाग्र चित्तवाले दोनों (रामलक्ष्मण) महर्षिके बतलाये हुए मा पंचवटीको चल दिये । (१९–२५)

यहाँ त्रयोदश सर्ग समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर पंचवटीको जाते हुए रामचन्द्रने भयानक पराक्रम तथा बडे भारी शरीरवाले एक गृध्रको देखा । महाभाग राम लक्ष्मण

मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति २
ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव ।
उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः ३
स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः ।
स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च ४
रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च ।
आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम् ५
पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन् ।
तान्मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ६
कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम् ।
शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रश्च वीर्यवान् ७
स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबलः ।
पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेताः पुलहस्तथा ८
दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव ।
कश्यपश्च महातेजास्तेषामासीच्च पश्चिमः ९
प्रजापतेस्तु दक्षस्य बभूवुरिति विश्रुताः ।

वृक्षपर बैठे हुए उसको देखकर 'तुम कौन हो?' इस प्रकार कहते हुए उसको राक्षस समझने लगे। वह पक्षी मधुर तथा सुजनतासे युक्त वाणीसे प्रसन्न करता हुआ बोला कि 'हे वत्स! मुझे अपने पिताका वयस्य (सखा) जानो।' रामचन्द्रने उसको पिताका मित्र जानकर पूजा की और उसका पवित्र कुल तथा नाम पूछा। रामका वचन सुनकर पक्षी गृध्र सब प्राणियोंकी उत्पत्ति, अपना कुल तथा नाम रामके प्रति वर्णन करने लगा। (१–५)

"हे महाबाहो! पूर्व समयमें जो प्रजापति हुए हैं, हे राघव! आदिसे कहते हुए मेरेसे उन सबको सुनो। उनमें पहिला कर्दम प्रजापति हुआ, उसके बाद विश्रुत, शेष, संश्रय, पराक्रमी बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, महाबली क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि–ये हुए और उनमें सबसे पिछला महातेजस्वी कश्यप प्रजापति

षष्टिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः १०
कश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः ।
अदितिं च दितिं चैव दनूमपि च कालकाम् ११
ताम्रां क्रोधवशां चैव मनुं चाप्यनलामपि ।
तास्तु कन्यास्ततः प्रीतः कश्यपः पुनरब्रवीत् १२
पुत्रांस्त्रैलोक्यभर्तॄन्वै जनयिष्यथ मत्समान् ।
अदितिस्तन्मना राम दितिश्च दनुरेव च १३
कालका च महाबाहो शेषास्त्वमनसोऽभवन् ।
अदित्यां जज्ञिरे देवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम १४
आदित्यां वसवो रुद्रा अश्विनौ च परंतप ।
दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तात यशस्विनः १५
तेषामियं वसुमती पुरासीत्सवनार्णवा ।
दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिन्दम १६
नरकं कालकं चैव कालकापि व्यजायत ।
क्रौञ्चीं भासीं तथा श्येनीं धृतराष्ट्रीं तथा शुकीम् १७

हुआ । हे महायशस्विन् राम! प्रजापति दक्षके बडी यशस्विनी साठ कन्या उत्पन्न हुईं ऐसा प्रसिद्ध है । उनमेंसे बडी सुन्दर अदिति, दिति, दनु, कालिका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला इन आठोंको कश्यपने ग्रहण किया। तदनु विवाह होनेपर प्रसन्न हुए कश्यप उन आठों दक्षसुताओंसे बोले कि– 'तुम मेरे तुल्य, त्रिलोकीके स्वामी पुत्रोंको उत्पन्न करो।' हे नरश्रेष्ठ राम ! हे महाबाहो ! उनमेंसे अदिति, दिति, मनु और कालिका तो तन्मना अर्थात् कश्यपकी आज्ञाकारिणी हुईं और शेषोंने उसके कथनपर ध्यान नहीं दिया । हे शत्रुनाशक अदितिमें तैंतीस देवता उत्पन्न हुए । हे परन्तप जो १२ आदित्य, ८ वसु, ११ रुद्र, और दो अश्विनी-कुमार नामसे प्रसिद्ध हुए । हे तात ! दितिने बडे यशस्वी पुत्र दैत्योंको उत्पन्न किया, पुराकालमें जिनके अधिकारमें वन तथा समुद्रों सहित सारी पृथिवी थी । (६–१६)

"हे शत्रुओंको दमन करनेवाले! दनुने अश्वग्रीव नामक पुत्रको उत्प

ताम्रा तु सुषुवे कन्याः पञ्चैता लोकविश्रुताः ।
उलूकाञ्जनयत्क्रौञ्ची भासी भासान्व्यजायत १८
श्येनी श्येनांश्च गृध्रांश्च व्यजायत सुतेजसः ।
धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः १९
चक्रवाकांश्च भद्रं ते विजज्ञे सापि भामिनी ।
शुकी नतां विजज्ञे तु नतायां विनता सुता २०
दश क्रोधवशा राम विजज्ञेऽप्यात्मसंभवाः ।
मृगीं च मृगमन्दां च हरीं भद्रमदामपि २१
मातङ्गीमथ शार्दूलीं श्वेतां च सुरभीं तथा ।
सर्वलक्षणसंपन्नां सुरसां कद्रुकामपि २२
अपत्यं तु मृगाः सर्वे मृग्या नरवरोत्तम ।
ऋक्षाश्च मृगमन्दायाः सृमराश्चमरास्तथा २३
ततस्त्विरावतीं नाम जज्ञे भद्रमदा सुताम् ।
तस्यास्त्वैरावतः पुत्रो लोकनाथो महागजः २४

किया और कालिकाने भी नरक, कालक नाम दो पुत्र उत्पन्न किये। ताम्राने संसारमें प्रसिद्ध क्रौंची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री तथा शुकी नामकी पांच कन्याएं उत्पन्न कीं। इनमेंसे क्रौंचीने उलूक (उल्लू) और भासीने भास उत्पन्न किये तथा श्येनीने बडे तेजस्वी श्येन (बाज) और गृध्र उत्पन्न किये। भामिनी धृतराष्ट्रीने सब हंस, कलहंस और चक्रवाकोंको उत्पन्न किया। शुकीने नताको पैदा किया और नताकी पुत्री विनता हुई। हे राम! क्रोधवशाने दश पुत्री उत्पन्न कीं, जो मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमदा, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा और कद्रुका नामसे प्रसिद्ध हुईं, जो सब शुभ लक्षणोंसे युक्त थीं। हे नरश्रेष्ठ! सब मृग तो मृगीकी सन्तान हैं और मृगमन्दाके ऋक्ष, सृमर अर्थात् नीले रंगके लम्बे लम्बे बालोंवाले मृगविशेष और चामर नामक मृग हुए। हरीकी सन्तान बडे वेगवाले सिंह तथा वानर हुए और भद्रमदाने इरावती नामक कन्याको उत्पन्न किया। उसका लोकनाथ महागज ऐरावत पुत्र हुआ। (१७-२४)

हर्यांश्च हरयोऽपत्यं वानराश्च तपस्विनः।
गोलाङ्गूलांश्च शार्दूली व्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् २५
मातङ्ग्यास्त्वथ मातङ्गा अपत्यं मनुजर्षभ।
दिशागजं तु काकुत्स्थ श्वेता व्यजनयत्सुतान् २६
ततो दुहितरौ राम सुरभिर्द्व्यजायत।
रोहिणीं नाम भद्रं ते गन्धर्वीं च यशस्विनीम् २७
रोहिण्यजनयद्गावो गन्धर्वी वाजिनः सुतान्।
सुरसाजनयन्नागान्राम कद्रूश्च पन्नगान् २८
मनुर्मनुष्याञ्जनयत्कश्यपस्य महात्मनः।
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्च मनुजर्षभ २९
मुखतो ब्राह्मणा जाता उरसः क्षत्रियास्तथा।
ऊरुभ्यां जज्ञिरे वैश्या पद्भ्यां शूद्राः इति श्रुतिः ३०
सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापि व्यजायत।
विनता च शुकीपौत्री कद्रूश्च सुरसा स्वसा ३१
कद्रूर्नागसहस्रं तु निजज्ञे धरणीधरान्।

"हे नरश्रेष्ठ ! शार्दूलीने बडी बडी लम्बी पूंछवाले मर्कट जाति विशेष अर्थात् लंगूर और व्याघ्रोंको उत्पन्न किया और मातङ्गीकी सन्त मातंग (हाथी) हुए। हे काकुत्स्थ ! श्वेताने भी दिशागज नामक पुत्रों उत्पन्न किया। हे राम ! आपका भला हो, सुरभीने यशस्विनी रोहि तथा गन्धर्वी नामकी दो कन्याएं उत्पन्न कीं। रोहिणीने गौ बैल आदि गन्धर्वीने अश्वोंको उत्पन्न किया। हे राम ! सुरसाने बहुत फणवाले न और कद्रुने केवल सर्पोंको पैदा किया। हे मनुजश्रेष्ठ राम ! मनुने मनु नामक यशस्वी पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको उत्पन्न कि मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, जङ्घाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र ऐसी श्रुति प्रसिद्ध है। (२५-३०)

"अनलाने सुन्दर फलवाले सब वृक्षोंको उत्पन्न किया। हे महा राम ! विनता शुकीकी पौत्री और कद्रू सुरसाकी बहिन थी। इनमेंसे क

द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु गरुडोऽरुण एव च ३१
तस्माज्जातोऽहमरुणात्संपातिश्च ममाग्रजः ।
जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिंदम ३३
सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि ।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे ३४
जटायुषं तु प्रतिपूज्य राघवो मुदा परिष्वज्य च संनतोऽभवत् ।
पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्मवाञ्जटायुषा संकथितं पुनः पुनः ३५
स तत्र सीतां परिदाय मैथिलीं सहैव तेनातिबलेन पक्षिणा ।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो रिपून्दिधक्षन्सवनानि पालयन् ३६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुर्दशः सर्गः॥८॥[४६९]

पञ्चदशः सर्गः ।

ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम् ।
उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् १

पृथ्वीको धारण करनेवाले सहस्र पुत्र पैदा किये। विनताके गरुड तथा अरुण नाम दो पुत्र हुए। उस अरुणसे मैं पैदा हुआ और सम्पाति मेरा अग्रज है। हे शत्रुदमन! श्येनीका पुत्र मुझे जटायु जानो। यदि आप चाहें तो मैं आपके वासस्थानमें सहायक हूंगा; क्योंकि पक्षियों तथा राक्षसोंसे सेवित यह वन बडा दुर्गम है। लक्ष्मण सहित आपके कहीं चले जानेपर मैं सीताकी रक्षा करूंगा।" (३१-३४)

रामचन्द्रने उस जटायुका आदर करके आनन्दसे उसका आलिङ्गन करके प्रणाम किया और आत्मवान् (ज्ञानी) उसने जटायु द्वारा बार बार कथित पिताका सखित्व (दोस्ताना) सुना। मैथिली सीताको रक्षाके लिये जटायुके वशमें करके बडे बली उस पक्षिके साथ लक्ष्मणसहित राम यज्ञीय तपोवनोंका रक्षण करनेके लिये तथा शत्रुओंका वध करनेके उद्देश्यसे पंचवटीको चल दिये। (३५-३६)

यहाँ १४ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१४॥

तदनन्तर विविध दुष्ट सर्पों तथा पक्षियोंसे युक्त पञ्चवटीमें पहुंचकर

आगताः स्म यथोद्दिष्टं यं देशं मुनिरब्रवीत् ।
अयं पञ्चवटीदेशः सौम्य पुष्पितकाननः ॥ २
सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि ।
आश्रमः कतरस्मिन्नो देशे भवति संमतः ॥ ३
रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण ।
तादृशो दृश्यतां देशः संनिकृष्टजलाशयः ॥ ४
वनरामण्यकं यत्र जलरामण्यकं तथा ।
संनिकृष्टं च यस्मिंस्तु समित्पुष्पकुशोदकम् ॥ ५
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः ।
सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६
परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते ।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥ ७
सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः ।
विमृशन्रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम् ॥ ८

रामने दीप्त तेजवाले भाई लक्ष्मणसे कहा कि– "महर्षिके बतलाये हु स्थानमें हम आ गये हैं। हे सौम्य! खिले हुए फूलोंवाले वृक्षोंवाला य पञ्चवटी प्रदेश है। तुम वनमें चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखो कि कौन स्थानमें हमारा इच्छित आश्रम बन सकता है; क्योंकि तुम इस काम निपुण हो। जहां पर वैदेही तथा तुम और मैं अच्छे प्रकार रह सकें औ जिसके पासही जलाशय हो ऐसा स्थान देखो। जहांपर वन रमणीय औ स्थान सुन्दर हो तथा जो समीपमें हो और जिसमें समिधा, कुशा, फूल औ जल हों।" (१–५)

राम द्वारा इस प्रकार प्रेरित लक्ष्मण हाथ जोड कर विनम्र भाव सीताके सामने रामसे यह वाक्य बोला कि– "हे काकुत्स्थ! आपके विद्यम रहते मैं अनन्त समय तक परतन्त्र हूं, इसलिये आपही रुचिर देश देख "आश्रम बनाओ" मुझे ऐसी आज्ञा दीजिये।" महात्मा लक्ष्मणके र वाक्यको सुन प्रसन्न हुए रामने पर्यालोचन (देखभाल) करके सब गुण

स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि ।
हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत् ९
अयं देशः समः श्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत्कर्तुमर्हसि १०
इयमादित्यसंकाशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः ।
अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता ११
यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना ।
इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता १२
हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता ।
नाति दूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिताः १३
मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकंदराः ।
दृश्यन्ते गिरयः सौम्य फुल्लैस्तरुभिरावृताः १४
सौवर्णै राजतैस्ताम्रैर्देशे देशे तथा शुभैः ।
गवाक्षिता इवाभान्ति गजाः परमभक्तिभिः १५

युक्त एक स्थानको पसन्द किया। रामचन्द्रने आश्रमनिमित्त स्थानको अपने चित्तमें निश्चित करके हाथसे लक्ष्मण (जो कि हाथ जोडे हुए खडा था) के हाथोंको पकड कर उससे कहा कि– "यह स्थान समतल अर्थात् इकसार, शोभासम्पन्न और फूले हुए वृक्षोंसे पूर्ण है। हे सौम्य! यहां पर यथायोग्य आश्रम निर्माण करो। सूर्यके तेजके तुल्य खिले हुए तथा सुन्दर गन्धवाले पद्मोंसे पूर्ण, रमणीय और कमलोंसे शोभायमान यह पुष्करिणी नदी समीपमें ही दीखती है। जैसा कि पवित्रात्मा मुनि अगस्त्यने कहा था, उसी प्रकार फूले हुए वृक्षोंसे युक्त, हंस तथा कारण्डवों और चक्रवाकोंसे शोभायमान और रमणीय यह गोदावरी नदी दीखती है। (९–१२)

"न तो बहुत दूर न समीपमें, मृगोंके समूहोंसे युक्त, मयूर जिनमें बोल रहे हैं, बडे बडे ऊँचे, बहुतसी गुफावाले, फूले हुए वृक्षोंसे ढके हुए और रमणीय ये पर्वत दिखलाई दे रहे हैं। हाथी जगह जगहपर चांदी, सोना, ताम्बा आदि धातुओं द्वारा चित्रित की न्याई रेखालंकारादिसे शोभा पाते हैं।

सालैस्तालैस्तमालैश्च खर्जूरैः पनसैर्द्रुमैः ।
नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुंनागैश्चोपशोभिताः १५
चूतैरशोकैस्तिलकैः केतकैरपि चम्पकैः ।
पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः १७
स्यन्दनैश्चन्दनैर्नीपैः पनसैर्लकुचैरपि ।
धवाश्वकर्णखदिरैः शमीकिंशुकपाटलैः १८
इमं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम् ।
इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा १९
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा ।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः २०
पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम् ।
सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् २१
शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम् ।
कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा २२
समीकृततलतां रम्यां चकार सुमहाबलः ।

ये पर्वत साल, ताल, तमाल, खजूर, पनस, आम्र, जलकदम्ब, तिनिश औ नागकेशरके वृक्षोंसे शोभायमान हैं और आम, अशोक, तिलक, चम्प केतकी, पुष्पलता, गुल्मलता और विविध प्रकारके वृक्षोंसे ढके हुए दि लाई देते हैं। चन्दन, स्पन्दन, कदम्ब, कटहल, बडहल, धव, कनेर, खै शमी, ढाक और पाढलके वृक्षोंसे पूर्ण पवित्र, शुद्ध और बहुतसे मृग तथ पक्षियोंवाला यह स्थान है। हे लक्ष्मण! इस पक्षीके साथ मैं यहां रहूंगा। (१३-१९)

राम द्वारा इस प्रकार बोधित, शत्रुओंके वीरोंको नष्ट करनेवाले मह बली लक्ष्मणने बहुत शीघ्रही भाई रामके लिये आश्रम बनाया। लघुविक्र लक्ष्मणने उस आश्रममें मिट्टी जिसकी खोद दी गयी है, बडी लम्बी चौ अच्छे थम्भोंवाली, बडे लम्बे बाँसोंसे छायी हुई, शमीकी शाखाओंसे प कर बडे मजबूत बन्धनोंसे बँधी हुई, कुश, काश और शरोंके पत्तोंसे अ

निवासं राघवस्यार्थे प्रेक्षणीयमनुत्तमम् २३
स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान्नदीं गोदावरीं तदा ।
स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः २४
ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि ।
दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम् २५
स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया ।
राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयत्परम् २६
सुसंहृष्टः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा ।
अतिस्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत् २७
प्रीतोऽस्मि ते महत्कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो ।
प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः २८
भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण ।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम २९
एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनः ।

प्रकार ढकी हुई, समान भूमिवाली, रमणीय और सुहावनी पर्णशाला बनाई। इस प्रकार लक्ष्मणने रामके लिये बडा उत्तम देखने योग्य पर्णशालारूप निवासस्थान तैयार किया। तब श्रीमान् लक्ष्मण गोदावरी नदी पर जाकर और स्नान करके कमलों तथा फूलोंको लेकर फिर आया। तदनन्तर लक्ष्मणने पुष्पबलि देकर और यथाविधि शान्ति करके रामके लिये बनाया हुआ आश्रम दिखलाया। (२०-२५)

सीतासहित रामचन्द्र बडा सुन्दर बना हुआ वह आश्रम देखकर उस पर्णशालामें अत्यन्त आनन्द मनाने लगे। तब बहुत प्रसन्न हो, भुजाओंको ग्रहण करके, लक्ष्मणको बडे प्रेमपूर्वक हृदय लगा कर बोले कि– "हे प्रभो! मैं तेरे पर प्रसन्न हुआ हूं, तूने बडा भारी कर्म किया है। इसलिये तुझको इनाम देना उचित है, अतः इस निमित्त मैंने तुमसे भेंट की है। मेरे चित्तके भावको जाननेवाले, कृतज्ञ, धर्मात्मा तुम्हारे जैसा पुत्र रहते मेरा पिता मृत्युको प्राप्त नहीं हुआ।" शोभाके बढानेवाले जितेन्द्रिय राम

तस्मिन्देशे बहुफले न्यवसत्स सुखं सुखी ३०
कंचित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च ।
अन्वास्यमानो न्यवसत्स्वर्गलोके यथामरः ३१

इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥

षोडशः सर्गः ।

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः ।
शरद्यपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः प्रवर्तत १
स कदाचित्प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः ।
प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम् २
प्रह्वः कलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान् ।
पृष्ठतोऽनुव्रजन्भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ३
अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद ।
अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ४
नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी ।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ५

लक्ष्मणसे इस प्रकार कह कर बहुत फलवाले उस स्थानमें सुखपूर्वक र[हने] लगे। सीता तथा लक्ष्मणसे सेवित धर्मात्मा वह स्वर्गमें देवताके तुल्य व[ह] रहने लगा। (२६-३१)

यहाँ १५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

महात्मा रामचन्द्रके सुखसे वहां रहते हुए शरद् ऋतुके बीतने [पर] तपःसाधनके लिये प्रिय अथवा कामी तथा कामिनियोंको प्रिय हेमन्त ऋ[तु] आरम्भ हुई। वह रघुनन्दन राम किसी दिन रात्रिके बीतनेसे कुछ काल[में] अर्थात् ब्राह्म मुहूर्त्त होने पर स्नान करनेके लिये रमणीय गोदावरी नदी[को] चले। पराक्रमी, कलश हाथमें लिये हुए, आज्ञाकारी और सीता स[हित] रामचन्द्रके पीछे चलता हुआ लक्ष्मण यह कहने लगा कि- "हे प्रियंवद! [आपका] यह वह समय आया है कि जो आपको प्यारा है और जिस (हेमन्त) [से] यह शुभ संवत्सर अलंकृतकी न्याई प्रतीत होता है। इसमें मनुष्य सर[दी]

नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवताः ।
कृताग्रयणकाः काले सन्तो विगतकल्मषाः ६
प्राज्यकामा जनपदाः संपन्नतरगोरसाः ।
विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः ७
सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम् ।
विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक्प्रकाशते ८
प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च सांप्रतम् ।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान्हिमवान्गिरिः ९
अत्यन्तसुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः ।
दिवसाः सुभगादित्याश्छायाः सलिलदुर्भगाः १०
मृदुसूर्याः सनीहाराः पटुशीता समाहिताः ।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति सांप्रतम् ११
निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः ।

कारण रूक्ष शरीरवाले, पृथिवी धान्योंसे पूर्ण, जल अनुपभोग्य अर्थात् ठंडके कारण न छूने योग्य और अग्नि सबको प्रिय हो रहे हैं। मनुष्यगण आग्रयण नामक यज्ञानुष्ठानके समयमें नूतन धान्योंसे पितृदेवताओंका पूजन करके आग्रयण यज्ञ समाप्त किये हुए पापरहित हुए हैं। सम्पूर्ण देश गोरसादिसे अतिशय पूर्ण और इच्छित वस्तुओंसे पूर्ण है। विजयकी इच्छावाले तथा युद्धयात्राके अभिलाषी राजा देशोंमें विचर रहे हैं। (१-७)

"सूर्यके दक्षिण दिशाको अतिशय सेवित करनेपर उत्तर दिशा तिलक-रहित स्त्रीके समान प्रकाशित नहीं होती है। स्वाभाविकही बर्फके समूहसे युक्त हुआ हिमालय पर्वत अब दूरसूर्य अर्थात् सूर्यके दक्षिणायन होनेपर स्पष्टतया सार्थक नामवाला हिमवान् (बहुत बर्फवाला) हो गया है। बडे सुख देनेवाले, अच्छे प्रकार देखने योग्य है सूर्य जिनमें और छाया तथा जल जिनमें असह्य है-ऐसे ये दिन मध्याह्नमेंभी सुहाते हैं। आजकलके दिन अक्रूरसूर्यवाले, कुहरेसे युक्त, हवा जिनमें चलती है, अत्यन्त ठंडवाले, वनचरोंसे शून्य और हिमग्रस्त हो रहे हैं। छूट गया है खुली जगहमें सोना

शीतवृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति सांप्रतम् १२
रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते १३
ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते १४
प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च सांप्रतम्।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः १५
बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च।
शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः १६
खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः।
शोभन्ते किंचिदानम्राः शालयः कनकप्रभाः १७
मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः।
दूरमभ्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते १८

जिनमें, पुष्यनक्षत्रवाली, हिम (बर्फ) से अरुणवर्णवाली, ठंडी हवावा... बडी ठंडवाली आजकलकी रात्रियां बढी हुई होती हैं। सूर्यके संक्रम... सुखसेव्यत्वादिसे रहित और हिमके कणोंसे लालमण्डलवाला चन्द्... श्वासकी भाफसे युक्त दर्पण (आइना) के तुल्य प्रकाशित नहीं होता... (८-१३)

हिमशीकरोंसे मलिन चांदनी पौर्णमासीमेंभी प्रकाशित नहीं हो... और धूपके लगनेसे श्याम हुई सीताके समान प्रतीत होती है, किन्तु प्र... शित नहीं होती। आजकल स्वभावसे ही शीतलस्पर्शवाला पश्चिमी ... हिम (बर्फ) से युक्त होकर प्रातःकालमें द्विगुण शीतल हो चलता है। सू... उदय होनेपर भाफसे ढके और जौ तथा गेहुओंसे पूर्ण वन, शब्द करते ... क्रौंच तथा सारसोंसे बडे शोभायमान हो रहे हैं। सुवर्णके समान का... वाले और खजूरके पुष्पकी आकृतिके समान तथा चावलोंसे पूर्ण ... (कणिशवालों) से कुछेक झुके हुए शालि शोभायमान हो रहे हैं। ... तथा ओससे ढकी इधर उधर फैली हुई किरणोंसे युक्त ऊंचा ...

आग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्णे मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः ।
संसक्तः किंचिदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ १९
अवश्यायनिपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला ।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा २०
स्पृशन्सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् ।
अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् २१
एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः ।
नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम् २२
अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसावृताः ।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः २३
वाष्पसंच्छन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः ।
हिमार्द्रवालुकास्तीरैः सरितो भान्ति सांप्रतम् २४
तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद्भास्करस्य च ।
शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम् २५

हुआ भी सूर्य चन्द्रमाकी समान प्रतीत होता है। पूर्वाह्णमें कुछ कम उष्णतावाली, मध्याह्नमें छूनेसे सुखकर, कुछेक संरक्त तथा कुछेक पांडुर वर्णवाली धूप पृथिवीपर शोभायमान होती है। ओसके पडनेसे कुछेक गीली हुई घासवाली और नवीन धूपसे सेवित वनोंकी भूमि बडी शोभा दे रही है। (१४-२०)

अत्यन्त प्यासाभी वनगज (जंगली हाथी) अत्यन्त ठंडे जलको स्पर्श करके सूंडको सिकोड लेता है। ये जलचारी पक्षी जलके पास बैठे हुए जलमें अवगाहन नहीं करते, जैसे कायर मनुष्य युद्धमें नहीं जाते हैं। हिमके जलसे बंधे हुए अर्थात् निश्चल तथा नीहारके अन्धेरेसे ढके हूए फूलोंसे रहित वनराजि सोई हुई-सी प्रतीत होती हैं। भाफसे ढका हुआ है जल जिनका, शब्द करनेपर जाने जाते हैं सारस जिनमें और बर्फसे भीगा हुआ है रेत जिनका ऐसे तीरोंसे युक्त नदियां अब दिखलाई नहीं देती हैं। हिमके पडनेसे, सूर्यके अतीक्ष्ण होनेसे और अत्यन्त ठंडसे प्रायः

जराजर्झरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः ।
नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः २६
अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः ।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे २७
त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्बहून् ।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले २८
सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः ।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् २९
अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः ।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते ३०
पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान्निरुदरो महान् ।
धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः ३१
प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिंदमः ।
संत्यज्य विविधान्सौख्यानार्यं सर्वात्मना श्रितः ३२

पहाडोंके समीपका जल भी पारदवत् अर्थात् शोभादायक प्रतीत है । प्राचीनत्वके कारण वर्णरहित तथा गिर गई हैं केशर तथा पंखा जिनकी ऐसे और पालेसे सताये हुए नालशेष (डण्डीमात्रवाले) प कमलाकर सरोवर शोभित नहीं होते हैं । (२१-२६)

"हे राम ! इस ऐसे समयमें आपके विरहसे दुःखित धर्मात्मा, श्रेष्ठ भरत आपकी भक्तिके कारण नगरमें तप करता है । राज्य, मान अनेक प्रकारके बहुतसे भोगोंको त्याग कर वह नियताहारी तपस्वी शीतल पृथ्वीतलपर सोता है । निश्चय प्रतिदिन इस समय स्नान करने उद्यत और मन्त्रियोंसे युक्त वह भरत सरयूनदीपर जाता होगा। बडे सु पलित (पला हुआ), सुकुमार और सुख भोगने योग्य वह भरत रात्रिके अन्तिम प्रहरमें सरयूमें स्नान करता होगा ? कमलके समान आं वाला, पराक्रमी, श्यामवर्ण, कृशोदर, बडाईवाला, धर्मज्ञ, सत्यवा लज्जायुक्त, जितेन्द्रिय, मधुरभाषी, बडी लम्बी लम्बी बाहुओंवाला

जितः स्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना।
वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ३३
न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति।
ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः ३४
भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
कथं नु सांबा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ३५
इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद्वदति धार्मिके।
परिवादं जनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ३६
न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ३७
निश्चितैव हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता।
भरतस्नेहसंतप्ता बालिशी क्रियते पुनः ३८
संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च।

शत्रुओंका दमन करनेवाला वह भरत अनेक भोगोंको त्याग कर सब प्रकारसे अर्थात् मन वचन कर्मसे बडे आपके आश्रित हैं। आपके भाई भरतने स्वर्गको जीत लिया है, जो कि तापस कर्ममें वनमें रहते हुए भी आपका अनुकरण कर रहा है। 'मनुष्य पितृस्वभावका अनुकरण नहीं करते किन्तु मातृस्वभावका करते हैं,' इस प्रसिद्ध लोकवादको भरतने उलटा कर दिया, क्योंकि उसमें पितृगुण ही पाये जाते हैं। जिसके स्वामी दशरथ और पुत्र भरत ऐसे श्रेष्ठ हैं, सो माता कैकेयी इस प्रकार क्रूर-स्वभाववाली क्यों हुई?" (२७–३५)

स्नेहसे धार्मिक लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर रामचन्द्र माताकी उस निन्दाको नहीं सकता हुआ बोला– "हे तात! तुम्हें किसी प्रकार भी बिचली माताकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतकी कथाका कथन करो। यद्यपि मेरी बुद्धि वनवासमें निश्चित और दृढव्रतवाली है, तथापि भरतके स्नेहसे सन्तप्त हुई बालबुद्धिकी न्याईं हो रही है। उस भरतके प्यारे, मधुर, हृदयको प्यारे लगनेवाले, अमृतके तुल्य और मनको

हृद्यान्यमृतकल्पानि मनःप्रह्लादनानि च ३९
कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना ।
शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन ४०
इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम् ।
चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सह सीतया ४१
तर्पयित्वाथ सलिलैस्ते पितॄन्दैवतानपि ।
स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च तथानघाः ४२
कृताभिषेकः स रराज रामः सीताद्वितीयः सह लक्ष्मणेन ।
कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्या रुद्रः सनन्दिर्भगवानिवेशः ४३

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षोडशः सर्गः ॥१६॥[५४

सप्तदशः सर्गः ।

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च ।
तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुः स्वमाश्रमम् १
आश्रमं तदुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः ।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत् ।
उवास सुखितस्तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः २

आनन्द देनेवाले वाक्योंको मैं स्मरण करता हूं । हे रघुनन्दन लक्ष्मण तुम्हारे सहित मैं महात्मा भरतसे तथा वीर शत्रुघ्नसे न जाने कब मिलूंगा! उस मार्गमें इस प्रकार विलाप करते हुए लक्ष्मण तथा सीता सहित रामचन्द्रने गोदावरी नदीपर पहुंचकर स्नान किया। उन्होंने जलदान पितरों तथा पितृ-देवताओंको तृप्त करके उदित हुए सूर्य तथा सन्ध्या देवताओंकी स्तुति की। सीता तथा लक्ष्मण सहित स्नान किये हुए राम इस प्रकार शोभित हुए जैसे कि पार्वती तथा नन्दी सहित स्नान किये हुए भगवान् रुद्र शोभित हुए। (३९-४३)

यहाँ १६ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

तदनन्तर राम, सीता, लक्ष्मण स्नान करके उस गोदावरीके तीर अपने आश्रमस्थानको चल दिये । उस आश्रममें आकर लक्ष्मण सहि

स रामः पर्णशालायामासीनः सह सीतया ।
विरराज महाबाहुश्चित्रया चन्द्रमा इव ३
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः ।
तथासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः ४
तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ।
सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः ५
भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ।
दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम् ६
गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम् ।
सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम् ७
राममिन्दीवरश्यामं कंदर्पसदृशप्रभम् ।
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता ८
सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ।
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा ९

राम पूर्वाह्न समयके कर्म करके पर्णशालामें गये । महर्षियोंसे पूजित राम वहांपर सुखपूर्वक रहे । महाबाहु वह रामचन्द्र सीताके सहित पर्णशालामें बैठे हुए इस प्रकार शोभित हुए जैसे चित्राके साथ चन्द्रमा । और भाई लक्ष्मणके साथ अनेक कथा कहने लगे । कथामें आसक्त चित्तवाले रामके इस प्रकार बैठे होनेपर कोई एक राक्षसी अचानक उस स्थानमें आई । (१-५)

शूर्पणखा नाम्नी, दशग्रीव राक्षस रावणकी बहिन, उस राक्षसीने रामके पास आकर देवतुल्य रामको देखा। तेजस्वी मुखवाले, बडी बडी भुजाओं-वाले, कमलके समान नेत्रोंवाले, हाथीके समान गतिवाले, जटाजूट धारण किये हुए, सुकुमार, बडे बली, राजचिह्नोंसे युक्त, नीलवर्णके समान वर्णवाले, कामके समान आभावाले और इन्द्रके तुल्य रामको देखकर वह राक्षसी कामसे मोहित हो गई । (५-८)

दुर्मुखी, महोदरी, विरूप नेत्रोंवाली, ताम्ररङ्गके बालोंवाली, विरूपा,

प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ।
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी १०
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना ।
शरीरजसमाविष्टा राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ११
जटी तापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक् ।
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम् १२
किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ।
एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या परंतपः १३
ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ।
आसीद्दशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः १४
तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
भ्रातायं लक्ष्मणो नाम यवीयान्मामनुव्रतः १५
इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता ।
नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः १६
धर्मार्थं धर्मकाङ्क्षी च वनं वस्तुमिहागतः ।

भयंकर आवाजवाली, बहुत वृद्धा, वामभाषिणी, दुराचारिणी, देख अप्रिय और कामदेवसे पीडित वह राक्षसी सुन्दर मुखवाले, कृशो विशाल नेत्रोंवाले, सुन्दर केशोंवाले, प्यारे रूपवाले, सुन्दर आवाजवा यौवनसम्पन्न, मनोहर वाणीवाले, सदाचारी, देखनेमें प्रिय रामसे बो कि– " जटाधारी, धनुर्बाण धारण किये हुए, स्त्रीसहित तुम तपस्वी रू राक्षसोंसे सेवित इस देशमें कैसे आये हो ? तुम्हारे आनेका क्या प्रयो है ? सो मेरेसे कहो । " (९-१२)

राक्षसी शूर्पणखासे इस प्रकार बोधित शत्रुओंको तपानेवाले र सरलतासहित वृत्त कहने लगे– " देवताओंके तुल्य पराक्रमी एक रा दशरथ था, उसका मैं बडा पुत्र मनुष्योंद्वारा राम नामसे प्रसिद्ध हूं। लक्ष् नामक यह मेरा छोटा भाई है, जो कि मेरा अनुगामी है और यह सी नामसे प्रसिद्ध मेरी भार्या है । नरेंद्र पिता तथा माताकी आज्ञासे प्रे

त्वां तु वदितुमिच्छामि कस्य त्वं काऽसि कस्य वा १७
त्वं हि तावन्मनोज्ञाङ्गी राक्षसी प्रतिभासि मे ।
इह वा किन्निमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः १८
साऽब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता ।
श्रूयतां राम तत्त्वार्थं वक्ष्यामि वचनं मम १९
अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ।
अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयंकरा २०
रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोत्रमागतः ।
प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः २१
बिभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः ।
प्रख्यातवीर्यौ च रणे भ्रातारौ खरदूषणौ २२
तानहं समतिक्रान्ता राम त्वाऽपूर्वदर्शनात् ।
समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् २३
अहं प्रभावसंपन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी ।

धर्मकी इच्छावाला मैं तपोरूप धर्मकी सिद्धिके लिये वनमें वसनेके लिये यहां आया हूं। मैं तुझे जानना चाहता हूं कि तू कौन और किसकी पुत्री वा भार्यादि है ? सो कह । तू सम्पूर्णतासे सुन्दर अंगोंवाली है, इससे राक्षसी मालूम होती है। यहांपर तू किस लिये आई है, सो यथार्थ कह ।"(१३-१८)

कामदेवसे पीडित वह राक्षसी रामके वचन सुनकर बोली कि "हे राम ! मेरा यथार्थ वचन सुनो, मैं कहती हूं। मैं कामरूपिणी शूर्पणखा नामकी राक्षसी हूं । सबको भय देनेवाली अकेली मैं इस वनमें विचरती हूं । राक्षसोंका स्वामी और बडा बलवान् रावण नामक मेरा भाई है, जो कि विश्रवाका पुत्र है और बडा पराक्रमी है, यदि तुमने सुना हो। हमेशा बढी हुई नींदवाला, महाबली कुम्भकर्ण और राक्षसोंके कर्मोंसे रहित अत एव धर्मात्मा बिभीषण मेरा भाई है । युद्धमें प्रसिद्ध पराक्रमवाले खर दूषण भी मेरे भाई हैं । हे राम ! मैं उनको त्याग करके प्रथम देखनेसेही अन्तःकरणसे पुरुषोत्तम भर्ता आपको प्राप्त हुई हूँ । मैं बडे पराक्रमवाली और स्वेच्छानुकूल

चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि २४
विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव ।
अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम् २५
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
अनेन सह ते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम् २६
ततः पर्वतशृंगाणि वनानि विविधानि च ।
पश्यन्सह मया कामी दण्डकान्विचरिष्यसि २७
इत्येवमुक्तः काकुत्स्थः प्रहस्य मदिरेक्षणाम् ।
इदं वचनमारेभे वक्तुं वाक्यविशारदः २८

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥१७॥ [५७]

अष्टदशः सर्गः ।

तां तु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम् ।
स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत् १
कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम ।
त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता २

गमन करनेवाली हूँ । तुम हमेशाके लिये मेरे स्वामी बनो, सीताको लेकर क्या करोगे ? यह विकराल तथा विरूप है और आपके तुल्य नहीं है । मैं ही तुम्हारे समान हूँ, मुझे भार्यारूपसे देखो । मैं तुम्हारे इस भाईसहित विरूप, असती, विकराल और अतिशय निम्न उदरवाली इस मानवी सीताको भक्षण कर जाऊंगी। तब हे कान्त ! मेरे साथ तुम पहाडोंके शिखर, अनेक वन तथा दण्डकोंको देखते हुए विहार करोगे । " (१९-२७)

राक्षसीद्वारा इस प्रकार बोधित वाक्यके जाननेवाले काकुत्स्थ रामने हंसकर दुष्ट नेत्रोंवाली उस राक्षसीसे यह वचन कहना आरम्भ किया। (२८)

यहाँ १७ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

इसके बाद रामचन्द्र कामरूपी पाशसे बँधी हुई शूर्पणखासे स्पष्ट तथा सरल वाणीसे मुसकराते हुए बोले– " हे कल्याणि ! मैं विवाहित हूं, यह मेरी प्यारी भार्या है । तुझ समान स्त्रियोंको सौतभाव बहुत कष्ट

अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान्प्रियदर्शनः।
श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ३
अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः।
अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति ४
एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम।
असपत्ना वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा ५
इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता।
विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ६
अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याऽहं वरवर्णिनी।
मया सह सुखं सर्वान्दण्डकान्विचरिष्यसि ७
एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः।
ततः शूर्पणखीं स्मित्वा लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत् ८
कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।
सोऽहमार्येण परवान्भ्रात्रा कमलवर्णिनी ९

कारी है। किन्तु मेरा यह छोटा भाई लक्ष्मण सदाचारी, देखनेमें प्रिय, शोभायमान, पराक्रमी है और स्त्री इसके साथ नहीं है। इसने बहुत कालसे भार्यासुख नहीं भोगा है, अतः भार्याकी इच्छावाला है। तरुण, प्रियदर्शन और तेरे योग्य है। यह तेरे इस रूपका स्वामी होगा। हे वरारोहे! विशाल नेत्रोंवाली! इस मेरे भाईको भर्ता बना और सौतहीन हो कर इसकी सेवा कर जैसे सूर्यकी प्रभा मेरुको भजती है।" (१—५)

इस प्रकार रामद्वारा प्रेरित कामातुरा वह राक्षसी रामको छोडकर शीघ्रही लक्ष्मणसे बोली—"मैं बडी सुन्दर, तुम्हारे इस रूपके समान भार्या हूंगी, मेरे साथ तुम सब दण्डकवनोंमें सुखपूर्वक विचरोगे।" राक्षसीद्वारा इस प्रकार प्रार्थित, वाक्यके जाननेवाला सुमित्रापुत्र लक्ष्मण शूर्पणखाकी ओरको मुस्कराकर उचित वचन कहने लगा कि— "मुझ दासकी भार्या होकर कैसे तू दासी बनना चाहती है? मैं श्रेष्ठ बडे भाईके

समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदितामलवर्णिनी।
आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी १०
एतां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
भार्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति ११
को हि रूपमिदं श्रेष्ठं संत्यज्य वरवर्णिनि।
मानुषीषु वरारोहे कुर्याद्भावं विचक्षणः १२
इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी।
मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा १३
सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परंतपम्।
सीतया सह दुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता १४
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न मां त्वं बहु मन्यसे १५
अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्।
त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम् १६

आधीन हूं अर्थात् उनका दास हूं। हे विशालाक्षि! सुन्दर वर्णवा[ली] आनन्दित और सिद्धकामा तू सम्पत्तिमान् मेरे बडे भाई रामकी [छो]टी भार्या बन। वे इस विरूप, असती, विकराल, अतिशय निम्न उदरवा[ली] और वृद्ध भार्याको त्याग कर तुझकोही स्वीकार करेंगे। हे श्रेष्ठवर्णवा[ली] इस श्रेष्ठ रूपको त्याग कर कौन बुद्धिमान् मानुषीकी भावना करेगा (९-१२)

इस प्रकार लक्ष्मणद्वारा बोधित, बडे बडे दांतोंवाली अति[निम्न] उदरवाली और दिल्लगीको न जाननेवाली वह राक्षसी लक्ष्मणके कथ[नको] सत्यही समझने लगी। कामदेवके वशीभूत हुई वह राक्षसी, सी[ता]सहित पर्णशालामें बैठे हुए दुर्धर्ष रामसे बोली कि- "तुम बुरे रूपवा[ली] बडे बडे दांतोंवाली, असती, अतिशय निम्नोदरवाली और वृद्ध इस भा[र्याका] अवलम्बन करके मेरा आदर नहीं करते। अब मैं तुम्हारे देखते देख[ते] इस मानवी सीताको खा जाऊंगी और सौतरहित होकर सुखपूर्वक तु[म्हारे]

इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा ।
अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव १७
तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबलः ।
निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् १८
क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन ।
न कार्यः पश्य वैदेहीं कथंचित्सौम्य जीवतीम् १९
इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम् ।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि २०
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः ।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः २१
निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च ।
यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम् २२
सा विरूपा महाघोरा राक्षसी शोणितोक्षिता ।
ननाद विविधान्नादान्यथा प्रावृषि तोयदः २३

साथ विहार करूंगी । " ऐसा कहकर बडी क्रोधित हुई तथा दहकते अङ्गारेके समान नेत्रोंवाली वह राक्षसी मृगशावकके नेत्रोंके समान नेत्रवाली सीताकी ओर दौडी जैसे कि महोल्का रोहिणीकी ओर दौडती है । महाबली रामचन्द्र क्रोधित हो मृत्युकी फांसीके सदृश, सीताके ऊपरको गिरती हुई उस राक्षसीको झिडककर लक्ष्मणसे बोले कि– " हे सौमित्रे ! दुष्टस्वभाववाले तथा दुर्जनोंसे कभी भी हंसी नहीं करनी चाहिये । हे सौम्य ! देखो, हमारे परिहाससेही यह वैदेहीको खानेके उद्यत हुई है । हे पुरुषश्रेष्ठ! किसी प्रकार विरूप, असती, अति उन्मत्त और महोदरी इस राक्षसीको जीतीको ही विरूप करो । " (१३–२०)

इस प्रकार प्रेरित, महाबली और क्रुद्ध हुए लक्ष्मणने रामके सामनेही तलवार निकालकर उस राक्षसीके नाक कान काट लिये । नाक कान कटी हुई बडे घोर रूपवाली वह शूर्पणखा बडे भयंकर शब्दसे चिल्ला कर जहांसे आई थी उसी वनकी ओर भाग गई । विकराल रूपवाली, बडी

सा विक्षरन्ती रुधिरं बहुधा घोरदर्शना।
प्रगृह्य बाहू गर्जन्ती प्रविवेश महावनम् २४
ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतं खरं जनस्थानगतं विरूपिता।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रतेजसं पपात भूमौ गगनाद्यथाशनिः २५
ततः सभार्यं भयमोहमूर्च्छिता सलक्ष्मणं राघवमागतं वनम्।
निरूपणं चात्मनि शोणितोक्षिता शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा
इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अष्टादशः सर्गः॥१८॥ [५

एकोनविंशः सर्गः।

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम्।
भगिनीं क्रोधसंतप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः १
उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि संभ्रमम्।
व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता २
कः कृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम्।
तुदत्यभिसमापन्नमङ्गुल्यग्रेण लीलया ३

भयंकर, खूनमें भरी हुई वह राक्षसी अनेक प्रकारके शब्द करने लगी
वर्षा ऋतुमें मेघ गर्जते हैं। भयंकर रूपवाली वह अनेक प्रकार रुधि
बहाती हुई और बाहुओंको ऊपरको उठाकर गर्जती हुई बडे भारी व
प्रविष्ट हुई। तदनन्तर विरूपा वह जनस्थानमें स्थित, राक्षसोंके समू
युक्त और घोररूपवाले भाई खरके पास पहुंचकर आकाशसे वज्रके तु
पृथिवीपर गिर पडी। तब भयके मोहसे मूर्च्छित तथा रुधिरसे सिक्त
खरकी भगिनीने लक्ष्मण तथा स्त्रीसहित रामका वनमें आना और अ
विरूपता अर्थात् विरूपताका कारण सबही कह दिया। (२१-२६)

यहाँ १८ वाँ सर्ग समाप्त हुआ॥१८॥

इस प्रकार गिरी हुई, विरूपा और रुधिरसे सनी हुई भगिनी
देखकर क्रोधसे सन्तप्त राक्षस खर पूछने लगा- "उठो, वृत्तान्त
और मोह तथा चित्तकी चञ्चलताको छोडो। किसने इस प्रकार तुम
विरूप किया है, सो साफ तौरपर कहो। किसने लीलापूर्वक अङ्गुलि

कालपाशं समासज्ज्य कण्ठे मोहान्न बुध्यते।
यस्त्वामद्य समासाद्य पीतवान्विषमुत्तमम् ४
बलविक्रमसंपन्ना कामगा कामरूपिणी।
इमामवस्थां नीता त्वं केनान्तकसमागता ५
देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम्।
कोऽयमेवं महावीर्यस्त्वां विरूपां चकार ह ६
नहि पश्याम्यहं लोके यः कुर्यान्मम विप्रियम्।
अमरेषु सहस्राक्षं महेन्द्रं पाकशासनम् ७
अद्याहं मार्गणैः प्राणानादास्ये जीवितान्तगैः।
सलिले क्षीरमासक्तं निष्पिबन्निव सारसः ८
निहतस्य मया संख्ये शरसंकृत्तमर्मणः।
सफेनं रुधिरं कस्य मेदिनी पातुमिच्छति ९
कस्य पत्ररथाः कायान्मांसमुत्कृत्य संगताः।
प्रहृष्टा भक्षयिष्यन्ति निहतस्य मया रणे १०

अग्रभागसे बैठे हुए, अनपराधी, विषधर और सम्मुख आये हुए काले सांपको व्यथित किया है अर्थात् जगाया है? कौन गलेमें कालपाशको बांध कर मोहसे नहीं जानता है? जिसने मुझे प्राप्त होकर कालकूट विषको पिया है वह कौन है? बल तथा पराक्रमसे पूर्ण, इच्छापूर्वक विचरनेवाली, इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाली और यमराजके तुल्य तुझे किसने इस दशाको पहुंचाया है? देवता, गन्धर्व, भूत और महात्मा ऋषियोंमें कौन ऐसा पराक्रमी है, जिसने इस प्रकार तुझको विरूप कर दिया है? (१-६)

"मैं संसारमें सहस्राक्ष देवेन्द्र इन्द्रके अतिरिक्त कोई ऐसा पुरुष नहीं समझता कि जो मुझसे शत्रुता करे। आज मैं शत्रुका जीवन नाश करनेवाले बाणोंसे इस प्रकार उसके प्राणोंको नष्ट करूंगा जैसे कि सारस हंस प्याससे पीता हुआ जलमें मिले हुए दूधको ग्रहण कर लेता है। पृथिवी रणमें मेरे द्वारा मारे हुए, बाणसे कटे हुए मर्म स्थानवाले किसका झागोंसहित लाल-वर्णका रुधिर पियेगी? इकट्ठे हुए तथा आनन्दित हुए पक्षी मेरे द्वारा

तं न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
मयापकृष्टं कृपणं शक्तास्त्रातुं महाहवे ११
उपलभ्य शनैः संज्ञां तं मे शंसितुमर्हसि।
येन त्वं दुर्विनीतेन वने विक्रम्य निर्जिता १२
इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः।
ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत् १३
तरुणौ रूपसंपन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ १४
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ १५
गन्धर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ।
देवौ वा दानवावेतौ न तर्कयितुमुत्सहे १६
तरुणी रूपसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता।
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा १७
ताभ्यामुभाभ्यां संभूय प्रमदामधिकृत्य ताम्।

निहत किये हुए किसके देहसे मांस उचेड कर खायेंगे? यहां युद्धमें मेरे [illegible] खैंचा हुआ हतभाग्य उसको देवता, गन्धर्व, पिशाच और राक्षस कोई [illegible] बचनेको समर्थ नहीं है। धीरे धीरे चेतनाको प्राप्त होकर तू मुझसे उस [illegible] बता जिस दुर्जनने वनमें विक्रम दिखला कर तुझे जीता है अर्थात् वि[illegible] किया है।" (७-१२)

अतिशय क्रोधित हुए भाईके इस प्रकारके वचन सुनकर शूर्प[illegible] आसुओं सहित अर्थात् रोती हुई यह वाक्य बोली कि– "जवान, सु[illegible] रूपवाले, कोमल शरीरवाले, महाबलवाले, कमलके समान विशाल [illegible] वाले, चीर तथा कृष्णाजिनको धारण किये हुए, फलमूलाहारी, दा[illegible] तपस्वी, धर्माचारी, दशरथके पुत्र, गन्धर्वराजके तुल्य, राजचिह्नोंसे [illegible] वे दोनों भाई राम लक्ष्मण देव हैं या मानुष, ऐसा निश्चय नहीं कर सक[illegible] वहांपर मैंने उनके बीचमें जवान, रूपवाली, सम्पूर्ण आभूषणोंसे भू[illegible]

इमामवस्थां नीताऽहं यथाऽनाथाऽसती तथा १८
तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम् ।
सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि १९
एष मे प्रथमः कामः कृतस्तत्र त्वया भवेत् ।
तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे २०
इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान् ।
व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान् २१
मानुषौ शस्त्रसंपन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह २२
तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ ।
इयं च भगिनी तेषां रुधिरं मम पास्यति २३
मनोरथोऽयमिष्टोऽस्या भगिन्या मम राक्षसाः ।
शीघ्रं संपाद्यतां गत्वा तौ प्रमथ्य स्वतेजसा २४
युष्माभिर्निहतौ दृष्ट्वा तावुभौ भ्रातरौ रणे ।
इयं प्रहृष्टा मुदिता रुधिरं युधि पास्यति २५

बडी सुन्दर एक नारी देखी । उस स्त्रीके कारण उन दोनोंने एकमति करके मुझे इस हालतको पहुंचाई है जैसे कि कोई कुलटा स्त्रीकी ऐसी हालत करता है । कुटिलवृत्तवाली उसका तथा युद्धमें मरे हुए उन दोनोंका झागोंवाला खून मैं पीना चाहती हूं । हे तात ! यह मेरा उत्तम अभिलाष तुमसे पूर्ण होगा, उस (सीता) का तथा उन दोनों (राम-लक्ष्मण) का रुधिर युद्धमें मैं पीऊंगी । ” (१३–२०)

इस प्रकार शूर्पणखाके कहनेपर राक्षस खरने यमके तुल्य महाबली १४ राक्षसोंको आज्ञा दी कि– “ शस्त्रधारी, चीरकृष्णाजिन धारण किये हुए दो मनुष्य स्त्रीसहित दण्डकारण्यमें प्रविष्ट हुए हैं, उन दोनोंको और उस दुराचारिणीको मारो और लौट आओ । यह मेरी बहिन उनका रुधिर पियेगी । हे राक्षसों ! अपने पराक्रमसे उन दोनोंको मारकर शीघ्रही मेरी बहिनका यह अभिलाष पूर्ण करो । युद्धमें तुम्हारे द्वारा उन दोनोंको मरा

इति प्रतिसमादिष्टा राक्षसास्ते चतुर्दश।
तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता इव २६

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनविंशः सर्गः॥१९॥

विंशतिः सर्गः।

ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता।
राक्षसानाचचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया १
ते रामं पर्णशालायामुपविष्टं महाबलम्।
ददृशुः सीतया सार्धं लक्ष्मणेनापि सेवितम् २
तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतांस्तांश्च राक्षसान्।
अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ३
मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः।
इमानस्या वधिष्यामि पदवीमागतानिह ४
वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः।
तथेति लक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयन् ५
राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम्।
चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत् ६

हुआ देखकर पुलकित रोमोंवाली आनन्दित हुई यह युद्धमें उनका
पियेगी।" इस प्रकार आज्ञापित वे चतुर्दश राक्षस उसके साथ
प्रेरित बादलोंके समान वहां गये। (२१-२६)

यहाँ १९ वाँ सर्ग समाप्त हुआ।

तदनन्तर घोररूपा शूर्पणखा रामके आश्रममें आई और सीता
उन दोनों भाइयोंको राक्षसोंको बतलाया। उन्होंने वैदेही सीता
लक्ष्मणसहित पर्णशालामें बैठे हुए महाबली रामको देखा। श्रीमान्
राम उन राक्षसोंको तथा आई हुई उस राक्षसीको देखकर बडे ते
भाई लक्ष्मणसे बोले कि– 'हे सौमित्रे! मुहूर्तभरको तुम सी
समीपस्थ रहो अर्थात् रक्षक बनो, इतने मैं इस राक्षसीके साथी
राक्षसोंको मारूं।' तब विदितात्मा रामके इस वाक्यको सुनकर लक्ष

पुत्रौ दशरथस्यावां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
प्रविष्टौ सीतया सार्धं दुश्चरं दण्डकावनम् ७
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
वसन्तौ दण्डकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ ८
युष्मान्पापात्मकान्हन्तुं विप्रकारान्महाहवे ।
ऋषीणां तु नियोगेन संप्राप्तः सशरासनः ९
तिष्ठतैवात्र संतुष्टा नोपावर्तितुमर्हथ ।
यदि प्राणैरिहार्थो वो निवर्तध्वं निशाचराः १०
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः ११
संरक्तनयना घोरा रामं संरक्तलोचनम् ।
परुषा मधुराभाषं हृष्टाऽदृष्टपराक्रमम् १२
क्रोधमुत्पाद्य नो भर्तुः खरस्य सुमहात्मनः ।
त्वमेव हास्यसे प्राणान्सद्योऽस्माभिर्हतो युधि १३

'तथास्तु' कहकर रामके वचनका पालन किया । धर्मात्मा रामचन्द्रने भी स्वर्णसे सजे हुए बडे भारी चापको सज्य किया अर्थात् धनुष्पर प्रत्यञ्चा चढाई और उन राक्षसोंको कहा । (१–६)

"हम दोनों दशरथके पुत्र भाई राम लक्ष्मण हैं । सीतासहित हम दुश्चर दण्डकारण्यमें प्रविष्ट हुए हैं । फल–मूलके खानेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी, धर्माचारी और दण्डकारण्यमें रहनेवाले हमको तुम क्यों मारते हो ? धनुर्बाणधारी मैं ऋषियोंकी आज्ञासे युद्धमें पापाचारी और हिंसक तुमको मारनेके निमित्त यहां आया हूं । हे राक्षसो ! भयरहित हुए तुम यहीं खडे रहो, आगे न आओ । यदि तुम प्राणोंसे कुछ प्रयोजन समझते हो तो लौट जाओ ।" (७–१०)

वे १४ राक्षस रामके उस कथनको सुनकर ब्रह्महत्यारे, शूल हाथमें लिये हुए और बडे क्रोधित हुए, लाल लाल नेत्रोंवाले, भयंकर रूपवाले और आनन्दित हुए राक्षस मधुरभाषी और नहीं देख लिया है पराक्रम

का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि ।
अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे १४
एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्च परिघैः शूलपट्टिशैः ।
प्राणांस्त्यक्ष्यसि वीर्यं च धनुश्च करपीडितम् १५
इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः १६
चिक्षिपुस्तानि शूलानि राघवं प्रति दुर्जयम् ।
तानि शूलानि काकुत्स्थः समस्तानि चतुर्दश १७
तावद्भिरेव चिच्छेद शरैः काञ्चनभूषितैः ।
ततः पश्चान्महातेजा नाराचान्सूर्यसंनिभान् १८
जग्राह परमक्रुद्धश्चतुर्दश शिलाशितान् ।
गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुद्दिश्य राक्षसान् १९
मुमोच राघवो बाणान्वज्रानिव शतक्रतुः ।
ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिरप्लुताः २०

जिसका ऐसे रामसे कठोर वचन बोले कि- "हमारे स्वामी महा खरको क्रोध उत्पन्न कराके आज युद्धमें हमारेसे मारा हुआ तूही प्राण त्यागेगा। युद्धमें हमारे बहुतोंके आगे ठहरनेको तेरी अकेलेकी क्या है ? फिर युद्धमें लडनेको तो कैसे समर्थ हो सकता है ? आओ, बाहुसे प्रेरित हुए परिघ (एक प्रकारकी गदा), पट्टिश (तलवारका और शूलोंसे पराक्रम, हाथोंमें लिया हुआ धनुष् और प्रा त्यागोगे।" (११–१५)

इस प्रकार कहकर क्रोधित हुए वे १४ राक्षस अस्त्रशस्त्रोंको उठाके रामके ऊपरको दौडे और दुर्जय राघवके ऊपर उन शूलादि अस्त्रोंको लगे। काकुत्स्थ रामने उन सब चौदहों शूलोंको सुवर्णसे भूषित उ बाणोंसे काट डाला। तदनन्तर महातेजस्वी रामने बडे क्रुद्ध होकर सु सदृश तीक्ष्ण और पत्थरोंसे तीक्ष्ण किए शक्तिवाले चौदह बाणोंको किया। बाण लेकर, धनुष्को तान कर और निशानाके लगानेके

विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः ।
तैर्भग्नहृदया भूमौ भिन्नमूला इव द्रुमाः २१
निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः ।
तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता २२
उपगम्य खरं सा तु किंचित्संशुष्कशोणिता ।
पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी २३
भ्रातुः समीपे शोकार्ता ससर्ज निनदं महत् ।
सस्वरं मुमुचे बाष्पं विवर्णवदना तदा २४
निपातितान्प्रेक्ष्य रणे तु राक्षसान्प्रधाविता शूर्पणखा पुनस्ततः ।
वधं च तेषां निखिलेन रक्षसां शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा २५

इत्यार्षे श्रीरामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे विंशतितमः सर्गः २० (६४८)

एकविंशतिः सर्गः ।

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां पुनः ।
उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम् १

राक्षसोंको लक्ष्यमें रखकर रामने उस बाणोंको छोड दिया जैसे इन्द्र वज्रको छोडता है । वे बाण शीघ्रतासे राक्षसोंके वक्षःस्थलोंको भेदन करके रुधिरसे सने हुए बाँबीसे निकले सापोंके तुल्य पृथ्वीपर गिरे । वे राक्षस छिन्नहृदयवाले तथा प्राणरहित और रुधिरसे गीले अंगवाले होकर जड कटे हुए वृक्षोंके तुल्य पृथिवीपर गिर पडे । (१६-२२)

बढे हुए क्रोधवाली वह राक्षसी पृथिवीपर गिरे हुए उनको देखकर क्रोधित हुई कुछेक सूख गया है खून जिसका ऐसी और गोंदसहित वेसल्लकी लताकी तुल्य हुई वह शूर्पणखा भाई खरके पास पहुंच कर फिर गिर पडी । शोकसे पीडित वह भाईके समीप बार बार शब्द करने लगी। भूमिमें पडी हुई, दुःखित वह बहुत देरमें होशमें आई, तब उदासीन मुखवाली वह शब्दके साथ आसुओंको छोडने लगी अर्थात् रोने लगी। शूर्पणखा युद्धमें मरे पडे हुए उन राक्षसोंको देखकर फिर वहांसे दौडी और खरकी बहिन उसने उन सम्पूर्ण राक्षसोंका मरना कह दिया।(२२-२५)

यहाँ २० वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२०॥

मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाः पिशिताशनाः ।
त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः २
भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः ।
हन्यमाना न हन्यन्ते न न कुर्युर्वचो मम ३
किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः ।
हा नाथेति विनर्दन्ती सर्पवच्चेष्टसे क्षितौ ४
अनाथवद्विलपसि किं नु नाथे मयि स्थिते ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा मैवं वैक्लव्यं त्यज्यतामिति ५
इत्येवमुक्ता दुर्धर्षा खरेण परिसांत्विता ।
विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत् ६
अस्मीदानीमहं प्राप्ता हतश्रवणनासिका ।
शोणितौघपरिक्लिन्ना त्वया च परिसांत्विता ७
प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
निहन्तुं राघवं घोरं मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ८

वह खर राक्षस फिर आकर पडी हुई, सब राक्षसोंके विनाशके
आई हुई शूर्पणखाको देखकर साफ वाणीसे क्रोधसहित बोला कि "
तो अभी बडे वीर और रुधिरका अशन करनेवाले राक्षस तेरे प्रिय
रथके लिये भेजे थे, तू फिर क्यों रोती है ? विश्वासपात्र, मेरेमें अनु
नित्य मेरे हितमें लगे रहनेवाले और मारते हुएसे न मरनेयोग्य रा
मेरा वचन पालन न करें ऐसा नहीं हो सकता । फिर ये क्या है ? जि
लिये तू 'हा ! नाथ !' इस प्रकार कहती पृथिवीपर सर्पकी न्याईं लोटती
उसको मैं सुनना चाहता हूं । मुझ नाथके होते हुए अनाथकी न्याईं
विलाप करती है ? ऊठ, ऊठ, डर मत और मेरे सामने कातरताको
दे ।" (१–५)

इस प्रकार बोधित, खर द्वारा दिलासा दी हुई, दुःखसे सहनेमें
वह शूर्पणखा आंसुओंसे युक्त नेत्रोंको मलकर भाई खरसे बोली- "
कानोंसे हीन, रुधिर-समूहसे सिञ्चित और तुमसे सान्त्वना की हुई मैं

ते तु रामेण सामर्षाः शूलपट्टिशपाणयः ।
समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः ९
तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा क्षणेनैव महाजवान् ।
रामस्य च महत्कर्म महांस्त्रासोऽभवन्मम १०
साऽस्मि भीता समुद्विग्ना विषण्णा च निशाचर ।
शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी ११
विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्मिमालिनि ।
किं मां न त्रायसे मग्नां विपुले शोकसागरे १२
एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः ।
ये च मे पदवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः १३
मयि ते यद्यनुक्रोशो यदि रक्षःसु तेषु च ।
रामेण यदि शक्तिस्ते तेजो वाऽस्ति निशाचर १४
दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम् ।
यदि राममित्रघ्नं न त्वमद्य वधिष्यसि १५
तव चैवाग्रतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा ।

...र तुम्हारे पास आई हूं। हे वीर ! तूने जो मेरे प्रिय मनोरथके लिये ...से लक्ष्मणसहित रामको मारनेके लिये १४ राक्षस भेजे थे, सो क्रोधवाले, ...ल पट्टिश आदि धारण किये हुए उनको तो युद्धमें मर्मभेदी बाणोंसे उसने ...(रामने) मार डाला। क्षणमात्रमें ही महाबली उनको पृथिवीपर पडे ...ए देखकर और रामका बडा भारी यह कर्म देखकर मुझे बडाभारी दुःख ...हुआ। हे निशाचर खर ! मैं बडी उद्विग्न तथा उदासीन हुई और सब ...रफसे भयभीत हो फिर तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुई हूं। (६-११)

"विषादरूपी नक्रोंसे सेवित, परित्रासरूप लहरोंवाले, लम्बे चौडे ...करूपी समुद्रमें डूबी हुई मुझको क्यों नहीं बचाते ? जो मांसभक्षक ...राक्षस मेरे साथ गये थे, उसको रामचन्द्रने तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर भूमिपर ...गिरा दिया। हे निशाचर ! यदि तुझे मेरेपर दया है, यदि उन सब ...राक्षसोंकी सन्तानके ऊपर तुझे दया है और रामके साथ युद्ध करनेको तेरी

बुद्ध्याऽहमनुपश्यामि न त्वं रामस्य संयुगे १६
स्थातुं प्रतिमुखे शक्तः सबलोऽपि महारणे।
शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्यारोपितविक्रमः १७
अपयाहि जनस्थानात्त्वरितः सहबान्धवः।
जहि त्वं समरे मूढान्यथा तु कुलपांसन १८
मानुषौ तौ न शक्नोषि हन्तुं वै रामलक्ष्मणौ।
निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्य वासस्ते कीदृशास्त्विह १९
रामतेजोभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनशिष्यसि।
स हि तेजःसमायुक्तो रामो दशरथात्मजः २०
भ्राता चास्य महावीर्यो येन चास्मि विरूपिता।
एवं विलप्य बहुशो राक्षसी प्रदरोदरी २१
भ्रातुः समीपे शाकार्ता नष्टसंज्ञा बभूव ह।
कराभ्यामुदरं हत्वा रुरोद भृशदुःखिता २२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥२१॥

शक्ति या तेज है, तो दण्डकारण्यमें रहनवाले राक्षसोंको कण्टकरूप रह
को मार दो। यदि मेरे शत्रु रामको तू आज नहीं मारेगा तो निर्लज्ज
तेरे सामने ही प्राणोंको त्याग दूंगी (१२–१६)

"अपनी बुद्धिसे मैं समझती हूं कि सेनासहित तुम युद्धमें महात्मा
सम्मुख ठहरनेको समर्थ नहीं हो। तुम अपनेको शूर समझते हो कि
नहीं हो, तुम मिथ्या पराक्रमवाले हो, क्योंकि तुम उन दोनों मानुष
लक्ष्मणको मारनेको समर्थ नहीं हो। हे निशाचर! यदि तेरेमें स
साथ लडनेकी शक्ति वा तेज है, तो हे कुलकलंक! दण्डकारण्यमें रह
उसको मार। बलहीन और अल्पपराक्रमी तेरा यहां रहना किस प्र
का है? शीघ्रही बन्धुओं सहित जनस्थानसे चले जाओ। हे मूर्
कुलाधम! नहीं तो युद्धमें रामको मार। अन्यथा रामके तेजसे अ
(दबाया हुआ) तू शीघ्रही नष्ट होगा। दशरथपुत्र वह राम स
ही तेजःसम्पन्न है और उसका भाई महापराक्रमी है, जिसने मुझे

द्वाविंशः सर्गः ।

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पणख्या खरस्ततः ।
उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः १
तवापमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम ।
न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ इवोल्बणम् २
न रामं गणये वीर्यान्मानुषं क्षीणजीवितम् ।
आत्मदुश्चरितैः प्राणान्हतो योऽद्य विमोक्ष्यते ३
बाष्पः संधार्यतामेष संभ्रमश्च विमुच्यताम् ।
अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम् ४
परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य भूतले ।
रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि ५
संप्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्च्युतम् ।
प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरं रक्षसां वरम् ६

र दी है। बडे लम्बे चौडे उदरवाली और दुःखसे पीडित वह राक्षसी इस तरह बहुत विलाप करके भाई खर के सामने बेहोश हो गई और हाथोंसे पेट पीट कर अत्यन्त दुःखी हुई रोने लगी। (१७–२२)

यहाँ २१ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२१॥

तब शूर्पणखा द्वारा अवमानित पराक्रमी खर राक्षसोंके सामने अतिशय कठोर वचन बोला कि– " तेरे तिरस्कारसे उत्पन्न अपने इस बडे भारी क्रोधको पर्वमें उठे हुए समुद्रजलके समान मैं अपनेमें रोकनेको नहीं समर्थ हूं। जो राम अपने दुष्कर्मोंसे नष्टप्राय हुआ। आजही प्राणोंको छोडेगा। मानुष शरीरधारी क्षीण जीवनवाले उस रामको मैं कुछ नहीं समझता हूं। इन आसुओंको रोको और विकलताको त्यागो। मैं भाईसहित रामको यमालयको पहुंचाता हूं। हे राक्षसि! आजही तू युद्धमें परशुसे हत अल्पप्राण रामका उष्ण तथा लाल वर्णका रुधिर पियेगी। " खरके मुखसे निकले हुए वचन सुनकर वह प्रसन्न हुई और फिर मूर्खतासे राक्षसोंमें श्रेष्ठ भाईकी प्रशंसा करने लगी। (१–६)

तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः ।
अब्रवीद् दूषणं नाम खरः सेनापतिं तदा ७
चतुर्दश सहस्राणि मम चित्तानुवर्तिनाम् ।
रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ८
नीलजीमूतवर्णानां लोकहिंसाविहारिणाम् ।
सर्वोद्योगमुदीर्णानां रक्षसां सौम्य कारय ९
उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च ।
शरांश्च चित्रान्खड्गांश्च शक्तीश्च विविधाः शिताः १०
अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम् ।
वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविद ११
इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम् ।
सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः १२
तं मेरुशिखराकारं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
हेमचक्रमसंबाधं वैदूर्यमयकूबरम् १३
मत्स्यैः पुष्पैर्द्रुमैः शैलैश्चन्द्रकान्तैश्च काञ्चनैः ।
माङ्गल्यैः पक्षिसङ्घैश्च ताराभिश्च समावृतम् १४

तब प्रथम राक्षसी द्वारा अवमानित और फिर प्रशंसित खर नामक सेनापतिसे बोला कि–" हे सौम्य ! मेरे चित्तके अनुकूल चलं भयंकर वेगवाले, युद्धसे न हटनेवाले, काले मेघोंके सदृश व मनुष्योंके मारनेमें रत और बडे गर्वित राक्षसोंको जो कि चौदह स तैयार करो । हे सौम्य ! मेरा रथ, धनुष्, विचित्र तीर, खड्ग और प्रकारकी तीक्ष्ण शक्ति शीघ्र ले आओ। रणचतुर मैं महात्मा पुलस्त्य के आगे दुर्विनीत रामके मारनेके लिये चलना चाहता हूं । " (७-

खरके इस प्रकार कहनेपर दूषण नामक सेनापतिने कबरे रंगवा घोडोंसे युक्त सूर्यके वर्णसदृश चमकता रथ उपस्थित करके निवेद दिया । जो मेरुके शिखरके तुल्य आकारवाला, शुद्ध सुवर्णसे सुवर्णके पहियोंवाला, बडा लम्बाचौडा, वैदूर्यमणिसे युक्त जूए (

ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नं किंकिणीवरभूषितम् ।
सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरस्तदा १५
खरस्तु तन्महत्सैन्यं रथचर्मायुधध्वजम् ।
निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्य दूषणः सर्वराक्षसान् १६
ततस्तद्राक्षसं सैन्यं घोरचर्मायुधध्वजम् ।
निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम् १७
मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः ।
खड्गैश्चक्रै रथस्थैश्च भ्राजमानैः सतोमरैः १८
शक्तिभिः परिघैर्घोरैरतिमात्रैश्च कार्मुकैः ।
गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः १९
राक्षसानां सुघोराणां सहस्राणि चतुर्दश ।
निर्यातानि जनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् २०
तांस्तु निर्धावतो दृष्ट्वा राक्षसान्भीमदर्शनान् ।
खरस्याथ रथः किञ्चिज्जगाम तदनन्तरम् २१
ततस्ताञ्छबलानश्वांस्तप्तकाञ्चनभूषितान् ।

धोंपर रहनेवाला रथांग विशेष) वाला, मंगलकारी तथा कांचनके बने मत्स्य, फूल, पेड, पर्वत, सूर्य, चन्द्र, पक्षियोंके समूह और तार- दिसे सजा हुआ, ध्वजा तथा तलवारोंसे पूर्ण, किङ्कणियों (छोटी छोटी दायमान घण्टियोंसे) शोभित और श्रेष्ठ घोडोंसे युक्त था। उस रथपर बडे अमर्षपूर्वक सवार हुआ । रथमें बैठा हुआ धृष्ट खर बडे घोर वर्म, युध तथा ध्वजाओंको धारण किये बडे धनुर्धारी सब राक्षसोंसे 'प्रस्थान ' इस प्रकार बोला। तदनन्तर भयंकर वर्म, आयुध और ध्वजाओंवाली राक्षसोंकी सेना जनस्थानसे बडी तेजीसे बडे घोर शब्दको करती हुई दी। (१२–१७)

मुद्गर, पट्टिश, शूल, तीक्ष्ण कुठार, खड्ग, चक्र और हाथोंमें स्थित कते हुए तोमर और शक्ति, परिघ, बडे भारी घोर धनुष्, गदा, तलवार, ल और ग्रहण किये हुए भयंकर वज्र इत्यादिसे युक्त बडे घोर और

खरस्य मतमाज्ञाय सारथिः पर्यचोदयत् २३
संचोदितो रथः शीघ्रं खरस्य रिपुघातिनः ।
शब्देनापूरयामास दिशः सप्रदिशस्तथा २३
प्रवृद्धमन्युस्तु खरः खरस्वरो रिपोर्वधार्थं त्वरितो यथान्तकः
अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलो मेघ इवाश्मवर्षवान् २४

इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥२२॥

त्रयोविंशः सर्गः ।

तत्प्रयातं बलं घोरमशिवं शोणितोदकम् ।
अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलो गर्दभारुणः १
निपेतुस्तुरगास्तस्य रथयुक्ता महाजवाः ।
समे पुष्पचिते देशे राजमार्गे यदृच्छया २
श्यामं रुधिरपर्यन्तं बभूव परिवेषणम् ।
अलातचक्रप्रतिमं प्रतिगृह्य दिवाकरम् ३
ततो ध्वजमुपागम्य हेमदण्डं समुच्छ्रितम् ।
समाक्रम्य महाकायस्तस्थौ गृध्रः सुदारुणः ४

खरके मनके अनुकूल रहनेवाले १४ सहस्र राक्षस चले। उस समय खरकी आज्ञा पाकर शुद्ध सोनेके आभूषणोंसे सजे हुए, कर्बुर रंगवाले को प्रेरण किया। शत्रुघाती खरके रथने सारथिके प्रेरणसे दिशा ओंको शब्दसे पूरित कर दिया। बडे हुए क्रोधवाला, कठोर शब्द अन्तकके तुल्य वह शीघ्रतासे शत्रुनाशके लिये ओले वर्षानेवाले समान शब्द करता हुआ सारथिको प्रेरण करने लगा कि रथको चलाओ। (१८–२४)

यहाँ २२ वाँ सर्ग समाप्त हुआ।

उस खरके भयंकर सैन्यके चलनेपर गर्दभके समान धूसर बडा भारी मेघ अशुभकर रक्तवर्ण जल बरसाने लगा। बडे वेगवाले जुडे हुए खरके घोडे समतल भूमिपर राजमार्गमें सहसा गिर पडे को चारों ओरसे घेरकर श्याम वर्ण और जिसका बाहरी भाग अ

जनस्थानसमीपे च समाक्रम्य खरस्वनाः ।
विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः ५
व्याजह्रुरभिदीप्तायां दिशि वै भैरवस्वनम् ।
अशिवं यातुधानानां शिवा घोरा महास्वनाः ६
प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः ।
आकाशं तदनाकाशं चुक्रुर्भीमाम्बुवाहकाः ७
बभूव तिमिरं घोरमुद्धतं रोमहर्षणम् ।
दिशो वा प्रदिशो वाऽपि सुव्यक्तं न चकाशिरे ८
क्षतचार्द्रसवर्णाभा संध्या कालं विना बभौ ।
खरं चाभिमुखं नेदुस्तदा घोरा मृगाः खगाः ९
कङ्कगोमायुगृध्राश्च चुक्रुशुर्भयशंसिनः ।
नित्याशिवकरा युद्धे शिवा घोरनिदर्शनाः १०
नेदुर्बलस्याभिमुखं ज्वालोद्गारिभिराननैः ।
कबन्धः परिघाभासो दृश्यते भास्करान्तिके ११

अंगारोंके चक्रके समान था, ऐसा घेरा बन गया । उसी समय भयंकर तथा बडे भारी आकारवाला गृध्र उठी हुई सुवर्णके दण्डेवाली ध्वजाका आश्रय कर रथपर आ बैठा । भयंकर शब्दवाले मांसाद पक्षिगण जनस्थानके समीप आकर अनेक प्रकारके भयंकर शब्द करने लगे । भयंकर और बडे भारी शब्दवाले शृगाल (गीदड) पूर्व दिशामें योधाओंको अशुभसूचक भयंकर शब्द करने लगे । बडे भारी, इन्द्रद्वारा छिन्नपक्षवाले पर्वतोंके समान और शोणितमिश्रित जल धारण करनेवाले मेघोंने आकाशको अप्रकाश-युक्त कर दिया । रोमांचित करनेवाला, बडा भारी भयंकर अन्धेरा हो गया, दिशा विदिशा भी साफ मालूम न होतीं थीं । मेघोंसे आवृत होनेपर बिना समयके सन्ध्या रक्तसे सिक्त वस्त्रके वर्णके समान प्रतीत होने लगी । उस समय बडे भयंकर पाक्षिगण तथा मृगादि राक्षस खरके सम्मुख बोलने लगे । (१-९)

भयके प्रकट करनेवाले कङ्क, गोमायु और गृध्र रोने लगे । युद्धमें

जग्राह सूर्यं स्वर्भानूरपर्वणि महाग्रहः ।
प्रवाति मारुतः शीघ्रं निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः १२
उत्पेतुश्च विना रात्रिं ताराः खद्योतसप्रभाः ।
संलीनमीनाविहगा नलिन्यः शुष्कपङ्कजाः १३
तस्मिन्क्षणे बभूवुश्च विना पुष्पफलैर्द्रुमाः ।
उद्धूतश्च विना वातं रेणुर्जलधरारुणः १४
चीचीकूचीति वाश्यन्तो बभूवुस्तत्र सारिकाः ।
उल्काश्चापि सनिर्घोषा निपेतुर्घोरदर्शनाः ।
प्रचचाल मही चापि सशैलवनकानना १५
खरस्य च रथस्थस्य नर्दमानस्य धीमतः ।
प्राकम्पत भुजः सव्यः स्वरश्चास्यावसज्जत १६
सास्रा संपद्यते दृष्टिः पश्यमानस्य सर्वतः ।
ललाटे च रुजो जाता न च मोहान्न्यवर्तत १७

नित्य अशुभकारी, घोर रूपवाली शिवा (गिदडियां) ज्वालाओंको … हुए मुखोंसे खरकी सेनाके सम्मुख बोलने लगीं । सूर्यके समीप … समान कबन्ध (शिररहित मनुष्यकाय) प्रतीत होने लगा । महान् …य वाले राहुने विना (अमावस्या) पर्वकेही सूर्यको ग्रस लिया । प्रचण्ड … चलने लगा, सूर्य निष्प्रभ हो गया और खद्योत (जुगनू)के समान … वाले तारे विना रात्रिकेही प्रकाशित हो गये । जलके अन्तर्गत हो … मीन तथा पक्षी जिनके और सूख गये हैं पद्म जिनके ऐसी नलिनी … उस क्षणमें वृक्ष फूलफलादिकोंसे हीन हो गये । विना वायुकेही … समान धूसर वर्ण रेणु उडने लगी । उस समय मैना वीची कूची … शब्द करने लगीं अर्थात् सिखाये हुए शब्दोंको त्यागकर अनर्थका… करने लगीं । घोर रूपवाले उल्का तथा निर्घात (वायुविशेष) गिरने… पर्वत तथा वनों सहित सारी पृथ्वी कम्पने लगी (१०-१५) …

रथमें बैठे गर्जते हुए बुद्धिमान् खरकी बाईं भुजा फडकने लगी … उसका स्वर गद्गद हो गया । चारों ओर देखते हुए उसके नेत्र पानी…

तान्समीक्ष्य महोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् ।
अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्स खरस्तदा १८
महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ।
न चिन्तयाम्यहं वीर्याद्बलवान्दुर्बलानिव १९
तारा अपि शरैस्तीक्ष्णैः पातयेयं नभस्तलात् ।
मृत्युं मरणधर्मेण संक्रुद्धो योजयाम्यहम् २०
राघवं तं बलोत्सिक्तं भ्रातरं चापि लक्ष्मणम् ।
अहत्वा सायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे २१
यन्निमित्तं तु रामस्य लक्ष्मणस्य विपर्ययः ।
सकामा भगिनी मेऽस्तु पीत्वा तु रुधिरं तयोः २२
न क्वचित्प्राप्तपूर्वो मे संयुगेषु पराजयः ।
युष्माकमेतत्प्रत्यक्षं नानृतं कथयाम्यहम् २३
देवराजमपि क्रुद्धो मत्तैरावतगामिनम् ।
वज्रहस्तं रणे हन्यां किं पुनस्तौ च मानवौ २४

गये, मस्तकमें पीडा होने लगी तो भी अज्ञानसे वह नहीं लौटा। उस ...मय वह खर रोमांच करनेवाले, सम्मुख आये हुए बडे भारी उन उत्पातों... देखकर हंसता हुआ सब राक्षसोंसे बोला कि "मैं अपने पराक्रमसे ...पन्न हुए बडे घोर इन उपद्रवोंकी कुछ चिन्ता नहीं करता हूं, जैसे बल...न् दुर्बल मनुष्योंकी परवाह नहीं करता है। मैं तीक्ष्ण बाणोंसे आकाशसे ...रोंको भी गिरा दूंगा और क्रोधित हुआ मैं मरणधर्मसे मृत्युको भी शोधन ...र सकता हूं। बलसे गर्वित रामको तथा उसके भाई लक्ष्मणको तीक्ष्ण ...णोंसे विना मारे लौटना नहीं चाहता। जिस निमित्तसे राम लक्ष्मणकी ...त्रुता हुई है, इसलिये यह मेरी भगिनी उन दोनोंका रुधिर पीकर सफल ...नोरथवाली होगी। कहींपर भी युद्धमें मुझे पहले कभी पराजय प्राप्त ...हीं हुआ है, यह आपको प्रत्यक्षही है, मैं झूंट नहीं कहता हूं। क्रुद्ध हुआ ...मस्त ऐरावतपर चढनेवाले, वज्रधारी इन्द्रको भी युद्धमें मार डालूंगा, ...र उन कुपुरुषोंकी तो कथाही क्या है?" (१८–२४)

सा तस्य गर्जितं श्रुत्वा राक्षसानां महाचमूः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे मृत्युपाशावपाशिता २५
समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षिणः ।
ऋषयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः २६
समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः ।
स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकानां ये च संमताः २७
जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान् रजनीचरान् ।
चक्रहस्तो यथा विष्णुः सर्वानसुरसत्तमान् २८
एतच्चान्यच्च बहुशो ब्रुवाणाः परमर्षयः ।
जातकौतूहलास्तत्र विमानस्थाश्च देवताः २९
ददृशुर्वाहिनीं तेषां राक्षसानां गतायुषाम् ।
रथेन तु खरो वेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः ३०
श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहङ्गमः ।
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः ३१
हेममाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ।
द्वादशैते महावीर्याः प्रतस्थुरभितः खरम् ३२

खरका भाषण सुनकर मृत्युपाशमें बंधी हुई राक्षस-सेना बड़े [...] को प्राप्त हुई । युद्धके देखनेकी इच्छावाले महात्मा, ऋषि, देव, [...] और चारणोंसहित सिद्ध वहां आये और पवित्र कर्मवाले वे सब [...] होकर आपसमें कहने लगे—" गौ तथा ब्राह्मणोंके लिये कल्याण हो [...] लोकानुकूल जनोंके लिये भी मङ्गल हो । रामचन्द्र युद्धमें पुलस्त्यवं[...] राक्षसोंको जीतें जैसे कि युद्धमें चक्रधारी विष्णुने सम्पूर्ण राक्षसोंको [...] था । " इस प्रकार तथा अन्य और बहुत प्रकारसे कहते हुए [...] तथा आश्चर्ययुक्त विमानोंमें बैठे हुए देवता क्षीण आयुवाले उन रा[...] की सेनाको देखने लगे । बडी भारी सेनावाला खर रथपर चढकर [...] चल दिया, उसको देखकर फिर सारे राक्षस चल दिये । श्येनगामी, पृ[...] यज्ञशत्रु, विहङ्गम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, मेघमाली, [...]

महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ।
चत्वार एते सेनाऽग्रे दूषणं पृष्ठतोऽन्वयुः ३३
सा भीमवेगा समराभिकाङ्क्षिणी सुदारुणा राक्षसवीरसेना ।
तौ राजपुत्रौ सहसाऽभ्युपेता माला ग्रहाणामिव चन्द्रसूर्यौ ।३४।

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥२३॥[७२८]

चतुर्विंशः सर्गः ।

आश्रमं प्रतियाते तु खरे खरपराक्रमे ।
तानेवौत्पातिकान् रामः सह भ्रात्रा ददर्श ह १
तानुत्पातान्महाघोरान् रामो दृष्ट्वाऽत्यमर्षणः ।
प्रजानामहितान्दृष्ट्वा वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् २
इमान्पश्य महाबाहो सर्वभूतापहारिणः ।
समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुं सर्वराक्षसान् ३
अमी रुधिरधारास्तु विसृजन्ते खरस्वनाः ।
व्योम्नि मेघा विवर्तन्ते परुषा गर्दभारुणाः ४

माली, सर्पास्य और रुधिराशन-ये चौदह महापराक्रमी राक्षस खरके अगल-बगल होकर चले । महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथी और त्रिशिरा ये चार सेनापति दूषणके पीछे चले । बडे भयङ्कर पराक्रमवाली, युद्धकी चाहनावाली, बडे बलवाली राक्षसवीरोंकी वह सेना सहसा राजपुत्र रामलक्ष्मणको प्राप्त हुई जैसे कि ग्रहोंकी माला चन्द्र तथा सूर्यको प्राप्त होती है ।

॥ यहाँ २३ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२३॥

तीक्ष्ण पराक्रमी खरके रामाश्रमके समीप पहुंचनेपर भाईसहित रामने उन सब उत्पातोंको देखा जो कि खरके प्रयाणसमय हुए थे । राम बडे घोर, रोमांच करनेवाले और प्रजाको अहितकर उत्पन्न हुए उन उत्पातोंको देखकर लक्ष्मणसे बोले कि–" हे महाबाहो ! सम्पूर्ण प्राणियोंका हरण करनेवाले, सम्पूर्ण राक्षसोंके संहरण करनेको उत्पन्न हुए इन उत्पातोंको देखो । ये रुधिरकी धारावाले, बडे भयंकर शब्द करते हुए, गर्दभके समान धूसरित वर्ण और बडे भयङ्कर मेघ आकाशमें फिरते हैं । हे लक्ष्मण ! मेरे

सधूमाश्च शराः सर्वे मम युद्धाभिनन्दिताः ।
रुक्मपृष्ठानि चापानि विचेष्टन्ते विचक्षण ५
यादृशा इह कूजन्ति पक्षिणो वनचारिणः ।
अग्रतो नोऽभयं प्राप्तं संशयो जीवितस्य च ६
संप्रहारस्तु सुमहान्भविष्यति न संशयः ।
अयमाख्याति मे बाहुः स्फुरमाणो मुहुर्मुहुः ७
संनिकर्षे तु नः शूर जयं शत्रोः पराजयम् ।
सुप्रभं च प्रसन्नं च तव वक्त्रं हि लक्ष्यते ८
उद्यतानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मण ।
निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुःपरिक्षयः ९
रक्षसां नर्दतां घोषः श्रूयतेऽयं महाध्वनिः ।
आहतानां च भेरीणां राक्षसैः क्रूरकर्मभिः १०
अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता ।
आपदाशङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ११
तस्माद्गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः ।

सब बाण धूमसहित और युद्धकी इच्छावाले हो रहे हैं । स्वर्णके पृष्ठभा- वाले चाप (धनुष्) विचलित हो रहे हैं । यहां पर वनचारी पक्षी जि- प्रकार बोल रहे हैं, इससे प्रतीत होता है कि हमारे सामने राक्षसोंको प्राप्त है, जीनेका संशय उपस्थित हुआ है, अब बडा भारी युद्ध होगा संशय नहीं है । हे शूरवीर ! बार बार फडकती हुई मेरी दक्षिण यह कहती है कि 'हमारी जय और शत्रुकी पराजय होगी ।' हे लक्ष्म- तेरा मुख भी दीप्तिमान् और प्रसन्न दिखलाई देता है । युद्धके लिये हुए जिन मनुष्योंका मुख निष्प्रभ (मलिन) होता है, उनकी आ- नाश होता है । (१–९)

" गर्जते हुए राक्षसोंका बडा घोर शब्द सुनाई देता है और क्रू- राक्षसोंद्वारा आहत भेरियोंका शब्द भी सुनाई दे रहा है। बुद्धि- और आपद्की शंका करते हुए और शुभकी इच्छा करते हुए सुज्ञ पु-

गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम् १२
प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया ।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम् १३
त्वं हि शूरश्च बलवान्हन्या एतान्न संशयः ।
स्वयं निहन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान् १४
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया ।
शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत् १५
तस्मिन्प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सहसीतया ।
हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत् १६
स तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः ।
बभूव रामस्तिमिरे महानग्निरिवोत्थितः १७
स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान् ।
संबभूवास्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन्दिशः १८
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ।

को भावी अनर्थका प्रतिकार करना उचित है। इसलिये तीर लिये धनुर्धारी तुम सीताको लेकर अनेक वृक्षोंसे व्याप्त और दुःखसे प्राप्त होनेवाली पर्वतकी गुफाका आश्रय ग्रहण करो। तुम्हें मेरे कथनके प्रतिकूल न करना चाहिये। हे वत्स! तुम्हें मैं अपने चरणोंकी शपथ देता हूं कि जानकीसहित तुम शीघ्र जाओ, देर न करो। तुम पराक्रमी हो, बलवान् हो और इन राक्षसोंको मार डालोगे, इसमें संशय नहीं है। किन्तु मैं स्वयं इन सब राक्षसोंको मारना चाहता हूं।" (१०-१४)

रामद्वारा इस प्रकार प्रेरित लक्ष्मण सीतासहित धनुष् तथा बाणोंको लेकर दुर्गम गुफामें चले गये। सीतासहित लक्ष्मणके गुहामें प्रवेश करनेपर रामने आनन्दसे निश्चय करके कवच धारण किया। अग्निके तुल्य आभावाले उस कवचसे विभूषित राम अन्धेरेमें उठे हुए धूमरहित अग्निके समान प्रतीत होने लगे। पराक्रमी राम बडे भारी धनुषको उठाकर तीरोंको लेकर और प्रत्यञ्चाके शब्दसे दिशाओंको पूर्ण करते हुए वहां खडे हो गये।

समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षया १९
ऋषयश्च महात्मानो लोके ब्रह्मर्षिसत्तमाः ।
समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः २०
स्वस्ति गोब्राह्मणानां च लोकानां चेति संस्थिताः ।
जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान् रजनीचरान् २१
चक्रहस्तो यथा युद्धे सर्वानसुरपुङ्गवान् ।
एवमुक्त्वा पुनः प्रोचुरालोक्य च परस्परम् २२
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति २३
इति राजर्षयः सिद्धाः सगणाश्च द्विजर्षभाः ।
जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्च देवताः २४
आविष्टं तेजसा रामं संग्रामशिरसि स्थितम् ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि भयाद्विव्यथिरे तदा २५
रूपमप्रतिमं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव महात्मनः २६

उस समय युद्धके देखनेकी इच्छावाले गन्धर्वोंसहित देवता, चा[रण] सहित सिद्ध और बडे बडे महात्मा वहां आये। पवित्र कर्मवाले संसारमें ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ महात्मा ऋषि लोग इकट्ठे होकर वहां आकर आ[पसमें] कहने लगे–"गौ, ब्राह्मण और जो लोगोंके अनुकूल हैं, उनके लिये कल्[याण] हो! युद्धमें रामचन्द्र पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको जीतें! जैसे चक्रधारण[किये] हुए विष्णुने युद्धमें बडे बडे राक्षसोंको मारा था।" (१५–२२)

वे इस प्रकार कहकर एक दूसरेको देखकर आपसमें फिर कहने ल[गे] "बडे भयंकर कर्मवाले राक्षस १४००० हैं और धर्मात्मा राम एकेले हैं [ये] किस प्रकार युद्ध होगा?" राजर्षि, सिद्ध, गणोंसहित द्विजश्रेष्ठ [और] देवता आश्चर्ययुक्त हो विमानोंमें बैठे हुए वहां स्थित थे। उस समय ते[जसे] पूर्ण, युद्धके आगे (आंगण) में खडे हुए रामको देखकर सब [प्राणी] भयसे दुःखित हुए। अक्लिष्टकर्मा उस रामका जगत्में उपमारहित

इति संभाष्यमाणे तु देवगन्धर्वचारणैः ।
ततो गम्भीरनिर्ह्रादं घोरचर्मायुधध्वजम् २७
अनीकं यातुधानानां समन्तात्प्रत्यपद्यत ।
वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम् २८
चापानि विस्फारयतां जृम्भतां चाप्यभीक्ष्णशः ।
विप्रघुष्टस्वनानां च दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नताम् २९
तेषां सुविपुलः शब्दः पूरयामास तद्वनम् ३०
तेन शब्देन वित्रस्तास्त्रासिता वनचारिणः ।
दुद्रुवुर्यत्र निःशब्दं पृष्ठतो नावलोकयन् ३१
तच्चानीकं महावेगं रामं समनुवर्तत ।
धृतनानाप्रहरणं गम्भीरं सागरोपमम् ३२
रामोऽपि चारयंश्चक्षुः सर्वतो रणपण्डितः ।
ददर्श खरसैन्यं तद्युद्धायाभिमुखो गतः ३३
वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान् ।

क्रोधित हुए पिनाकी रुद्रके रूपके समान प्रतीत होने लगा। देव, गन्धर्व और चारणोंके इस प्रकार आपसमें कहते कहते ही बडे भयंकर वर्म,आयुध तथा ध्वजावाली तथा बडे गंभीर शब्दवाली राक्षसोंकी सेना चारों तरफ दीखने लगी। वीरोंको योग्य शब्द करते हुए, आपसमें 'मैं शत्रुको मारूंगा' इस प्रकार कहते हुए, धनुषोंकी प्रत्यञ्चाका शब्द करते हुए, अतिशय जम्भाई लेते हुए, बडे भारी शब्दसे गुंजारते हुए और भेरियोंको बजाते हुए राक्षससेनाके उन राक्षसोंके बडे भारी घोर शब्दने उस वनको पूरित कर दिया। (२२-३०)

उस शब्दसे भयभीत वनचारी व्याघ्रादि शब्दरहित स्थानको दौडने लगे जो कि पीछेको नहीं देखते थे। अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंको धारण किये हुए, गम्भीर, समुद्रके समान और बडी वेगवती वह सेना रामके पास आ पहुंची। युद्धनिपुण रामने भी चारों ओर नेत्रोंको फैलाकर युद्धाभिमुख आई हुई उस राक्षस खरकी सेनाको देखा। उसने बडे भयङ्कर

क्रोधमाहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम् ३४
दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत्क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन्।
तं दृष्ट्वा तेजसाविष्टं प्राव्यथन्वनदेवताः ३५
तस्य रुष्टस्य रूपं तु रामस्य ददृशे तदा।
दक्षस्येव क्रतुं हन्तुमुद्यतस्य पिनाकिनः ३६
तत्कार्मुकैराभरणै रथैश्च तद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः।
बभूव सैन्यं पिशिताशनानां सूर्योदये नीलमिवाभ्रजालम् ३७

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

पञ्चविंशतिः सर्गः।

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं तं रिपुघातिनम्।
ददर्शाश्रममागम्य खरः सह पुरःसरैः १
तं दृष्ट्वा सगुणं चापमुद्यम्य खरनिःस्वनम्।
रामस्याभिमुखं सूतं चोद्यतामित्यचोदयत् २
स खरस्याज्ञया सूतस्तुरगान्समचोदयत्।

धनुष्को खैंचकर तरकसोंसे बाणोंको निकालकर सम्पूर्ण राक्षसोंके ना लिये बडा भारी क्रोध किया। क्रुद्ध हुआ वह राम जलती हुई प्रलय आग्निके समान दुष्प्रेक्ष्य अर्थात् न सहनेयोग्य हो गया। तेजसे पूर्ण उ देखकर वनदेवता भागने लगे। उस समय क्रुद्ध हुए रामका रूप इस प्र दिखाई दिया जैसे कि दक्षकी यज्ञ नष्ट करनेको शिवका रूप हुआ थ अग्निके समान वर्णवाले धनुषों, आभूषणों, रथ और कवचोंसे स वह मांसाशी राक्षसोंकी सेना सूर्यके उदय होनेपर नीलवर्णके समूहके तुल्य प्रतीत होने लगी। (३१-३७)

यहाँ २४ वाँ सर्ग समाप्त हुआ॥ २४॥

अपने सेनानायकों सहित आश्रममें आकर खरने धनुर्धारी, क्रो और शत्रुके नाश करनेवाले रामको देखा। वह रामको देखकर, त सहित धनुष्को उठाकर बडे बडे शब्दसे सारथीसे 'रथको रामके सम ले चलो' इस प्रकार प्रेरणा करने लगा। खरकी आज्ञासे सारथीने घो

यत्र रामो महाबाहुरेको धुन्वन्धनुः स्थितः　३
तं तु निष्पतितं दृष्ट्वा सर्वतो रजनीचराः ।
मुञ्चमाना महानादं सचिवाः पर्यवारन्　४
स तेषां यातुधानानां मध्ये रथगतः खरः ।
बभूव मध्ये ताराणां लोहिताङ्ग इवोद्धतः　५
ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् ।
अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः　६
ततस्तं भीमधन्वानं क्रुद्धाः सर्वे निशाचराः ।
रामं नानाविधैः शस्त्रैरभ्यवर्षन्त दुर्जयम्　७
मुद्गरैरायसैः शूलैः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ।
राक्षसाः समरे शूरं निजघ्नू रोषतत्पराः　८
ते बलाहकसंकाशा महाकाया महाबलाः ।
अभ्यधावन्त काकुत्स्थं रथैर्वाजिभिरेव च　९
गजैः पर्वतकूटाभै रामं युद्धे जिघांसवः ।
ते रामे शरवर्षाणि व्यसृजन् रक्षसां गणाः　१०

को उसके स्थानके लिये प्रेरणा किया जहांपर एकाकी महाबाहु रामचन्द्र धनुष्को टङ्कारते हुए स्थित थे । खरको युद्धोन्मुख देखकर वे श्येनगामी आदि राक्षस-सचिव बडे भारी शब्दको करते हुए उसके चारों ओर खडे हो गये। रथपर चढा हुआ वह खर उन राक्षसोंके बीचमें ऐसे शोभित था जैसे कि तारोंके बीचमें उदय हुआ मंगल। तदनन्तर खरसे पराक्रममें प्रति-निधि न रखनेवाले रामको हजारों तीरोंसे पीडित करके बडे भारी शब्दसे गर्जने लगा। तब बडे क्रोधित हुए सब राक्षस अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे भयंकर धनुष्को धारण करनेवाले वृथा दुर्जय रामको ढकने लगे। (१–७)

रोषमें भरे हुए वे राक्षस मुद्गर, पट्टिश, शूल, कुन्त (अस्त्रविशेष), खड्ग और परशुओंसे युद्धमें रामको मारने लगे। मेघोंके तुल्य, बडे भारी शब्दवाले, बडे पराक्रमी और युद्धमें रामके मारनेकी इच्छावाले वे राक्षस रथ, घोडों और पर्वतकूटके समान आभावाले गजों (हाथियों) से रामके

शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा महाघनाः ।
सर्वैः परिवृतो रामो राक्षसैः क्रूरदर्शनैः ११
तिथिष्विव महादेवो वृत्तः पारिषदां गणैः ।
तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः १२
प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योघानिव सागरः ।
स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे १३
रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः ।
स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः १४
बभूव रामः संध्याभ्रैर्दिवाकर इवावृतः ।
विषेदुर्देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः १५
एकं सहस्रैर्बहुभिस्तदा दृष्ट्वा समावृतम् ।
ततो रामस्तु संक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः १६
ससर्ज निशितान्बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।

ऊपरको दौडने लगे। वे राक्षसोंके समूह रामके ऊपर तीरोंकी वर्षा क
लगे जैसे कि बडी भारी धाराओंसे वर्षते हुए मेघ पर्वतपर वर्षा करते
बडे भयंकर उन राक्षसोंके समूहसे रामचन्द्र इस प्रकार आवृत हुए जै
कि तिथियों (प्रदोषयामिनियों) में पारिषदोंके समूहोंसे शिवजी। की
रामचन्द्र उन राक्षसोंके प्रेरित किये शस्त्रोंको अपने बाणसे इस प्रकार ग्रहण
करने लगे जैसे कि समुद्र नदीप्रवाहोंको ग्रहण करता है। बडे भयंकर सम
शस्त्रोंसे भिन्न गात्रवाला राम बहुत भी प्रदीप्त अशनियोंसे भिन्न पर्वत
समान दुःखी नहीं हुआ। (८–१४)

सब शरीरमें शस्त्रोंसे विद्ध और रुधिरसे सेना हुआ राघव युद्ध
सन्ध्याके बादलोंसे ढके हुए सूर्यके तुल्य प्रकाशित हुआ। उस समय १४००
राक्षसोंसे घिरे हुए अकेले रामको देखकर देवता, परमर्षि, गन्धर्व (
सिद्ध दुःखी होने लगे! तदनन्तर बडा क्रुद्ध हुआ तथा गोलाकार
दिया है धनुष् जिसने अर्थात् धनुष्को कानपर्यन्त खैंचे हुए रामने सैंक
तथा हजारों अर्धचन्द्रांकित बाणोंको छोडा। रामचन्द्रने युद्धमें लीलापूर्व

दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान् रणे १७
मुमोच लीलया कङ्कपत्रान्काञ्चनभूषणान् ।
ते शराः शत्रुसैन्येषु मुक्ता रामेण लीलया १८
आददू रक्षसां प्राणान्पाशाः कालकृता इव ।
भित्त्वा राक्षसदेहांस्तांस्ते शरा रुधिराप्लुताः १९
अन्तरिक्षगता रेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः ।
असंख्येयास्तु रामस्य सायकाश्चापमण्डलात् २०
विनिष्पेतुरतीवोग्रा रक्षःप्राणापहारिणः ।
तैर्धनूंषि ध्वजाग्राणि चर्माणि कवचानि च २१
बाहून्सहस्ताभरणानूरून्करिकरोपमान् ।
चिच्छेद रामः समरे शतशोऽथ सहस्रशः २२
हयान्काञ्चनसंनाहान् रथयुक्तान्ससारथीन् ।
गजांश्च सगजारोहान्सहयान्सादिनस्तदा २३
चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैव रामबाणा गुणच्युताः ।
पदातीन्समरे हत्वा अनयद्यमसादनम् २४

दुर्वार, दुःसह्य, कालदण्डके तुल्य और सीधे जानेवाले बाणोंको छोडा । लीलापूर्वक शत्रुसेनामें रामद्वारा छोडे हुए, कालप्रेरित पाशों (फांसी)के समान वे बाण राक्षसोंके प्राणोंको ग्रहण (नष्ट) करने लगे । दीप्त अग्निके समान तेजवाले, रुधिरसे सने हुए और राक्षसोंकी देहोंको भेदन करके आकाशमें प्राप्त हुए वे बाण बडे शोभित हुए । रामके धनुष्से अत्यन्त तीक्ष्ण, राक्षसोंके प्राणोंको नष्ट करनेवाले असंख्य बाण छूटे । रामचन्द्रने युद्धमें उन बाणोंसे शत्रुओंके सैकडों हजारों धनुष्, ध्वजा, कवच, शिर, आभरणों सहित बाहू और हस्तिशुंडके समान जंघाओंको काटडाला । (१५-२२)

सुवर्णके कवचोंसे युक्त, सारथिसहित, रथमें जुडे घोडे, हाथी और हाथीसवार, घोडे और घुडसवार इत्यादिकोंको प्रत्यञ्चासे मुक्त रामके बाणोंने भेदन तथा छेदन कर डाला । और पैदलोंको युद्धमें मारकर यमालयको

ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः ।
भीममार्तस्वरं चक्रुश्छिद्यमाना निशाचराः २५
तत्सैन्यं विविधैर्बाणैरर्दितं मर्मभेदिभिः
न रामेण सुखं लेभे शुष्कं वनमिवाग्निना २६
केचिद्भीमबलाः शूराः प्रासाञ्शूलान्परश्वधान् ।
चिक्षिपुः परमक्रुद्धा रामाय रजनीचराः २७
तेषां बाणैर्महाबाहुः शस्त्राण्यावार्य वीर्यवान् ।
जहार समरे प्राणांश्चिच्छेद च शिरोधरान् २८
ते छिन्नशिरसः पेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः ।
सुपर्णवातविक्षिप्ता जगत्यां पादपा यथा २९
अवशिष्टाश्च ये तत्र विषण्णास्ते निशाचराः ।
खरमेवाभ्यधावन्त शरणार्थं शराहताः ३०
तान्सर्वान्धनुरादाय समाश्वास्य च दूषणः ।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धः क्रुद्धं क्रुद्ध इवान्तकः ३१

पहुंचा दिया । तदनन्तर तीक्ष्ण है अग्रभाग जिनका ऐसे नालीक, ना... और विकर्णि नामक बाणोंसे बिंधे हुए राक्षस भयंकर आर्त स्वर करने... रामद्वारा मर्मभेदी तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित वह राक्षससेना अग्निसे प... सूखे हुए वनके समान सुख (दुःखनिवृत्ति) को प्राप्त न हुई । कोई... महाबलवान् शूरवीर राक्षस शूल, खड्ग तथा परश्वध (परशु)... महान् अस्त्रोंको रामके सम्मुख जाकर फैंकने लगे । महाबाहु राम... उन शस्त्रोंको बाणोंसे निवारण करके राक्षसोंके मस्तकोंको काट दिया... प्राणोंको नष्ट कर डाला । कट गये हैं कवच तथा शरासन (चाप)... तथा कटे हुए शिरवाले वे राक्षस गरुडके पंखोंसे उत्पन्न वायुसे उख... वृक्षोंके तुल्य पृथ्वीपर गिरने लगे । उस सेनामें मरनेसे बचे हुए जो... थे, वे दुःखी हुए तथा बाणोंसे पीडित हुए रक्षार्थ खरके पास... गये । (२३-३०)

सेनापति दूषण उन सबकी सांत्वना (तसल्ली) करके फिर

निवृत्तास्तु पुनः सर्वे दूषणाश्रयनिर्भयाः ।
राममेवाभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः ३२
शूलमुद्गरहस्ताश्च पाशहस्ता महाबलाः ।
सृजन्तः शरवर्षाणि शस्त्रवर्षाणि संयुगे ३३
द्रुमवर्षाणि मुञ्चन्तः शिलावर्षाणि राक्षसाः ।
तद्बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ३४
रामस्यास्य महाघोरं पुनस्तेषां च रक्षसाम् ।
ते समन्तादभिक्रुद्धा राघवं पुनरार्दयन् ३५
ततः सर्वा दिशो दृष्ट्वा प्रदिशश्च समावृताः ।
राक्षसैः सर्वतः प्राप्तैः शरवर्षाभिरावृतः ३६
स कृत्वा भैरवं नादमस्त्रं परमभास्वरम् ।
समयोजयद्गान्धर्वं राक्षसेषु महाबलः ३७
ततः शरसहस्राणि निर्ययुश्चापमण्डलात् ।
सर्वा दश दिशो बाणैरापूर्यन्त समागतैः ३८

ाथ लेकर काकुत्स्थ रामकी ओर दौडा जैसे कि क्रोधित हुआ यम रुद्रकी ोर दौडता हो । युद्धसे फिरे हुए, दूषणके आश्रयसे भयरहित हुए, साल ाल वृक्ष तथा शिलारूपी आयुधवाले वे सब राक्षस फिर रामकी ओर ौडे । शूल तथा मुद्गर हाथोंमें लिये हुए, धनुषोंको धारे हुए, महाबली, द्धमें तीर तथा शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए और पेड तथा शिलाओंकी वर्षा रते हुए वे राक्षस लडने लगे । फिर उन राक्षसों तथा रामका बडा यङ्कर, रोमाञ्च करनेवाला बडा भारी अद्भुत युद्ध हुआ । क्रोधमें भरे ए वे राक्षस फिर चारों ओरसे रामके पास पहुंचे । महाबली रामचन्द्रने ब दिशा तथा विदिशाओंको तीरोंकी वर्षा करनेवाले तथा अस्त्रको लिये ए राक्षसोंसे आवृत (पूर्ण) देखकर और भयङ्कर शब्द करके राक्षसोंके िमित्त बडे दीप्तिवाले गान्धर्व अस्त्रको चढाया । तब (गान्धर्वके संयोजित रनेपर) चाप-मण्डलसे हजारों तीर निकलने लगे । उन निकलते हुए ाणोंसे सम्पूर्ण दशों दिशाएँ ढक गईं । (२१-३८)

❀

नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं शरोत्तमान् ।
विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः ३९
शरान्धकारमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ।
बभूवावस्थितो रामः प्रक्षिपन्निव ताञ्छरान् ४०
युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम् ।
युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाऽभवत् ४१
निहताः पतिताः क्षीणाश्छिन्ना भिन्ना विदारिताः ।
तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः ४२
सोष्णीषैरुत्तमाङ्गैश्च साङ्गदैर्बाहुभिस्तथा ।
ऊरुभिर्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः ४३
हयैश्च द्विपमुख्यैश्च रथैर्भिन्नैरनेकशः ।
चामरव्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि ४४
रामेण बाणाभिहतैर्विच्छिन्नैः शूलपट्टिशैः ।
विच्छिन्नैः समरे भूमिर्विस्तीर्णाऽभूद्भयंकरा ४५
तान्दृष्ट्वा निहतान्सर्वे राक्षसाः परमातुराः ।
न तत्र चलितुं शक्ता रामं परपुरंजयम् ४६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥२५॥

बाणोंसे पीडित वे राक्षस उत्तम घोर तीरोंका रामद्वारा च[...] छोडना और खैंचना न देख सके, किन्तु केवल धनुष्का खींचनाही [...] सके। रामके बाणोंसे उत्पन्न अन्धकारने सूर्यसहित आकाशको ढक [...] तथापि रामचन्द्र उन शरोंको उगलते हुएके समान वहां स्थित रहे। [...] ही साथ गिरते हुए, एकही साथ नष्ट हुए और एकही साथ गिरे हुए [...] राक्षसोंसे पृथिवी व्याप्त हो गई। मरे हुए, गिरे हुए, कण्ठगत प्राण[...] द्विधा कटे हुए, हाथ पैर आदि कोई अवयव कटे हुए और फटे हुए [...] वाले वे सहस्रों राक्षस वहां पडे दीखने लगे। पगडी दुपट्टा आदि [...] शिरों, बाजूबन्दों युक्त बाहुओं, तरह तरहके भूषणोंसे युक्त कटे हुए [...] तथा जंघाओं, घोडों, श्रेष्ठ हाथियों, जगह जगहपर टूटे हुए रथों, चा[...]

षड्विंशः सर्गः ।

दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं विलोक्य च ।
संदिदेश महाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् १
राक्षसान्पञ्चसाहस्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ।
ते शूलैः पट्टिशैः खड्गैः शिलावर्षैर्द्रुमैरपि २
शरवर्षैरविच्छिन्नं ववर्षुस्तं समन्ततः ।
तद् द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ३
प्रतिजग्राह धर्मात्मा राघवस्तीक्ष्णसायकैः ।
प्रतिगृह्य च तद्वर्षं निमीलित इवर्षभः ४
रामः क्रोधं परं लेभे वधार्थं सर्वरक्षसाम् ।
ततः क्रोधसमाविष्टः प्रदीप्त इव तेजसा ५
शरैरभ्यकिरत्सैन्यं सर्वतः सहदूषणम् ।

ह्वाओं, छत्रों, ध्वजाओं, रामके बाणोंसे नष्ट हुए विचित्र शूल तथा पट्टि-
शोंसे व्याप्त वह रणभूमि भयङ्कर हो गई । बडे दुःखी हुए वे सब राक्षस
न अपने साथियोंको मरा देखकर शत्रुके नगरको जीतनेवाले रामके
म्मुख जानेको समर्थ न हुए । (३९-४६)

यहाँ २५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

महाबाहु राक्षस दूषणने नष्ट हुई अपनी सेनाको देखकर भयंकर
गवाले, दुःखसे सहने योग्य और युद्धसे उलटे न फिरनेवाले पांच
जार राक्षसोंको आज्ञा दी । वे राक्षस शूल, पट्टिश, खड्ग और वृक्ष
त्थर तथा तीरोंकी वर्षासे चारों ओरसे रामके उपर निरन्तर बरसने लगे
र्थात् उपरोक्त अस्त्रोंको फैंकने लगे । धर्मात्मा रामने प्राणोंको नष्ट करने-
ाली बडी भारी वृक्षों सहित शिलाओंकी वर्षाको तीक्ष्ण बाणोंसे रोक
दिया । उस वर्षाको रोक कर वर्षाके कारण आंख मूंदे हुए सांड बैलके समान
ामने सम्पूर्ण राक्षसोंको वधके लिये बडा भारी कोप किया । तदनन्तर
ोधयुक्त हो तथा तेजसे प्रदीप्तके तुल्य रामने तीरोंसे चारों ओरसे दूषण-
हित वह राक्षस-सेना ढक दी । तब शत्रुके लिये दूषण-रूप क्रुद्ध हुए

ततः सेनापतिः क्रुद्धो दूषणः शत्रुदूषणः ६
शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवारयत् ।
ततो रामः सुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महद्धनुः ७
चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
हत्वा चाश्वान्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः ८
शिरो जहार तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि ।
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ९
जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं लोमहर्षणम् ।
वेष्टितं काञ्चनैः पट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् १०
आयसैः शङ्कुभिस्तीक्ष्णैः कीर्णं परवसोक्षितम् ।
वज्राशनिसमस्पर्शं परगोपुरदारणम् ११
तं महोरगसंकाशं प्रगृह्य परिघं रणे ।
दूषणोऽभ्यपतद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः १२
तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य च राघवः ।

सेनापति दूषणने वज्रके समान तीरोंसे रामको ढकना आरम्भ कि[या।] तदनु क्रुद्ध हुए रामने युद्धमें छुरेसे उसका बडा भारी धनुष् और स[...] बाणोंसे चार घोडोंको काट डाला। रामने तीक्ष्ण तीरोंसे घोडोंको मा[र] अर्धचन्द्रचिह्नित बाणसे सारथिका शिर काट डाला और तीन बा[णों]से छातीमें दूषणको बींध दिया। (१–९)

धनुष् जिसका कट गया है, टूट गया है रथ जिसका, मर चुके [हैं] सारथि जिसका ऐसे उस राक्षस दूषणने रोमाञ्च करनेवाले तथा [...] शिखरके समान कान्तिवाले परिघको ग्रहण किया। सुवर्णके बन्ध[नोंसे] वेष्टित, देवताओंकी सेनाको भी मर्दन करनेवाला, लोहेकी पैनी कील[ोंसे] व्याप्त, शत्रुओंकी चर्बीसे सना हुआ,वज्र तथा अशनिके समान स्पर्शवा[ले] शत्रुओंके गोपुर अर्थात् नगरद्वार भेदन करनेवाला और बडे भारी [...] तुल्य उस परिघको ग्रहण करके क्रूरकर्मा राक्षस दूषण युद्धमें रामके स[ाम]ने दौडा। राघव रामने अपने ऊपरको गिरते हुए राक्षस दूषणकी आ[...]

द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ १३
भ्रष्टस्तस्य महाकायः पपात रणमूर्धनि ।
परिघच्छिन्नहस्तस्य शक्रध्वज इवाग्रतः १४
कराभ्यां च विकीर्णाभ्यां पपात भुवि दूषणः ।
विषाणाभ्यां विशीर्णाभ्यां मनस्वीव महागजः १५
दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे ।
साधु साध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्यपूजयन् १६
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रयः सेनाग्रयायिनः ।
संहत्याभ्यद्रवन् रामं मृत्युपाशावपाशिताः १७
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी च महाबलः ।
महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षसः १८
स्थूलाक्षः पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च परश्वधम् ।
दृष्ट्वैवापततस्तांस्तु राघवः सायकैः शितैः १९
तीक्ष्णाग्रैः प्रतिजग्राह संप्राप्तानतिथीनिव ।
महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनन्दनः २०

सहित दोनों भुजा दो तीरोंसे काट डालीं। युद्धमें छिन्नहस्त दूषणके हाथोंसे गिरा हुआ और बडे प्रमाणवाला परिघ इन्द्रध्वजाके समान प्रथम गिरा। कटे हुए हाथोंके साथ दूषण भी पृथ्वीपर इस भांति गिरा जैसे कि दांतोंके कटनेसे महामनस्वी गज गिरता है। सब प्राणी युद्धमें निहत, पृथ्वीपर गिरे हुए दूषणकी देखकर 'साधु साधु' ऐसा कहकर रामकी स्तुति करने लगे। (९-१६)

इसी बीचमें क्रोधित हुए तथा मृत्युकी फांसीसे बंधे हुए तीन सेनापति इकट्ठे होकर रामके समीप आये। जो कि महाबली महाकपाल, स्थूलाक्ष और प्रमाथी थे, जिनमेंसे महाकपाल नामक राक्षस बडे भारी शूलको लेकर, स्थूलाक्ष पट्टिशको तथा प्रमाथी कुठारको ग्रहण करके आया था। रामने आते हुए उन तीनोंको देखकर अग्र भाग जिनका तीक्ष्ण है ऐसे तेज तीरोंसे आये हुए अतिथियोंकी न्याईं उन्हें ग्रहण किया। रामने बडेभारी

असंख्येयैस्तु बाणौघैः प्रममाथ प्रमाथिनम् ।
स्थूलाक्षस्याक्षिणी स्थूले पूरयामास सायकैः २१
स पपात हतो भूमौ विटपीव महाद्रुमः ।
दूषणस्यानुगान्पञ्चसाहस्रान्कुपितः क्षणात् २२
हत्वा तु पञ्चसाहस्रैरनयद्यमसादनम् ।
दूषणं निहतं श्रुत्वा तस्य चैव पदानुगान् २३
व्यादिदेश खरः क्रुद्धः सेनाध्यक्षान्महाबलान् ।
अयं विनिहतः संख्ये दूषणः सपदानुगः २४
महत्या सेनया सार्धं युद्ध्वा रामं कुमानुषम् ।
शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वं सर्वराक्षसाः २५
एवमुक्त्वा खरः क्रुद्धो राममेवाभिदुद्रुवे ।
श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहंगमः २६
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः ।
हेममाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः २७
द्वादशैते महावीर्या बलाध्यक्षाः ससैनिकाः ।
राममेवाभ्यधावन्त विसृजन्तः शरोत्तमान् २८

बाणोंसे महाकपालका शिर काट दिया और असंख्य बाण-समूहसे प्रमा[थी]को मथन कर डाला। तीक्ष्ण तीरोंसे स्थूलाक्षकी आंखें पूर्ण कर दीं, [ज]ब वह शाखाओंवाले भारी पेडके समान पृथ्वीपर गिर पडा। कुपित [ह]ो रामने दूषणके अनुगामी पांच हजार राक्षसोंको क्षणभरमें पांच सह[स्र] बाणोंके समूहसे यमालयको पहुंचा दिया। (१७–२३)

क्रोधित हुए खरने दूषण तथा उसके अनुगामियोंको मरा हुआ देख कर महाबली सेनापतियोंको आज्ञा दी कि–"हे राक्षसो! देखो युद्धमें से[ना] सहित यह दूषण रामद्वारा मारा गया। अब तुम लोग बडी भारी सेना साथ लडकर अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे कापुरुष रामको मारो।" इस प्रकार कह कर क्रोधित हुआ खर रामकी ओर दौडा। श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, मेघमाली, महामा[ली]

ततः पावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः ।
जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः २९
ते रुक्मपुङ्खा विशिखाः सधूमा इव पावकाः ।
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि वज्रा इव महाद्रुमान् ३०
रक्षसां तु शतं रामः शतेनैकेन कर्णिना ।
सहस्रं तु सहस्रेण जघान रणमूर्धनि ३१
तैर्भिन्नवर्माभरणाच्छिन्नभिन्नशरासनाः ।
निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां रजनीचराः ३२
तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः ।
विस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ३३
तत्क्षणे तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम् ।
बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् ३४
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।

पर्पास्य और रुधिराशन ये बारह बडे पराक्रमी सेनापति सैनिकों सहित श्रेष्ठ तीरोंको वर्षाते हुए रामके समीपमें जाने लगे। तब तेजस्वी रामने अग्निके समान दीप्त और हेम तथा वज्रसे भूषित बाणोंसे उस सेनाका शेष भाग नष्ट कर दिया। स्वर्णपुच्छवाले और धूमसहित अग्निके समान वे बाण इस प्रकार उन राक्षसोंको नष्ट करने लगे जैसे वज्र बडे बडे पेडोंको नष्ट करता है। रामचन्द्रने एक सौ कर्णी नामक शरोंसे राक्षसोंका सैकडो और हजार तीरोंसे हजारोंको युद्धमें नष्ट किया। उन बाणोंसे भिन्न हो गये हैं कवच तथा आभरण जिनके, टूट फूट गये हैं कमान जिनके और रुधिरसे लिप्त हैं शरीर जिनके ऐसे वे राक्षस पृथिवीपर गिरने लगे। (२४-३२)

समरमें उन तीरोंसे गिरे हुए, खुले हुए बालोंवाले और रुधिरसे लिप्त शरीरोंवाले उन राक्षसोंसे सारी भूमि इस प्रकार व्याप्त हो गई जैसे कि कुशाओंसे वेदी व्याप्त होती है और थोडी देरमें मर गये हैं राक्षस जिसके ऐसा वह वन मांस और लोहूसेकी गई है कींचड जिसमें ऐसे

हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ३५
तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः ।
राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः ३६
शेषा हता महावीर्या राक्षसा रणमूर्धनि ।
घोरा दुर्विषहाः सर्वे लक्ष्मणस्याग्रजेन ते ३७
ततस्तु तद्भीमबलं महाहवे समीक्ष्य धर्मेण हतं बलीयसा ।
रथेन रामं महता खरस्ततः समाससादेन्द्र इवोद्यताशनिः

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंशः सर्गः ।

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः ।
राक्षसस्त्रिशिरा नाम सन्निपत्येदमब्रवीत् १
मां नियोजय विक्रांत संनिवर्तस्व साहसात् ।
पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम् २
प्रतिजानामि ते सत्यमायुधं चाहमालभे ।
यथा रामं वधिष्यामि वधार्हं सर्वरक्षसाम् ३

नरकके समान हो गया । भयानक काम करनेवाले चौदह हजार राक्षस एक पैदल मनुष्य रामने मार डाला । उस सब सेनामें महारथ खर त्रिशिरा नामक राक्षस शेष रहा और वैरियोंके नाश करनेवाले राम शेष सब बलवान्, भयानक, विषैले, वे राक्षस युद्धभूमिमें रामने डाले । इसके अनन्तर बडी लडाईमें उस भयानक सेनाको बलवान् रा मारी हुई देखकर खर नामक राक्षस बडे रथसे रामके पास पहुंचा वज्र उठाकर इन्द्र पहुंचे । (३३–३८)

यहाँ २६ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

रामके सामने जाते हुए खरको नमन करके सेनापति त्रिशिरा ना राक्षस बोला– " हे वीर ! तुम उद्योग छोडो और मुझे आज्ञा दो महाबाहु रामको संग्राममें मरे हुए देखो । मैं हथियार पकडता हूं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि सब राक्षसोंके द्वारा वधके

अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम ।
विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्निको भव ४
प्रहृष्टो वा हते रामे जनस्थानं प्रयास्यसि ।
मयि वा निहते रामं संयुगाय प्रयास्यसि ५
खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः ।
गच्छ युद्धयेत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ ६
त्रिशिरास्तु रथेनैव वाजियुक्तेन भास्वता ।
अभ्यद्रवद्रणे रामं त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ७
शरधारासमूहान्स महामेघ इवोत्सृजन् ।
व्यसृजत्सदृशं नादं जलार्द्रस्येव दुन्दुभेः ८
आगच्छतं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः ।
धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन्सायकाञ्शितान् ९
स संप्रहारस्तुमुलो रामस्त्रिशिरसोस्तदा ।
संबभूवातिबलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव १०
ततस्त्रिशिरसा बाणैर्ललाटे ताडितस्त्रिभिः ।

रामको मार डालूंगा । क्या तो मैं रामको रणमें मार डालूंगा वा राम मुझको समरमें मार डालेंगे। मुहूर्त भरके लिये रणोत्साहसे निवृत्त होकर जय-पराजयके निर्णायक बनिये । या तो तुम अहंकारी रामके मर जानेपर जनस्थान (पंचवटी) को चलोगे या मेरे मरनेपर रामके समीप संग्रामको जावोगे। " त्रिशिरा नामक राक्षसने मरनेके लोभसे खरको लौटाया और आप " जाओ, युद्ध करो " इस प्रकार खरकी आज्ञा पाकर रामके सम्मुख चला । (१-६)

त्रिशिरा घोडोंसे युक्त प्रकाशमान रथमें बैठकर रणमें रामके प्रति तीन चोटियोंवाले पहाडके समान दौडा। वह महामेघके समान बाणोंकी वर्षा करता हुआ जलसे भीगे हुए नगाडेके समान शब्द करने लगा । आते हुए त्रिशिरा राक्षसको देखकर धनुषसे पैने बाण छोडते हुए रामने उसका मुकाबला किया। वह राम और त्रिशिराका बडा घोर युद्ध बलवान् सिंह

अमर्षी कुपितो रामः संरब्ध इदमब्रवीत् ११
अहो विक्रमशूरस्य राक्षसस्येदृशं बलम् ।
पुष्पैरिव शरैर्योऽहं ललाटेऽस्मि परिक्षतः ।
ममापि प्रतिगृह्णीष्व शरांश्चापगुणाच्च्युतान् १२
एवमुक्तस्तु संरब्धः शरानाशीविषोपमान् ।
त्रिशिरो वक्षसि क्रुद्धो निजघान चतुर्दश १३
चतुर्भिस्तुरमानस्य शरैः संनतपर्वभिः ।
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः १४
अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थे न्यपातयत् ।
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् १५
ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम् ।
चिच्छेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः १६
सायकैश्चाप्रमेयात्मा सामर्षात्तस्य रक्षसः ।
शिरांस्यपातयत्त्रीणि वेगवद्भिस्त्रिभिः शरैः १७
सधूमशोणितोद्गारी रामबाणाभिपीडितः ।

और हाथीके समान होने लगा। तदनन्तर तीन बाणोंसे माथेमें ताड़ि... किये गये कुपित हुए अमर्षी (ऋषियोंके प्रति किये हुए अपराधको ... सहनेवाले) राम क्रोधपूर्वक बोले, अहो ! पराक्रमी राक्षसका ऐसा ब... (व्यङ्ग्योक्ति) जिसके बाण माथेमें फूलके समान लगे हैं। अब धनुष... प्रत्यञ्चा (तांत) से छूटे हुए मेरे बाणोंको सहो।' ऐसा कहकर कुपि... हुए रामने सांपके समान चौदह बाणोंको त्रिशिराकी छातीमें मारा। (७-१...

तेजस्वी रामने कोमल पर्ववाले चार बाणोंसे त्रिशिराके चारों वे... वाले घोडोंको गिरा दिया। रामने आठ बाणोंसे सारथिको रथके अ... मार डाला और एक बाणसे उसकी उठी हुई ध्वजाको काट डाला... तदनन्तर उस टूटे हुए रथसे उछलते हुए राक्षसको रामने हृदयमें बाणों... वेधा और वह चेष्टारहित हो गया। जिनकी आत्माकी तौल नहीं की ... सकती, ऐसे क्रोधयुक्त रामने वेगवाले पैंने तीन बाणोंसे उसके तीनों शि...

न्यपतत्पातितैः पूर्वं समरस्थो निशाचरः ॥ १८
हतशेषास्ततो भग्ना राक्षसाः खरसंश्रयाः।
द्रवन्ति स्म न तिष्ठन्ति व्याघ्रत्रस्ता मृगा इव ॥ १९
तान्खरो द्रवतो दृष्ट्वा निवर्त्य रुषितस्त्वरन्।
राममेवाभिदुद्राव राहुश्चन्द्रमसं यथा ॥ २०

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥ [८६९]

अष्टविंशः सर्गः।

निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह।
खरस्याप्यभवत्त्रासो दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥ १
स दृष्ट्वा राक्षसं सैन्यमविषह्यं महाबलम्।
हतमेकेन बाणेन दूषणस्त्रिशिरा अपि ॥ २
तद्बलं हतभूयिष्ठं विमनाः प्रेक्ष्य राक्षसः।
आससाद खरो रामं नमुचिर्वासवं यथा ॥ ३
विकृष्य बलवच्चापं नाराचान्रक्तभोजनान्।
खरश्चिक्षेप रामाय क्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४

को गिरा दिया। अपने शिरोंके गिर पडनेसे वह राक्षस लोहू डालता हुआ रामके बाणोंसे दुःखी होकर पृथिवीपर गिर पडा। मरनेसे बचे हुए खरके सेवक राक्षस इधर उधर दौडने लगे जैसे व्याघ्रसे डरे हुए हरिण नहीं ठहर सकते। भागते हुए उन्हें देखकर खर लौटालने लगा और आप क्रोधमें आकर रामके ऊपर दौडा, जैसे राहु चन्द्रमापर दौडता है। (१४-२०)

यहाँ २७ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२७॥

रामके पराक्रम और त्रिशिरासहित रणमें दूषणको मरा हुआ देखकर खरको भी त्रास उत्पन्न हुआ। वह महाबली खर पराक्रमी राक्षसी सेना और त्रिशिरा, दूषणको अकेले रामसे मरा हुआ देखकर, वह विमना उस सेनाको सेनापतियोंसे रहित देखकर रामके समीप पहुंचा जैसे नमुचि इन्द्रके पास पहुंचा था। खर बलपूर्वक धनुष्को खींचकर लोहूके पीने-

ज्यां विधुन्वन्सुबहुशः शिक्षयास्त्राणि दर्शयन् ।
चचार समरे मार्गाञ्शरै रथगतः खरः ५
स सर्वाश्च दिशो बाणैः प्रदिशश्च महारथः ।
पूरयामास तं दृष्ट्वा रामोऽपि सुमहद्धनुः ६
स सायकैर्दुर्विषहैर्विस्फुलिङ्गैरिवाग्निभिः ।
नभश्चकाराविवरं पर्जन्य इव वृष्टिभिः ७
तद्बभूव शितैर्बाणैः खररामविसर्जितैः ।
पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसंकुलम् ८
शरजालावृतः सूर्यो न तदा स्म प्रकाशते ।
अन्योन्यवधसंरम्भादुभयोः संप्रयुध्यतोः ९
ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः ।
आजघान रणे रामं तोत्रैरिव महाद्विपम् १०
तं रथस्थं धनुष्पाणिं राक्षसं पर्यवस्थितम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि पाशहस्तमिवान्तकम् ११

वाले बाणोंको कुपित सर्पोंके समान रामके ऊपर छोडने लगा। धनुर्वि
शिक्षाकी चतुराईसे प्रत्यञ्चाको हिलाते हुए और बहुत प्रकारसे अस्त्र छोडने
की बुद्धिमानी दिखाते हुए रथपर चढे हुए खरने तीर छोडते हुए युद्ध
अनेक चक्कर काटे। उस महारथीने बाणोंसे सब दिशा और विदिशाओं
परिपूर्ण कर दिया। उसे देखकर बडे धनुष्वाले रामने भी सारी दि
ओंको भर दिया। जिस प्रकार मेघ वृष्टियोंसे आकाशको ढक लेता है,
ही रामने भी अग्निके समान चिनगारी छोडते हुए असहनीय बाणों
आकाशको ढक दिया। (१–७)

खर और रामसे छोडे हुए पैने बाणोंसे वह आकाश चारों ओर
भरा हुआ अवकाशरहित हो गया। एक दूसरेको मारनेके क्रोधसे लडते
उन दोनोंके बाणोंसे ढका हुआ सूर्य प्रकाश नहीं देता था। इसके अनन्
विकर्णी पैने बाणोंसे खरने रामको मारा जैसे कि अंकुशसे हाथीको मा
हैं। रथपर स्थित धनुष्धारी उस राक्षसको सब प्राणी हाथमें फांस लि

हन्तारं सर्वसैन्यस्य पौरुषे पर्यवस्थितम् ।
परिश्रान्तं महासत्त्वं मेने रामं खरस्तदा १२
तं सिंहमिव विक्रान्तं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
दृष्ट्वा नोद्विजते रामः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा १३
ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः ।
आससादाथ तं रामं पतङ्ग इव पावकम् १४
ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः ।
खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन्हस्तलाघवम् १५
स पुनस्त्वपरान्सप्त शरानादाय मर्मणि ।
निजघान रणे क्रुद्धः शक्राशनिसमप्रभान् १६
ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् ।
अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः १७
ततस्तत्प्रहतं वाणैः खरमुक्तैः सुपर्वभिः ।
पपात कवचं भूमौ रामस्यादित्यवर्चसम् १८

हुए यमराजके समान मानने लगे । तब खरने सारी सेनाको मारनेवाले रामको थक जानेपर भी पुरुषार्थमें प्रवृत्त महाबलवान् माना अथवा तब खरने सारी सेनाके मारनेवाले पुरुषार्थी महाबली रामको थका हुआ समझा। सिंहके समान पराक्रमी तथा बली सिंहके समान चलनेवाले उस खरको देखकर राम इस तरह न डरे जैसे कि सिंह खरगोशसे नहीं डरता। इसके उपरान्त सूर्यके समान प्रकाशवाले बडे रथमें बैठकर खर रामके प्रति गया जैसे पतङ्गा अग्निपर जावे । (८–१४)

फिर महात्मा रामके बाणसमेत धनुष्को हाथकी शीघ्रता दिखाते हुए खरने उनकी मुट्ठीमें ही काट डाला । क्रुद्ध हुए उस खरने फिर इन्द्र-वज्र (बिजली) के समान प्रकाशवाले सात बाणोंको लेकर रामके कवचमें मारा। तदनन्तर खर अतुलनीय पराक्रमवाले रामको हजार बाणोंसे पीडित करके समरभूमिमें बडा शब्द करने लगा । सूर्यके समान तेजवाला रामका कवच खरसे छोडे अच्छे पर्ववाले बाणोंसे टूटकर भूमिपर गिर पडा ।

स शरैरर्दितः क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवः ।
रराज समरे रामो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् १९
ततो गम्भीरनिर्ह्रादं रामः शत्रुनिबर्हणः ।
चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन्महद्धनुः २०
सुमहद्वैष्णवं यत्तदतिसृष्टं महर्षिणा ।
वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावतः २१
ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम् २२
स दर्शनीयो बहुधा विच्छिन्नः काञ्चनो ध्वजः ।
जगाम धरणीं सूर्यो देवतानामिवाज्ञया २३
तं चतुर्भिः खरः क्रुद्धो रामं गात्रेषु मार्गणैः ।
विव्याध हृदि मर्मज्ञो मातङ्गमिव तोमरैः २४
स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिःसृतैः ।
विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृशम् २५
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठ संगृह्य परमाहवे ।

सब शरीरमें बाणयुक्त कुपित हुए राम समरभूमिमें धुंआरहित अ[ग्नि]के समान जलते हुए शोभा पाने लगे। फिर शत्रुओंके नाश करने[वाले] रामने वैरीके नाशके लिये गम्भीर ध्वनिवाले अन्य बडे धनुष्को स[ज्य] किया। जो विशाल वैष्णव धनुष् महर्षि (अगस्त्य)ने दिया था, [उस] श्रेष्ठ धनुष्को उठाकर खरके ऊपर दौडे। फिर कोमल पर्व और सोनेके मुख जिनके ऐसे बाणोंसे क्रोधित हुए रामने युद्धमें खरकी ध्वजा [काट] डाली। वह सुन्दर अनेक स्थलोंमें टूटी हुई सोनेकी ध्वजा पृथ्वीपर [इस] तरह गिर पडी जैसे देवताओंके शापसे सूर्य गिरे। (१५-२३)

मर्मोंके जाननेवाले क्रुद्ध हुए खरने शरीरमें रामको चार बा[णोंसे] युद्धके बीच घायल कर दिया जैसे कि अंकुशोंसे हाथिको घायल [कर] दिया जाय। खरके धनुष्से निकले हुए बहुत बाणोंसे वेधे हुए तथा [रक्त]से भीगे हुए राम अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ और

मुमोच परमेष्वासः षट् शरानभिलक्षितान् २६
शिरस्येकेन बाणेन द्वाभ्यां बाह्वोरथार्पयत् ।
त्रिभिश्चन्द्रार्धवक्त्रैश्च वक्षस्यभिजघान ह २७
ततः पश्चान्महातेजा नाराचान्भास्करोपमान् ।
जघान राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् २८
रथस्य युगमेकेन चतुर्भिः शबलान्हयान् ।
षष्ठेन च शिरः संख्ये चिच्छेद खरसारथेः २९
त्रिभिस्त्रिवेणून्बलवान्द्वाभ्यामक्षं महाबलः ।
द्वादशेन तु बाणेन खरस्य सशरं धनुः ३०
छित्त्वा वज्रनिकाशेन राघवः प्रहसन्निव ।
त्रयोदशेनेन्द्रसमो बिभेद समरे खरम् ३१
प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा ३२
तत्कर्म रामस्य महारथस्य समेत्य देवाश्च महर्षयश्च ।
अपूजयन्प्राञ्जलयः प्रहृष्टास्तदा विमानाग्रगताः समेताः ३३
इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥२८॥ [९०२]

धनुषवाले रामने संग्रामके लिये धनुषको उठाकर प्रसिद्ध छः बाणोंको छोडा। शिरमें एक बाणसे और दोसे बाहुओंमें तथा आधे चन्द्रमाके समान हैं मुंह जिनके ऐसे तीन बाणोंसे हृदयमें वेधा। तदनन्तर क्रोधयुक्त महातेजस्वी रामने कुपित हो शिलापर घिसे हुए और सूर्यसमान तेजस्वी तेरह नाराच बाणोंसे राक्षसको विद्ध किया। (२४–२८)

फिर एक बाणसे खरके युगको, चार बाणोंसे चारों घोडोंको, छठेसे खरके रथ हांकनेवालेके सिरको, तीनसे त्रिवेणुको, दोसे पहियाकी नाभिको, और बारहवेंसे खरके बाणसमेत धनुषको समरमें काटकर वज्र समान तेरहवें बाणसे वक्षःस्थलमें खरको भेद दिया। तब टूटे धनुषवाला, विरथ, हताश्व और हतसारथि खर गदा हाथमें लिये उछल कर भूमिपर खडा हो गया। उस समय हाथ जोडे प्रसन्नचित्त, विमानोंके अग्रभागपर बैठे,

एकोनत्रिंशः सर्गः ।

खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम् ।
मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत् १
गजाश्वरथसंबाधे बले महति तिष्ठता ।
कृतं ते दारुणं कर्म सर्वलोकजुगुप्सितम् २
उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् ।
त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ३
कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर ।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ४
लोभात्पापानि कुर्वाणः कामाद्वा यो न बुध्यते ।
हृष्टः पश्यति तस्यान्तं ब्राह्मणी करकादिव ५
वसतो दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः ।
किं नु हत्वा महाभागान्फलं प्राप्स्यसि राक्षस ६
न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः ।

आये हुए देव तथा महर्षि एकत्रित हो महारथी रामके उस क… स्तुति करने लगे । (२९–३३)

यहाँ २८ वां सर्ग समाप्त हुआ ॥२८॥

महातेजस्वी राम गदा हाथमें लिये, रथरहित खडे हुए … न्यायपूर्वक कठोर वाक्य बोले– 'हाथी, घोडा और रथोंसे भरी हुई सेनामें स्थित हुए तुमने सब लोकोंमें निन्दित दारुण कार्य किया… प्राणियोंको भयभीत करनेवाला, दुष्ट और पापी मनुष्य तीनों लो… स्वामी हो तब भी जीवित नहीं रह सकता । रे राक्षस ! लोकविरुद्ध… करते हुए मनुष्यके पास आये हुए दुष्ट सर्पके समान सब मनुष्य … हैं । लोभ वा कामसे पाप करता हुआ जो मनुष्य नहीं चेतता है, … ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होकर उसके फल दुःखको भोगता है, जैसे रक्तपु… नामक कीडी ओलोंसे । रे राक्षस ! दण्डकारण्यमें वसते हुए धर्म… महाभाग तपस्वियोंको मारकर क्या फल पावेगा ? क्रूर, लोकोंमें नि…

ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ७
अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः ।
घोरं पर्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम् ८
न चिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम् ।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ९
पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम् ।
अहमासादितो राज्ञा प्राणान्हन्तुं निशाचर १०
अद्य भित्त्वा मया मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः ।
विदार्यापि पतिष्यन्ति वल्मीकमिव पन्नगाः ११
ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः ।
तानद्य निहतः संख्ये ससैन्योऽनुगमिष्यसि १२
अद्य त्वां निहतं बाणैः पश्यन्तु परमर्षयः ।
निरयस्थं विमानस्था ये त्वया निहताः पुरा १३
प्रहरस्व यथाकामं कुरु यत्नं कुलाधम ।
अद्य ते पातयिष्यामि शिरस्तालफलं यथा १४

था पापी मनुष्य ऐश्वर्य पाकर बहुत समयतक नहीं रह सकते जैसे जड़ कटे हुए वृक्ष नहीं रह सकते । (१-७)

'समय आनेपर मनुष्य अवश्य पापकर्मका घोर फल पाता है जैसे वृक्ष फसल आनेपर ऋतुके योग्य पुष्पोंको पाते हैं । रे निशाचर ! संसारमें पापकर्मोंका फल विषसमेत खाये हुए अन्नोंके सदृश थोड़ेही कालमें मिल जाता है । हे राक्षस ! संसारके अप्रियकी इच्छा करते घोर पाप करते ओंके प्राण हरनेको राजाने मुझे यहां भेजा है । मुझसे छोड़े गये सोनेके भूषणवाले बाण आजही तेरे शरीरको विदीर्ण कर घुसेंगे जैसे कि वल्मीक (वामी) में सर्प घुसते हैं । जो तूने दण्डकारण्यमें धर्मात्मा खाये , आज सेनासमेत संग्राममें मरा हुआ तू उन्हींके पीछे जावेगा । नरकके समान दुःखको भोगते हुए बाणोंसे गिरे तुझे जिनकी तूने पहिले हिंसा की है वे महर्षि विमानपर स्थित हुए आज देखें । हे नीच ! तू यत्न कर

एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः।
प्रत्युवाच ततो रामं प्रहसन्क्रोधमूर्च्छितः १५
प्राकृतान्राक्षसान्हत्वा युद्धे दशरथात्मज।
आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि १६
विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः।
कथयन्ति न ते किञ्चित्तेजसा चातिगर्विताः १७
प्राकृतास्त्वकृतात्मानो लोके क्षत्रियपांसनाः।
निरर्थकं विकत्थन्ते यथा राम विकत्थसे १८
कुलं व्यपदिशन्वीरः समरे कोऽभिधास्यति।
मृत्युकाले तु संप्राप्ते स्वयमप्रस्तवे स्तवम् १९
सर्वथा तु लघुत्वं ते कत्थनेन विदर्शितम्।
सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तेनेव कुशाग्निना २०
न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम्।
धराधरमिवाकम्प्यं पर्वतं धातुभिश्चितम् २१

और इच्छानुकूल प्रहार कर, मैं आज तेरे शिरको तालफलके समान ... दूंगा।' (८–१४)

रामके ऐसा कहनेपर लाल नेत्रवाले क्रोधसे मूर्च्छित खरने ... रामको जबाब दिया। 'हे दशरथके पुत्र! क्षुद्र राक्षसोंको युद्धमें मा... अप्रशंसनीय आत्माको अपने आप क्यों प्रशंसित करते हो? जो ... पराक्रमी वा बलवान् होते हैं वे अपने तेजसेही गर्वित हुए वाणीसे भी बखान नहीं करते। हे राम! धीरतारहित क्षुद्र अधन क्षत्रिय ... योजन शेखी मारा करते हैं जैसे कि तुम शेखी मारते हो। अप... महाकुलमें उत्पन्न होना प्रकट करता हुआ कौन वीर युद्धमें मृत्युके प्राप्त होनेपर अनवसरमें अपने आप [अपनी] स्तुति करेगा! सु... सदृश तची हुई कुशोंकी अग्निकी तरह तुम्हारी शेखीने तुम्हारा हल... बिलकुल दिखा दिया। तुम धातुओंसे बने हुए पर्वतके समान अकम्प... तथा गदा धारण किये यहां ठहरे हुए मुझे नहीं देखते, अतएव स्व...

पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान्रणे तव ।
त्रयाणामपि लोकानां पाशहस्त इवान्तकः २२
कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि न त्वहम् ।
अस्तं प्राप्नोति सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत् २३
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां हतानि ते ।
तद्विनाशात्करोम्यद्य तेषामश्रुप्रमार्जनम् २४
इत्युक्त्वा परमक्रुद्धः स गदां परमाङ्गदाम् ।
खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा २५
खरबाहुप्रमुक्ता सा प्रदीप्ता महती गदा ।
भस्म वृक्षांश्च गुल्मांश्च कृत्वाऽगात्तत्समीपतः २६
तामापतन्तीं महतीं मृत्युपाशोपमां गदाम् ।
अन्तरिक्षगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः २७
सा विशीर्णा शरैर्भिन्ना पपात धरणीतले ।
गदा मन्त्रौषधिबलैर्व्यालीव विनिपातिता २८

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥२९॥ [९३०]

करते हो। (१५-२१)

'गदा हाथमें लिये हुए मैं संग्राममें तुम्हारे प्राण हरनेको समर्थ हूं, जैसे कि तीनों लोकोंके प्राण हरनेको पाशहस्त यमराज समर्थ हैं। यद्यपि तुम्हारे आगे मुझे बहुत कुछ कहना है तथापि मैं नहीं कहूंगा, क्योंकि यदि सूर्य अस्त हो जायगा तो युद्धमें विघ्न होगा। तुमने राक्षसोंकी चौदह हजार सख्या मारी है, मैं तुम्हारा नाश करके उनके दुःखसे आये हुए अपने आंसुओंको पोंछूंगा।' ऐसा कहकर बडे अङ्गदवाले (दृढ बाहुओं-वाले), परम क्रुद्ध हुए खरने उस गदाको रामके ऊपर जलते हुए वज्रके समान फेंका। खरकी बाहुसे छूटी, जलती हुई वह बडी गदा वृक्षों और गुल्मोंको भस्म करती हुई उसके समीपसे चली। जलती तथा यमराजकी फांसीके सदृश गिरती हुई आकाशमें प्राप्त हुई उस गदाको रामने बाणोंसे बहुत जगह काट दिया। वह टूटी तथा बाणोंसे कटी हुई गदा भूमिपर

त्रिंशः सर्गः ।

भित्त्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः ।
स्मयमान इदं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत् १
एतत्ते बलसर्वस्वं दर्शितं राक्षसाधम ।
शक्तिहीनतरो मत्तो वृथा त्वमुपगर्जसि २
एषा बाणविनिर्भिन्ना गदा भूमितलं गता ।
अभिधानप्रगल्भस्य तव प्रत्ययघातिनी ३
यत्त्वयोक्तं विनष्टानामिदमश्रुप्रमार्जनम् ।
राक्षसानां करोमीति मिथ्या तदपि ते वचः ४
नीचस्य क्षुद्रशीलस्य मिथ्यावृत्तस्य रक्षसः ।
प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतं यथा ५
अद्य ते भिन्नकण्ठस्य फेनबुद्बुदभूषितम् ।
विदारितस्य मद्बाणैर्मही पास्यति शोणितम् ६
पांसुरूषितसर्वाङ्गः स्रस्तन्यस्तभुजद्वयः ।
स्वप्स्यसे गां समाश्लिष्य दुर्लभां प्रमदामिव ७

गिर पडी जैसे मन्त्र और औषधिके बलसे सर्पिणी गिरे । (२२-२८)

यहाँ २९ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२९॥

धर्मप्रेमी मुसकराते हुए राम बाणोंसे उस गदाको काट करके खरसे यह वाक्य बोले–" रे नीच राक्षस ! यह तूने अपना समस्त दिखा दिया ! मुझसे अत्यन्त शक्तिहीन तू वृथा गर्जता है । तुझ बक की यह शत्रुओंका प्रतिघात करनेवाली गदा बाणोंसे कटी हुई भू गिर पडी । जो तूने कहा था कि मरे हुए ' राक्षसोंके शोकजनित पोछूंगा ' यह भी तेरा वचन मिथ्या ही हुआ । क्षुद्र स्वभाववाले तथा बोलनेवाले तुझ नीच राक्षसके मैं प्राण हरूंगा, जैसे कि गरुडने अमृ हरा था । कटे हुए कण्ठवाले तथा मेरे बाणोंसे विदीर्ण किये हुए तेरे और बबूलोंसे भूषित लोहूको आज पृथ्वी पीयेगी । धूलिमें लिपट ग समस्त अङ्ग जिसका और नीचे गिरी हैं पृथ्वीपर दोनों भुजाएँ जि

प्रवृद्धनिद्रे शयिते त्वयि राक्षसपांसने ।
भविष्यन्ति शरण्यानां शरण्या दण्डका इमे ८
जनस्थाने हतस्थाने तव राक्षस मच्छरैः ।
निर्भया विचरिष्यन्ति सर्वतो मुनयो वने ९
अद्य विप्रसरिष्यन्ति राक्षस्यो हतबान्धवाः ।
बाष्पार्द्रवदना दीना भयादन्यभयावहाः १०
अद्य शोकरसज्ञास्ता भविष्यन्ति निरर्थिकाः ।
अनुरूपकुलाः पत्न्यो यासां त्वं पतिरीदृशः ११
नृशंसशील क्षुद्रात्मन्नित्यं ब्राह्मणकण्टक ।
त्वत्कृते शङ्कितैरग्नौ मुनिभिः प्राप्यते हविः १२
तमेवमभिसंरब्धं ब्रुवाणं राघवं वने ।
खरो निर्भर्त्सयामास रोषात्खरतरस्वरः १३
दृढं खल्ववलिप्तोऽसि भयेष्वपि च निर्भयः ।
वाच्यावाच्यं ततो हि त्वं मृत्योर्वश्यो न बुध्यसे १४

ऐसा तू भूमिसे चिपट कर सोवेगा, जैसे कि कोई दुर्लभ स्त्रीको पाकर सोवे। (१-७)

"तुझ नीच राक्षसके लम्बी नींद सोनेपर ये दण्डक वन अशरण्योंके शरण देनेवाले हो जायँगे। रे राक्षस ! मेरे बाणोंसे जनस्थानमें तेरा स्थान हत हो जानेपर मुनि लोग वनमें सब ओर निर्भय होकर विचरेंगे। भयसे औरोंको भी भय जतानेवाली, दीन, हतबांधव तथा आंसुओंसे भीगे हैं मुंह जिनके ऐसी राक्षसी आज भाग जायँगीं। जिनका तू ऐसा पापी पति है ऐसी तेरे सदृश कुलवाली स्त्रियाँ आज निरर्थक शोकरसको जानेंगीं। हे घातक ! हे नीच ! क्षुद्रात्मन् ! नित्यही ब्राह्मणोंके कण्टक ! तेरे कारणही मुनिगण तेरे भयसे शङ्कितमना हो अग्निमें हवि डालते हैं।" (८-१२)

इस तरह संग्राममें क्रोधयुक्त वाक्य कहते हुए रामको क्रोधसे अत्यन्त कठोर हो गया है शब्द जिसका ऐसा खर डर-पाने लगा– "निश्चय

कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये ।
कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः १५
एवमुक्त्वा ततो रामं संरुध्य भ्रुकुटिं ततः ।
स ददर्श महासालमविदूरे निशाचरः १६
रणे प्रहरणस्यार्थे सर्वतो ह्यवलोकयन् ।
स तमुत्पाटयामास संदष्टदशनच्छदम् १७
तं समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां विनर्दित्वा महाबलः ।
राममुद्दिश्य चिक्षेप हतस्त्वमिति चाब्रवीत् १८
तमापतन्तं बाणौघैश्छित्त्वा रामः प्रतापवान् ।
रोषमाहारयत्तीव्रं निहन्तुं समरे खरम् १९
जातस्वेदस्ततो रामो रोषरक्तान्तलोचनः ।
निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम् २०
तस्य बाणान्तराद्रक्तं बहु सुस्राव फेनिलम् ।
गिरेः प्रस्रवणस्येव धाराणां च परिस्रवः २१

ही तुम अभिमानी हो और भयके काममें भी निर्भय हो, इसीसे तुम मृत्यु के वशमें होकर कहने और न कहनेयोग्य बातको नहीं समझते। जो पुरुष कालकी फांसीमें बंधे हुए होते हैं वे छहों इन्द्रियोंके व्यापार होनेसे कार्य और अकार्यको नहीं जानते।" ऐसा रामसे कहकर उस निशाचरने फिर भौंह चढाकर संग्राममें हथियारके लिये चारों ओर देखकर पासमें ही एक बडे सालवृक्षको देखा। उसने होठोंको दांतोंसे दबाकर उस वृक्षको उखाड डाला। उस महाबली खरने रामको लक्ष्य करके दोनों भुजाओंसे वृक्ष उठा रामकी ओर फेंका और 'लो तुम मारे गये' ऐसा कहा। प्रतापी रामने गिरते हुए उस वृक्षको बाणोंके समूहसे काटकर संग्राममें खरके मारनेको तीव्र क्रोध धारण किया। रोषसे उत्पन्न हुआ है पसीना जिनको तथा लाल हो गये हैं नेत्रोंके कोने जिनके ऐसे रामने, हजार बाणोंसे संग्राममें खरको वेध डाला। (१३-२०)

बाणों द्वारा किये हुए छेदोंसे उस खरके शरीरमेंसे फेनवाला बहुत

विकलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे ।
मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद् द्रुतम् २२
तमातपन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम् ।
अपासर्पद् द्वित्रिपदं किंचित्त्वरितविक्रमः २३
ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम् ।
खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् २४
स तद्दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता ।
संदधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति २५
स विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वन ।
रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत् २६
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना ।
रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्धकः २७
स वृत्र इव वज्रेण फेनेन नमुचिर्यथा ।
बलो वेन्द्राशनिहतो निपपात हतः खरः २८

लोहू निकलने लगा जैसे प्रस्रवण नामक पहाडसे जलकी धाराएँ बहती हैं । रामने खरको बाणोंसे संग्राममें विकल कर दिया और लोहूकी गन्धसे मतवाल होकर जल्दी वह रामके ऊपर दौडा । अस्त्रधारी शीघ्र पराक्रमवाले राम लोहूमें भीगे हुए उस क्रांत राक्षसको अपने ऊपर आता देख जल्दी-से कुछ पैर पीछे हट गये । तदनन्तर रामने युद्धमें खरके मारनेके लिये दूसरे ब्रह्मदण्डके समान अग्नितुल्य दीप्त बाणको ग्रहण किया । बुद्धिमान् देवताओंके राजा इन्द्रने जो बाण रामको दिया था, धर्मात्मा रामने उसीको धनुषपर चढाया और खरके ऊपर छोडा । मेघके समान है शब्द जिसका ऐसा वह महाबाण रामके द्वारा धनुष् खींचकर छोडा हुआ खरके हृदयपर जा लगा । राक्षस खर बाणकी अग्निसे जलकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे श्वेत वनमें रुद्रसे जलाया गया अन्धक दैत्य गिरा था । वज्रसे वृत्रासुर और फेनसे नमुचि और इन्द्राशनिसे बल जैसे गिरा था, उसी प्रकार खर रामके बाणसे गिर गया । (२१–२८)

एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः ।
दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः २९
रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा ।
अर्धाधिकमुहूर्तेन रामेण निशितैः शरैः ३०
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम् ।
खरदूषणमुख्यानां निहतानि महामृधे ३१
अहो बत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः ।
अहो वीर्यमहो दार्ढ्यं विष्णोरिव हि दृश्यते ३२
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे ययुर्देवा यथागतम् ३३
ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः ।
सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन् ३४
एतदर्थं महातेजा महेन्द्रः पाकशासनः ।
शरभङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरंदरः ३५
आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ।
एषां वधार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम् ३६
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ।

तब इसी अन्तरमें विस्मित और प्रसन्न हुए देवता चारणों स[...] एकत्र हो दुन्दुभि बजाते हुए चारों ओरसे रामके ऊपर पुष्पोंकी [...] करने लगे और कहने लगे— 'तीन घडीमेंही रामने पैनें बाणोंसे [...] और दूषण हैं सेनापति जिनके ऐसे भयानक कर्म करनेवाले चौदह [...] राक्षस रणमें मार डाले। अहो! आत्मज्ञ रामका यह बडा कर्म है। [...] यह पराक्रम! धन्य यह कौशल! यह तो विष्णुके समान दीखता [...] ऐसा कहकर वे सब देवता जैसे आये थे वैसेही चले गये। तद[...] समस्त राजर्षि और ब्रह्मर्षि एकत्रित हो पूजाकर प्रसन्न हुए, रामसे [...] वचन बोले– 'इसीके वधके लिये पाक दैत्यके मारनेवाले महेन्द्र [...] ऋषिके पवित्र आश्रमपर आये थे। पापकर्मी क्रूर इन राक्षसोंके [...] लियेही तुमको महर्षिगण बडे उपायसे वहां लाये। हे दशरथके पु[...]

स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः ३७
एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया।
गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमे सुखी ३८
ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः।
प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिपूजितः ३९
तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे ४०
मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान्हतान्।
रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ४१
ततस्तु तं राक्षससङ्घमर्दनं संपूज्यमानं मुदितैर्महात्मभिः।
पुनः परिष्वज्य मुदान्वितानना बभूव हृष्टा जनकात्मजा तदा ४२

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिंशः सर्गः॥३०॥ [९७२]

एकत्रिंशः सर्गः।

त्वरमाणस्ततो गत्वा जनस्थानादकम्पनः।
प्रविश्य लङ्कां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत् १

राम ! सो यह आपने हमारा कार्य कर दिया, सो सब महर्षिगण सुखपूर्वक दण्डकारण्यमें धर्माचरण करेंगे।' (२९-३७)

इसी अवसरमें लक्ष्मण सीताजी समेत पर्वतके दुर्गसे निकलकर आश्रममें सुखपूर्वक प्रविष्ट हुए। तदनन्तर महर्षियोंसे तथा लक्ष्मणसे पूजित वीर विजयी राम आश्रममें प्रविष्ट हुए। शत्रुओंके मारनेवाले और महर्षियोंको सुख देनेवाले रामको देखकर सीता प्रसन्न हो गईं और पतिका आलिङ्गन किया। राक्षसोंके समूहको मरा हुआ देख और रामको पीडारहित देखकर बडे आनन्दचित्त होकर जनकपुत्री सीता प्रसन्न होगईं। तदनन्तर राक्षसोंके समूहको मारनेवाले और मुदित महर्षियोंसे पूजे गये ऐसे अपने पति रामको फिरसे भेंटकर चन्द्रमाके समान मुखवाली सीता प्रसन्न हो गईं। (३८-४२)

यहाँ ३० वाँ सर्ग समाप्त हुआ॥३०॥

जनस्थानस्थिता राजन्राक्षसा बहवो हताः ।
खरश्च निहतः संख्ये कथंचिदहमागतः २
एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ।
अकम्पनमुवाचेदं निर्दहन्निव तेजसा ३
केन भीमं जनस्थानं हतं मम परासुना ।
को हि सर्वेषु लोकेषु गतिं नाधिगमिष्यति ४
न हि मे विप्रियं कृत्वा शक्यं मघवता सुखम् ।
प्राप्तुं वैश्रवणेनापि न यमेन च विष्णुना ५
कालस्य चाप्यहं कालो दहेयमपि पावकम् ।
मृत्युं मरणधर्मेण संयोजयितुमुत्सहे ६
वातस्य तरसा वेगं निहन्तुमपि चोत्सहे ।
दहेयमपि संक्रुद्धस्तेजसाऽऽदित्यपावकौ ७
तथा क्रुद्धं दशग्रीवं कृताञ्जलिरकम्पनः ।
भयात्संदिग्धया वाचा रावणं याचतेऽभयम् ८
दशग्रीवोऽभयं तस्मै प्रददौ रक्षसां वरः ।

इसके अनन्तर अकम्पन नामक रावणका दूत, जो शेष रह गया था, जनस्थानसे जल्दी जाकर लङ्कामें वेगपूर्वक घुसकर रावणसे वाक्य बोला, "हे राजन् ! जनस्थाननिवासी बहुतसे राक्षस और खर भी युद्धमें मारा गया है, किसी तरह मैं यहां आया हूं ।" ऐसा कहनेपर क्रोधित तथा लाल नेत्रवाले रावणने मानों आंखोंसे अग्नि छोडते हुए अकम्पनसे कहा "किस मरनेवालेने मेरा रमणीय जनस्थान नष्ट किया है? कौन सब लोकमें मृत्युस्थानको न पावेगा ? मेरा विप्रिय करके न इन्द्र, न कुबेर, न यम और न विष्णु सुख प्राप्त कर सकता है । कालका भी मैं काल हूं और अग्निको भी मैं जला सकता हूं और मृत्युको भी मारनेका उत्साह रखता हूं। क्रोधित हुआ मैं अपने तेजसे सूर्य-चन्द्रको भी जला सकता हूं और अपने वेगसे पवनका भी वेग रोक सकता हूं ।" (१–७)

इस प्रकार क्रुद्ध हुए रावणके हाथ जोडकर अकम्पन राक्षस भय

स विस्रब्धोऽब्रवीद्वाक्यमसंदिग्धमकम्पनः ९
पुत्रो दशरथस्यास्ते सिंहसंहननो युवा ।
रामो नाम महास्कन्धो वृत्तायतमहाभुजः १०
श्यामः पृथुयशाः श्रीमानतुल्यबलविक्रमः ।
हतस्तेन जनस्थाने खरश्च सहदूषणः ११
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
नागेन्द्र इव निःश्वस्य इदं वचनमब्रवीत् १२
स सुरेन्द्रेण संयुक्तो रामः सर्वामरैः सह ।
उपयातो जनस्थानं ब्रूहि कच्चिदकम्पन १३
रावणस्य पुनर्वाक्यं निशम्य तदकम्पनः ।
आचचक्षे बलं तस्य विक्रमं च महात्मनः १४
रामो नाम महातेजाः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ।
दिव्यास्त्रगुणसंपन्नः पुरं धर्मं गतो युधि १५
तस्यानुरूपो बलवान्रक्ताक्षो दुन्दुभिस्वनः ।
कनीयाँल्लक्ष्मणो भ्राता राकाशशिनिभाननः १६

गद्गद्वाणी हो रावणसे अभय मांगने लगा। राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावणने उसको अभयदान दिया; तब स्वस्थचित्त होकर अकम्पनने स्पष्ट वार्ता कही- "श्रेष्ठरूपयुक्त, बैलके समान कन्धावाले, गोल तथा लम्बी भुजावाले, जवान, दशरथके पुत्र राम हैं। वीर, अधिक यशवाले, शोभायमान तथा अतुल पराक्रमी हैं, उन्होंने दूषणसहित खरको मारा और जनस्थानका नाश किया है।" अकम्पनका वचन सुनकर राक्षसोंका स्वामी रावण सर्पराजके समान सांस लेकर यह वचन बोला- "हे अकम्पन ! यह बता कि क्या सम्पूर्ण देवता और इन्द्रके साथ राम जनस्थानमें आये हैं ?" (८-१३)

रावणका फिर वचन सुनकर अकम्पन रामचन्द्रका विक्रम और बल सुनाने लगा- "बडे तेजस्वी, सब धनुष्धारियोंमें श्रेष्ठ देवताओंके अस्त्र और गुणोंसे युक्त और युद्धमें परम प्रवीण वह राम हैं। उन्हींके समान,

स तेन सह संयुक्तः पावकेनानिलो यथा।
श्रीमान्राजवरस्तेन जनस्थानं निपातितम् १७
नैव देवा महात्मानो नात्र कार्या विचारणा।
शरा रामेण तूत्सृष्टा रुक्मपुङ्खा पतत्रिणः १८
सर्पाः पञ्चानना भूत्वा भक्षयन्ति स्म राक्षसान्।
येन येन च गच्छन्ति राक्षसा भयकर्षिताः १९
तेन तेन स्म पश्यन्ति राममेवाग्रतः स्थितम्।
इत्थं विनाशितं तेन जनस्थानं तवानघ २०
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
गमिष्यामि जनस्थानं रामं हन्तुं सलक्ष्मणम् २१
अथैवमुक्ते वचने प्रोवाचेदमकम्पनः।
शृणु राजन्यथावृत्तं रामस्य बलपौरुषम् २२
असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः।
आपगायास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः २३

लाल नेत्रवाले, नगाडेके समान गम्भीर शब्दवाले, चन्द्रमाके सदृश ... वाले, बलवान्, उन्हींके छोटे भाई लक्ष्मण हैं। वह उनके साथ हैं ... अग्निके साथ वायु हो। वे श्रीमान् श्रेष्ठ राजा हैं, उन्होंने जनस्थान... नाश किया है। बडी आत्मावाले देवता सहायके लिये नहीं आये ... इसकी चिन्ता न करो। सोनेकी पुंखवाले रामसे छोडे गये वाण पञ्च... बडे मुख वाले सर्प होकर राक्षसोंको खाते थे। भयसे राक्षस जिस जिस मार्ग होकर जाते थे, उसी उसीमें सामने खडे हुए रामको देखते थे ... पापरहित! इस प्रकार उस रामने आपका जनस्थान नष्ट कर दिया ... (१४–२०)

अकम्पनका वचन सुनकर रावण बोला—"मैं लक्ष्मणसमेत राम... मारनेके वास्ते जनस्थानको जाऊंगा।" ऐसा कहनेपर अकम्पन यह बोला— "हे राजन्! रामका जैसा बल और पुरुषार्थ है, उसे सुनो। बलसे ... महायशस्वी राम कुपित होकर भरी हुई नदीके वेगको भी वाणोंसे ...

सताराग्रहनक्षत्रं नभश्चाप्यवसादयेत् ।
असौ रामस्तु सीदन्तीं श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् २४
भित्त्वा वेलां समुद्रस्य लोकानाप्लावयेद्विभुः ।
वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः २५
संहृत्य वा पुनर्लोकान्विक्रमेण महायशाः ।
शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः २६
नहि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया ।
रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव २७
न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि ।
अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु २८
भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा ।
श्यामा समविभक्ताङ्गी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता २९
नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा न च पन्नगी ।
तुल्या सीमन्तिनी तस्य मानुषी तु कुतो भवेत् ३०
तस्यापहर भार्यां त्वं तं प्रमथ्य महावने ।

सकते हैं। तारा, नक्षत्र, ग्रह समेत आकाशको भी खण्डित कर सकते हैं और यही राम समुद्रमें डूबती हुई भूमिका उद्धार कर सकते हैं। समुद्रकी बाढको तोडकर लोकोंको डुबा सकते हैं और बाणोंसे समुद्रके वेग और वायुको भी रोक सकते हैं। पुरुषश्रेष्ठ, महायशस्वी राम लोक और प्रजाओंको नाश करके फिर भी रच सकते हैं। हे रावण! रामको तुम संग्राममें राक्षसोंके समूहसे भी नहीं जीत सकते, जैसे स्वर्गको पापी नहीं जीत सकते। सब देवता और दैत्य उन्हें मार सकते हैं, यह बात मैं नहीं जानता। हां, उनके मारनेका एक उपाय है, उसको एकान्तचित्त हो मुझसे सुनो। उसकी भार्या लोकमें सर्वोत्तम, सीता नामवाली, अच्छी कमरवाली, पूर्ण युवती, सुडौल अङ्गवाली, स्त्रियोंमें रत्न और रत्नोंसे भूषित ऐसी है। उसके समान स्त्री न कोई देवी, न गंधर्वी, न अप्सरा और न कोई दानवी है, फिर मानुषियोंमें तो कोई कब हो सकती है? बडे वनमें

सीतया रहितो रामो न चैव हि भविष्यति ३१
अरोचयत तद्वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
चिन्तयित्वा महाबाहुरकम्पनमुवाच ह ३२
बाढं कल्यं गमिष्यामि एकः सारथिना सह ।
आनेष्यामि च वैदेहीमिमां हृष्टो महापुरीम् ३३
तदेवमुक्त्वा प्रययौ खरयुक्तेन रावणः ।
रथेनादित्यवर्णेन दिशः सर्वाः प्रकाशयन् ३४
स रथो राक्षसेन्द्रस्य नक्षत्रपथगो महान् ।
चञ्चूर्यमाणः शुशुभे जलदे चन्द्रमा इव ३५
स दूरं चाश्रमं गत्वा ताटकेयमुपागमत् ।
मारीचेनार्चितो राजा भक्ष्योभोज्यैरमानुषैः ३६
तं स्वयं पूजयित्वा तु आसनेनोदकेन च ।
अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ३७
कच्चित्सुकुशलं राजँल्लोकानां राक्षसाधिप ।
आशङ्के नाधिजाने त्वं यतस्तूर्णमुपागतः ३८

रामको घुमाकर उनकी स्त्रीको तुम हरो, सीतासे रहित कामी राम जी[वन]को छोड देंगे ।" (२१–३१)

राक्षसोंका स्वामी रावण विचारके उसके वाक्यको मान गया [और] अकम्पनसे बोला — "अच्छा, कल मैं अकेला सारथिके साथ जा[ऊंगा] और प्रसन्न होकर इस नगरीमें सीताको लाऊंगा।" ऐसा कहकर अ[श्व] घोडे जिसमें लगे हैं ऐसे सूर्यके समान वर्णवाले रथमें बैठकर सब दिशा[ओं]को प्रकाशित करता हुआ रावण चला। आकाशमें चलता हुआ वह रा[क्ष]सेन्द्रका रथ इस प्रकार शोभा देने लगा जैसे बादलमें चन्द्रमा। रा[वण] मारीचके आश्रममें पहुंचकर ताटकाके पुत्र मारीचसे मिला। मारी[च]ने राजा रावणका सत्कार ऐसी खाने पीनेकी सामग्रियोंसे किया जो मनु[ष्यों]को नहीं मिल सकतीं। उसको स्वयं आसन और जलसे पूजकर प्रयो[जन] युक्त वाणीसे मारीच बोला–"हे राजन्! हे राक्षसेश्वर! राक्षसोंकी कु[शल]

एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः ।
ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ३९
आरक्षो मे हतस्तात रामेणाक्लिष्टकारिणा ।
जनस्थानमवध्यं तत्सर्वं युधि निपातितम् ४०
तस्य मे कुरु साचिव्यं तस्य भार्याऽपहारणे ।
राक्षसेन्द्रवचः श्रुत्वा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ४१
आख्याता केन वा सीता मित्ररूपेण शत्रुणा ।
त्वया राक्षसशार्दूल को न नन्दति नन्दितः ४२
सीतामिहानयस्वेति को ब्रवीति ब्रवीहि मे ।
रक्षोलोकस्य सर्वस्य कः शृङ्गं छेत्तुमिच्छति ४३
प्रोत्साहयति यश्च त्वां स च शत्रुरसंशयम् ।
आशीविषमुखाद्दंष्ट्रामुद्धर्तुं चेच्छति त्वया ४४
कर्मणाऽनेन केनासि कापथं प्रतिपादितः ।
सुखसुप्तस्य ते राजन्प्रहृतं केन मूर्धनि ४५
विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्ततेजोमदः संस्थितदोर्विषाणः ।

है ? आप जल्दीसे यहां आये हैं इससे मैं आशङ्का करता हूं, पर शेष नहीं जानता ।" इस प्रकार जब मारीचसे कहा गया, महातेजस्वी, क्यमें चतुर, रावण बोला–'रामने मेरे जनस्थानवासी राक्षसोंको मार ला और अवध्य समस्त जनस्थान युद्धमें नष्ट कर दिया, उस रामकी हरनेमें मेरी सहायता करो ।" (३२–४१)

राक्षसेन्द्रका वचन सुनकर मारीच बोला– "किस मित्ररूपी वैरीने ता बताई है ? हे राक्षसश्रेष्ठ ! निन्दित कौन मनुष्य तुझसे प्रसन्न नहीं मुझे बताओ तो सही । 'सीताको यहां ले आओ' यह किसने कहा है ? मस्त राक्षसोंके सर्दार तुमको कौन काटना चाहता है ? इसमें संदेह नहीं इस कार्यमें जो तुमको उत्साह दिलाता है, वह शत्रु है । बिषैले सांपके मेंसे दंष्ट्रा तुमसे कौन उखडवाता है ? तुम्हें इस कामके लिये किसने मार्गपर चलाया है ? हे राजन् ! सुखसे सोते हुए तुम्हारे माथेमें किसने

उदीक्षितुं रावण नेह युक्तः स संयुगे राघवगन्धहस्ती ४६
असौ रणान्तःस्थितिसंधिवालो विदग्धरक्षोमृगहा नृसिंहः।
सुप्तस्त्वया बोधयितुं न शक्यः शराङ्गपूर्णो निशितासिदंष्ट्रः
चापापहारे भुजवेगपङ्के शरोर्मिमाले सुमहाहवौघे।
न रामपातालमुखेऽतिघोरे प्रस्कन्दितुं राक्षसराज युक्तम्
प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र लङ्कां प्रसन्नो भव साधु गच्छ।
त्वं स्वेषु दारेषु रमस्व नित्यं रामः सभार्यो रमतां वनेषु
एवमुक्तो दशग्रीवो मारीचेन स रावणः।
न्यवर्तत पुरीं लङ्कां विवेश च गृहोत्तमम् ५०

इत्यार्षे श्रीमद्रा॰वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः॥३१॥[

द्वात्रिंशः सर्गः।

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम् १

प्रहार किया है ? श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न होनाही है शुण्डा जिसकी और है नद जिसका, समीचीन संस्थावाली दो भुजा हैं दन्त जिसके, रामचन्द्ररूपी हाथीको संग्राममें देखना तुम्हें योग्य नहीं। रणके भीतर होनाही है लांगूल (पूंछ) जिसकी, चतुर राक्षसरूपी हिरणोंको वाला, बाणरूपी जो नखादि तिनसे पूर्ण, पैनी तलवारही है दाढ ऐसे मनुष्यरूपी सिंह रामको जगाना उचित नहीं। हे राक्षसराज ! हैं ग्राह जिसमें, भुजाओंका वेगही है कींच जिसमें, बाणही हैं जिसमें, बडा संग्रामही है जल जिसमें, ऐसे रामरूपी अत्यन्त घोर में जाना योग्य नहीं। हे लंकेश्वर ! हे राक्षसेन्द्र ! तुम प्रसन्न हो और होकर अच्छी तरह लङ्काको जाओ। तुम हमेशा अपनी स्त्रियोंमें रमो राम अपनी स्त्रीसमेत वनमें रमे।" इस तरह दशशिरवाले रावण मारीचने कहा, तब रावण अपनी नगरीको लौट आया और श्रेष्ठ घुस गया। (४१-५०)

यहाँ ३१ वाँ सर्ग समाप्त हुआ॥३१॥

दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसं रणे।
दृष्ट्वा पुनर्महानादान्ननाद जलदो यथा २
सा दृष्ट्वा कर्म रामस्य कृतमन्यैः सुदुष्करम्।
जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम् ३
सा ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम्।
उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम् ४
आसीनं सूर्यसङ्काशे काञ्चने परमासने।
रुक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम् ५
देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम्।
अजेयं समरे घोरं व्यात्ताननमिवान्तकम् ६
देवासुरविमर्देषु वज्राशनिकृतव्रणम्।
ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ७
विंशद्भुजं दशग्रीवं दर्शनीयपरिच्छदम्।
विशालवक्षसं वीरं राजलक्षणलक्षितम् ८
नद्धवैदूर्यसंकाशं तप्तकाञ्चनभूषणम्।

तदनन्तर भयानक कार्य करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको एक रामसे मारे हुए देखकर दूषण और त्रिशिरा समेत खरको भी मरा देखकर शूर्पणखा मेघके समान बडा शब्द करने लगी। वह शूर्पणखा और लोगोंसे न किया जाय ऐसा रामका कर्म देखकर बडी दुःखी होकर रावणसे पालित लङ्काको गई। उसने मन्त्रियों सहित विमानके अग्र भागमें बैठे हुए तेजोमय रावणको देवताओंसे घिरे इन्द्रके समान देखा। सूर्य-समान सुवर्णके आसनपर बैठे हुए, तेजस्वी रावणको सुवर्ण वेदीको प्राप्त जलती हुई अग्निके समान देखा। (१-५)

जो रावण देव, गन्धर्व आदि प्राणियों तथा महात्मा ऋषियोंसे युद्धमें अजेय, शूर, मुँह फैलाये हुए यमराजके तुल्य देवासुर-संग्राममें वज्राशनि-द्वारा किये हुए घावों सहित, ऐरावतके दांतोंके अग्रभावसे किया गया है चिह्न जिसकी छातीमें, बीस भुजावाला, दश शिरवाला, सुन्दर वस्त्रयुक्त,

सुभुजं शुक्लदशनं महास्यं पर्वतोपमम् ९
विष्णुचक्रनिपातैश्च शतशो देवसंयुगे।
अन्यैः शस्त्रैः प्रहारैश्च महायुद्धेषु ताडितम् १०
आहताङ्गं समस्तैस्तं देवप्रहरणैस्तदा।
अक्षोभ्याणां समुद्राणां क्षोभणं क्षिप्रकारिणम् ११
क्षेप्तारं पर्वताग्राणां सुराणां च प्रमर्दनम्।
उच्छेत्तारं च धर्माणां परदाराभिमर्शनम् १२
सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारं यज्ञविघ्नकरं सदा।
पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् १३
तक्षकस्य प्रियां भार्यां पराजित्य जहार यः।
कैलासं पर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम् १४
विमानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः।
वनं चैत्ररथं दिव्यं नलिनीं नन्दनं वनम् १५
विनाशयति यः क्रोधाद्देवोद्यानानि वीर्यवान्।

विस्तीर्ण छातीवाला, वीर, राजचिह्नोंसे शोभित, कान्तिमय वैदूर्य... भासमान, चमकीले स्वर्णमय भूषणोंवाला, अच्छी भुजाओंवाला, ... दांतोंवाला, बडे मुखवाला,पर्वतसमान, देवोंके संग्राममें अनेक वार ... चक्रके लगनेसे और दूसरे बडे युद्धोंमें अन्य शस्त्रोंकी चोटसे ताडित ... हुआ, सब देवताओंके अस्त्रोंसे जो जख्मी हो चुका है तथा न क्षुब्ध ... होनेवाले समुद्रोंको भी क्षुब्ध करनेवाला, शीघ्र कार्य करनेवाला, ... पर्वतोंको फेंकनेवाला, देवताओंको मर्दन करनेवाला, धर्मोंका उ... करनेवाला, परस्त्रियोंको हरण करनेवाला, समस्त दिव्यास्त्रोंका ... करनेवाला और सदा यज्ञमें विघ्न डालनेवाला है। (९—१२)

भोगवती नगरीमें पहुंच कर वासुकिको हराकर और तक्षकको ... कर उसकी प्रिय पत्नीको जो हर लाया था, कैलासपर्वतपर ... कुबेरको हरा कर इच्छानुसार गमन करनेवाले पुष्पक नामक बिमान... हर लाया था, दिव्य चैत्ररथ वनको, नलिनीको, नन्दनवनको और ...

चन्द्रसूर्यौ महाभागावुत्तिष्ठन्तौ परन्तपौ १६
निवारयति बाहुभ्यां यः शैलशिखरोपमः ।
दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने १७
पुरा स्वयंभुवे धीरः शिरांस्युपजहार यः ।
देवदानवगन्धर्वपिशाचपतगोरगैः १८
अभयं यस्य संग्रामे मृत्युतो मानुषादृते ।
मन्त्रैरभिष्टुतं पुण्यमध्वरेषु द्विजातिभिः १९
हविर्धानेषु यः सोमसुपहन्ति महाबलः ।
प्राप्तयज्ञहरं दुष्टं ब्रह्मघ्नं क्रूरकारिणम् २०
कर्कशं निरनुक्रोशं प्रजानामहिते रतम् ।
रावणं सर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् २१
राक्षसी भ्रातरं क्रूरं सा ददर्श महाबलम् ।
तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्योपशोभितम् २२
आसने सूपविष्टं तं कालेऽकालमिवोद्यतम् ।

ताओंके वनोंको जो पराक्रमी क्रोधसे नाश कर डालता है। पर्वतके खरके समान जो रावण परम तपस्वी, भाग्यशाली तथा उठते हुए सूर्य द्रमाको भी बाहुओंसे लौटा लेता है और दश हजार वर्ष बडे वनमें स्या करके पूर्वकालमें जिस धीरने ब्रह्माको अपने शिर भी चढा दिये थे। ष्यको छोडकर देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी, सर्प, मृत्यु, से संग्राममें जिसे भय नहीं होता। यज्ञोंमें मन्त्रों द्वारा द्विजातियोंसे त, पवित्र सोमको जो महाबली यज्ञशालाओंमें जाकर नष्ट कर देता । (१३–२०)

श्रेष्ठोंके यज्ञको हरनेवाले, क्रूर, ब्राह्मणोंको मारनेवाले, दुराचारी, ोर, निर्दयी, प्रजाओंके अहितमें लगे हुए, सम्पूर्ण प्राणियोंको रुलानेवाले, लोगोंको भय देनेवाले ऐसे रावण नामक शूर, महाबली, अपने ईको उस राक्षसीने देखा। भयसे कम्पित हुई शूर्पणखा दिव्य ाभूषणोंसे अलंकृत, दिव्य मालाओंसे उपशोभित, आसनपर अच्छे

राक्षसेन्द्रं महाभागं पौलस्त्यकुलनन्दनम् २३
उपगम्याब्रवीद्वाक्यं राक्षसी भयविह्वला ।
रावणं शत्रुहन्तारं मन्त्रिभिः परिवारितम् २४
तमब्रवीद्दीप्तविशाललोचनं प्रदर्शयित्वा भयलोभमोहिता ।
सुदारुणं वाक्यमभीतचारिणी महात्मना शूर्पणखा विरूपिता
इत्यार्षे श्रीमद्रा॰ वाल्मी॰ आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥[१०

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ।

ततः शूर्पणखा दीना रावणं लोकरावणम् ।
अमात्यमध्ये संक्रुद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत् १
प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरंकुशः ।
समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे २
सक्तं ग्राम्येषु भोगेषु कामवृत्तं महीपतिम् ।
लुब्धं न बहु मन्यन्ते श्मशानाग्निमिव प्रजाः ३
स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः ।
स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ४

प्रकार बैठे हुए, कालके भी कालके समान उद्यत हुए, बड़े भाग्य पौलस्त्य कुलको आनन्द देनेवाले, शत्रुओंके मारनेवाले, मन्त्रियोंसे राक्षसोंके स्वामी रावणके पास यह वाक्य बोली। विना भयके विचरनेवाली, महात्मा लक्ष्मण से विरूपित, भय और मोहसे मू हुई शूर्पणखा अपने वैरूप्यको दिखा कर दीप्त और विशाल ने रावणसे यह दारुण वाक्य बोली। (२०–२५)

यहाँ ३२ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

तदनन्तर दीन हुई शूर्पणखा संसारको रुलानेवाले रावणसे मन्त्रि बीचमें क्रोधित होकर कठोर वाक्य बोली-"कामभोगोंमें प्रमत्त और स्व निरंकुश हुआ तू जाननेयोग्य उत्पन्न हुए घोर भयको नहीं समझ इन्द्रियोंके भोगोंमें लगे हुए, कामी, लोभी राजाका प्रजा श्मश अग्निके समान बहुत सत्कार नहीं करती। जो राजा समयपर अपने

अयुक्तचारं दुर्दर्शमस्वाधीनं नराधिपम् ।
वर्जयन्ति नरा दूरान्नदीपङ्कमिव द्विपाः ५
ये न रक्षन्ति विषयमस्वाधीनं नराधिपाः ।
ते न वृद्धया प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ६
आत्मवद्भिर्विगृह्य त्वं देवगन्धर्वदानवैः ।
अयुक्तचारश्चपलः कथं राजा भविष्यसि ७
त्वं तु बालस्वभावश्च बुद्धिहीनश्च राक्षस ।
ज्ञातव्यं तं न जानीषे कथं राजा भविष्यसि ८
येषां चाराश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर ।
अस्वाधीनां नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः ९
यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ।
चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः १०
अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्वृतम् ।
स्वजनं च यतः स्थानं निहतं नावबुध्यसे ११
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।

कार्योंको नहीं करता है, वह राज्य और उन कार्योंके साथ नाशको प्राप्त होता है। दुराचारी, दुर्दर्शी, परतन्त्र राजाको मनुष्य दूरसेही छोड देते हैं जैसे हाथी नदीकी कींचडको। जो राजा अस्वाधीन हो अपने राज्यकी रक्षा नहीं करते हैं, वे वृद्धि नहीं पाते जैसे सागरमें पर्वत। प्रयत्नवाले देव, दानव और गन्धर्वोंसे बिगाड करके दुष्ट आचारवाला, चपल तू राजा कैसे रहेगा ? हे राक्षस ! तू बालकके सदृश स्वभाववाला और बुद्धिहीन है, जाननेयोग्य विषयको नहीं जानता सो कैसे राजा रहेगा ? (१-८)

"हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ रावण! जिन राजाओंके दूत, खजाना, नीति अस्वाधीन हैं, वे राजा गांवके मनुष्योंके समान हैं। जिससे कि राजा लोग दूरपर स्थित समस्त कार्योंको चारों-गुप्त दूतोंके द्वारा देखते हैं, इसीसे वे दीर्घ नेत्रवाले कहे जाते हैं। गँवार मन्त्रियोंसे युक्त तुझे मैं अदूरदर्शी मानती हूं, जो तू जनस्थानमें स्थित स्वजनोंको मरा हुआ नहीं जानता है।

हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः १२
ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः ।
धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकारिणा १३
त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च राक्षस ।
विषये स्वे समुत्पन्नं यद्भयं नावबुध्यसे १४
तीक्ष्णमल्पप्रदातारं प्रमत्तं गर्वितं शठम् ।
व्यसने सर्वभूतानि नाभिधावन्ति पार्थिवम् १५
अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितं नरम् ।
क्रोधनं व्यसने हन्ति स्वजनोऽपि नराधिपम् १६
नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न विभेति च ।
क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदिह १७
शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यं लोष्ठैरपि च पांसुभिः ।
न तु स्थानात्परिभ्रष्टैः कार्यं स्याद्वसुधाधिपैः १८
उपभुक्तं यथा वासः स्रजो वा मृदिता यथा ।
एवं राज्यात्परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः १९

क्रूर कर्म करनेवाले चौदह सहस्र राक्षसोंको खरदूषणसहित अकेले राम मार डाला । सरलतापूर्वक कर्म करनेवाले रामने ऋषियोंको अभय दिया, दण्डक वन निरापद् कर दिये और जनस्थानको नष्ट कर दिया। रावण ! तू तो लोभी, दूत आदिकोंको इच्छित न देनेवाला, प्रमत्त और पराधीन है, जो अपने देशमें उत्पन्न हुए भयको नहीं जानता। क्रूर, कम दे वाले, प्रमत्त, अहङ्कारी, शठ राजाका दुःखमें कोई प्राणी साथ नहीं देता अति अभिमानी, सत्पुरुषोंसे अग्राह्य, अपनेको बडा माननेवाले, क्रोधी राजाको दुःखमें स्वजन भी मार डालता है। (९–१६)

"जो अपने कार्योंकी ठीक नहीं करता है और भयोंमें शङ्कासमेत न रहता है, वह दीन राज्यसे जल्दीही भ्रष्ट होकर तृणसमान हो जाता है सूखे काठोंसे और मिट्टीके ढेलोंसे तथा धूलसे तो काम चल भी जाता है परन्तु स्थानसे भ्रष्ट हुए राजाओंसे कुछ भी काम नहीं निकलता। जैसे

अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः ।
कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् २०
नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा ।
व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः २१
त्वं तु रावण दुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ।
यस्य तेऽविदितश्चारै रक्षसां सुमहान्वधः २२
परावमन्ता विषयेषु सङ्गवान्न देशकालप्रविभागतत्त्ववित् ।
अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चये विपन्नराज्यो न चिराद्विपत्स्यसे २३
इति स्वदोषान्परिकीर्तितांस्तया समीक्ष्य बुद्ध्या क्षणदाचरेश्वरः ।
धनेन दर्पेण बलेन चान्वितो विचिन्तयामास चिरं स रावणः २४

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥[१०७१]

चतुस्त्रिंशः सर्गः ।

ततः शूर्पणखां दृष्ट्वा ब्रुवतीं परुषं वचः ।
अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः १

पहिना हुआ कपडा और कुम्हलाई हुई माला निरर्थक है, उसी प्रकार राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा समर्थ भी निरर्थक है। जो राजा अप्रमत्त, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, धर्मशील होता है, वह बहुत दिनतक ठहरता है। जो नेत्रोंसे सो जाय तब भी नीतिरूपी नेत्रोंसे जागता रहे और जो अपने क्रोध तथा प्रसन्नताको प्रकट करता रहता है, वह राजा लोगोंसे पूजा जाता है। हे रावण! तू तो इन गुणोंसे रहित दुर्बुद्धि है, जिसको राक्षसोंका बडा वध गुप्तचरों द्वारा विदित नहीं हुआ। दूसरोंका अपमान करनेवाला, विषयोंमें लगा हुआ, देशकालका विभाग और तत्त्वका न जाननेवाला, गुण और दोषोंके निश्चयमें अयुक्तबुद्धि, राज्यहीन, तू शीघ्रही आपत्तिको पावेगा।" इस तरह राक्षसीसे कहे हुए दोषोंको बुद्धिसे विचार कर धन, अहङ्कार, बलसे युक्त राक्षसेन्द्र रावण बहुत समयतक सोचता रहा। (१७-२४)

यहाँ ३३ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३३॥

कश्च रामः कथंवीर्यः किंरूपः किंपराक्रमः ।
किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टश्च सुदुस्तरम् २
आयुधं किं च रामस्य येन ते राक्षसा हताः ।
खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ।
तत्त्वं ब्रूहि मनोज्ञाङ्गि केन त्वं च विरूपिता ३
इत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता ।
ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ४
दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ।
कन्दर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः ५
शक्रचापनिभं चापं विकृष्य कनकाङ्गदम् ।
दीप्तान्क्षिपति नाराचान्सर्पानिव महाविषान् ६
नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं महाबलम् ।
न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे ७
हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः ।
इन्द्रेणेवोत्तमं सस्यमाहतं त्वश्मवृष्टिभिः ८

मन्त्रियोंके बीचमें कठोर वाक्य कहती हुई, क्रोधित शूर्पणखा से रावण पूंछने लगा-" राम कौन हैं ? कैसा बल है ? कैसा रूप है ? कैसा पराक्रम है ? और किस लिये घोर दण्डकारण्यमें वह आया है ? राम के हथियार क्या है, जिससे उसने राक्षस मारे हैं और संग्राममें खर दूषण और त्रिशिरा मारा है ? हे कोमलाङ्गि ! सच बता किसने तुझे विरूपित किया है? " इस प्रकार राक्षसेन्द्रके ऐसा कहनेपर राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छित हो रामके विषयमें ठीक ठीक कहने लगी- " बडी बाहुवाले, विशाल नेत्र वाले, वीर और काला मृगचर्म है वस्त्र जिनका, कामदेवके समान रूपवाले दशरथके पुत्र राम हैं । सोनेकी जिसकी पठरी है ऐसे इन्द्रधनुष्के समान धनुष्को खींचकर प्रकाशित नाराच बाणोंको विषैले सर्पोंके समान छोड़ते हैं । रामको संग्राममें न तो बाण लेते हुए, न बाण छोडते हुए और न धनुष् खींचते हुए देखती हूं । बाणोंकी वर्षासे मरी हुई सेनाको तो देखती हूं, जैसे इन्द्रसे ओलोंकी वर्षासे मारी हुई अच्छी खेती दिखाई पडे।

रक्षसां भीमवीर्याणां सहस्राणि चतुर्दश ।
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेन पदातिना ९
अर्धाधिकमुहूर्तेन खरश्च सहदूषणः ।
ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः १०
एका कथञ्चिन्मुक्ताऽहं परिभूय महात्मना ।
स्त्रीवधं शङ्कमानेन रामेण विदितात्मना ११
भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः ।
अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् १२
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान्बली ।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः १३
रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ।
धर्मपत्नी प्रिया नित्यं भर्तुः प्रियहिते रता १४
सा सुकेशी सुनासोरूः सुरूपा च यशस्विनी ।
देवतेव वनस्यास्य राजते श्रीरिवापरा १५
तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततुङ्गनखी शुभा ।

एक पैदल रामने भयानक बलवाले चौदह हजार राक्षस पैंने बाणोंसे मारे हैं और तीन घडीमेंही दूषण समेत खर भी मारा है, ऋषियोंको अभय दिया और दण्डक वन क्षेमयुक्त कर दिये हैं । स्त्रीवधकी शङ्का करके विदितात्मा, महात्मा रामने तिरस्कार करके एक मुझे किसी प्रकार छोड दिया है । (९-११)

"उसका भाई महातेजस्वी, गुण और विक्रममें उसके तुल्य, अनुगामी, भक्त, बलिष्ठ, लक्ष्मण नामवाला है, जो असहिष्णु, दुर्जय, संग्राममें जीतनेवाला, पराक्रमी, बली रामका दाहिना हाथ है मानो वह नित्य बाहर रहनेवाला रामका प्राण है। विशाल नेत्रवाली, पूरे चन्द्रके समान मुँहवाली, नित्य भर्ताके हितमें युक्त ऐसी रामकी प्रिय धर्मपत्नी है। सुन्दर केश तथा नासिका तथा जंघावाली और सुन्दर रूपवाली, यशस्विनी, देवता तथा दूसरी लक्ष्मीके समान वह वनमें शोभती है। तचे हुए सोनेके

सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा १६
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किन्नरी ।
तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले १७
यस्य सीता भवेद्भार्या यं च दृष्ट्वा परिष्वजेत् ।
अभिजीवेत्स सर्वेषु लोकेष्वपि पुरंदरात् १८
सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
तवानुरूपा भार्या सा त्वं च तस्याः पतिर्वरः १९
तां तु विस्तीर्णजघनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम् ।
भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताऽहं वराननाम् २०
विरूपिताऽस्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज २१
तां तु दृष्ट्वाऽद्य वैदेहीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
मन्मथस्य शराणां च त्वं विधेयो भविष्यसि २२
यदि तस्यामभिप्रायो भार्यात्वे तव जायते ।
शीघ्रमुद्ध्रियतां पादो जयार्थमिह दक्षिणः २३
रोचते यदि ते वाक्यं ममैतद्राक्षसेश्वर ।

वर्णके समान कांतिवाली, लाल और ऊंचे नखवाली, रुचिर जंघा, पतली कटिवाली, विदेहकी कन्या सीता नामवाली स्त्री है। न देवी, न गन्धर्व न यक्षी, न किन्नरी उसके समान है। इस प्रकारके रूपवाली स्त्री मैंने इस पृथ्वीपर भी नहीं देखी। जिसकी सीता स्त्री हो जावे और जिसको प्रसन्न हो वह आलिङ्गन करे, वह सारे संसारमें इन्द्रसे भी अधिक जीनेका सुख पावे। वह सुशीला, सुन्दर शरीरवाली, अनुपम रूपवाली, तुम्हारे योग्य भार्या है और उसके योग्य तुम पति हो। (१२–१९)

"बडी जंघावाली, पुष्ट और ऊंचे स्तनवाली, श्रेष्ठ मुखवाली उस तुम्हारी स्त्री बनानेके अर्थ लानेको जब मैं उद्यत हुई, तब हे महाभुज लक्ष्मणने मुझे विरूपित कर दिया। पूर्ण चन्द्रसदृश मुखवाली उस सीताको देख कर तुम शीघ्रही कामके बाणोंसे बिंध जाओगे। यदि उस स्त्रीमें तुम्हारा अभिप्राय स्त्री बनानेके वास्ते है तो जीतके लिये दहिने

क्रियतां निर्विशङ्केन वचनं मम रावण २४
विज्ञायैषामशक्तिं च क्रियतां च महाबल ।
सीता तवानवद्याङ्गी भार्यात्वे राक्षसेश्वर २५
निशम्य रामेण शरैरजिह्मगैर्हताञ्जनस्थागतान्निशाचरान् ।
खरं च दृष्ट्वा निहतं च दूषणं त्वमद्य कृत्यं प्रतिपत्तुमर्हसि २६
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः॥३४॥[१०९७]

पञ्चत्रिंशः सर्गः ।

ततः शूर्पणखावाक्यं तच्छ्रुत्वा रोमहर्षणम् ।
सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम ह १
तत्कार्यमनुगम्यान्तर्यथावदुपलभ्य च ।
दोषाणां च गुणानां च संप्रधार्य बलाबलम् २
इतिकर्तव्यमित्येव कृत्वा निश्चयमात्मनः ।
स्थिरबुद्धिस्ततो रम्यां यानशालां जगाम ह ३
यानशालां ततो गत्वा प्रच्छन्नं राक्षसाधिपः
सूतं संचोदयामास रथः संयुज्यतामिति ४

पत्नी शीघ्र उठाकर धरो। हे राक्षसोंके स्वामी! यदि तुम्हें मेरी यह बात पसन्द है तो हे रावण! मेरे वचनको शङ्कारहित होकर करो। हे राक्षसेश्वर! अपने आत्माकी शक्ति देखकर सब अङ्गोंमें सुन्दर ऐसी सीता नाम्नी अबलाको भार्या बनानेके लिये हर लाओ। रामद्वारा सीधे जानेवाले बाणोंसे मारे हुए जनस्थानवासी राक्षसोंको सुनकर और खर तथा दूषणको मरा हुआ जानकर तुम इस अवस्थामें कर्तव्यको जाननेयोग्य हो।" (२०–२६)

यहाँ ३४ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥

तदनन्तर रोमाञ्चित करनेवाला शूर्पणखाका वचन सुनकर और कर्तव्यको जानकर रावण मंत्रियोंको विदा करके चला गया। उस कार्यको विचारकर, यथायोग्य निश्चित करके, दोषों और गुणोंका बल और अबल विचारकर 'यही करना चाहिये,' इस प्रकार निश्चय करके स्थिरबुद्धि

एवमुक्तः क्षणेनैव सारथिर्लघुविक्रमः ।
रथं संयोजयामास तस्याभिमतमुत्तमम् ५
कामगं रथमास्थाय काञ्चनं रत्नभूषितम् ।
पिशाचवदनैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः ६
मेघप्रतिमनादेन स तेन धनदानुजः ।
राक्षसाधिपतिः श्रीमान्ययौ नदनदीपतिम् ७
स श्वेतवालव्यजनः श्वेतच्छत्रो दशाननः ।
स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्तप्तकाञ्चनभूषणः ८
दशग्रीवो विंशतिभुजो दर्शनीयपरिच्छदः ।
त्रिदशारिर्मुनीन्द्रघ्नो दशशीर्ष इवाद्रिराट् ९
कामगं रथमास्थाय शुशुभे राक्षसाधिपः ।
विद्युन्मण्डलवान्मेघः सबलाक इवाम्बरे १०
सशैलसागरानूपं वीर्यवानवलोकयन् ।
नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णं सहस्रशः ११

रावण वहांसे रमणीक गाडीखानेको आया। छिपकर रावण यानशाल[ा] जाकर सारथिसे कहने लगा कि 'रथको जोडो।' इस प्रकार कहे[ने] शीघ्र कार्य करनेवाला सारथि क्षणमात्रमें उसके प्रिय उत्तम रथको [जो]ड लाया। इच्छापूर्वक चलनेवाले, रत्नोंसे भूषित, पिशाचके सदृश मुख[वाले] और सुवर्णके भूषणवाले खिच्चरोंसे जुडे हुए, सोनेके रथमें बैठकर राक्ष[सों]का स्वामी, कुबेरका छोटा भाई रावण मेघके समान शब्द करनेवाले [उस] रथद्वारा समुद्रको गया। (१–७)

श्वेत चमरवाला, श्वेत छत्र धारण किये, दश मुखवाला, [चि]कने वैडूर्यके समान तचे हुए सुवर्णके कुण्डल धारण किये हुए, बीस भुजा, [दश] ग्रीवावाला, मनोरम वस्त्र धारण किये, देवताओंका वैरी, मुनियोंका मा[रने]वाला, दश शिरवाले पहाडके समान राक्षसोंका स्वामी वह रावण इच्[छा]नुरूप चलनेवाले रथमें बैठकर इस प्रकार शोभा देने लगा, जैसे वि[जली] समेत बगलियोंकी पंक्तियां युक्त आकाशमें मेघ शोभा देवे। परा[क्रमी]

शीतमङ्गलतोयाभिः पद्मिनीभिः समन्ततः ।
विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् १२
कदल्यटविसंशोभं नारिकेलोपशोभितम् ।
सालैस्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्च सुपुष्पितैः १३
अत्यन्तनियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ।
नागैः सुपर्णैर्गन्धर्वैः किन्नरैश्च सहस्रशः १४
जितकामैश्च सिद्धैश्च चारणैश्चोपशोभितम् ।
आजैर्वैखानसैर्माषैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः १५
दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् ।
क्रीडारतविधिज्ञाभिरप्सरोभिः सहस्रशः १६
सेवितं देवपत्नीभिः श्रीमतीभिरुपासितम् ।
देवदानवसङ्घैश्च चरितं त्वमृताशिभिः १७
हंसक्रौञ्चप्लवाकीर्णं सारसैः संप्रसादितम् ।
वैदूर्यप्रस्तरं स्निग्धं सान्द्रं सागरतेजसा १८
पाण्डुराणि विशालानि दिव्यमाल्ययुतानि च ।

रावणने पर्वत समेत, अनेक प्रकारके फल फूलवाले, हजारों वृक्षों सहित शीतल सुगन्धित जलवाली पुखरियोंसे समीपमें घिरे हुए, वेदीवाले, विशाल आश्रमोंसे भरे हुए, केला और आढकी (अरहर) से भरे हुए, नारियलों-के वृक्षोंसे उपशोभित, पुष्पित साल, ताल और तमालोंसे युक्त, हजारों सर्प, गरुड, गन्धर्व और किन्नरोंसे युक्त, अयोनिज, वैखानस, माष, वाल-खिल्य और मरीचियोंसे और नियत आहारवाले अन्य भी ऋषियोंसे शोभित, कामको जीतनेवाले सिद्ध और चारणोंसे उपशोभित, वह समुद्र-के तीरको देखा। (८–१५)

दिव्य गहने तथा फूलवाली, दिव्यरूपवाली और क्रीडारतिकी विधि जाननेवाली हजारों अप्सराओंसे और श्रीमती देवपत्नियोंसे सेवित, शोभासे संयुक्त, अमृतके भोजन करनेवाले देव तथा दानवोंके झुंडोंसे चरित, हंस, कौञ्च और जलकुक्कुटोंसे व्याप्त, सारसोंसे शब्दायमान, वैडूर्य-

तूर्यगीताभिजुष्टानि विमानानि समन्ततः १९
तपसा जितलोकानां कामगान्यभिसंपतन् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव ददर्श धनुदानुजः २०
निर्यासरसमूलानां चन्दनानां सहस्रशः ।
वनानि पश्यन्सौम्यानि घ्राणतृप्तिकराणि च २१
अगुरूणां च मुख्यानां वनान्युपवनानि च ।
तक्कोलानां च जात्यानां फलानां च सुगन्धिनाम् २२
पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मरिचस्य च ।
मुक्तानां च समूहानि शुष्यमाणानि तीरतः २३
शैलानि प्रवरांश्चैव प्रवालनिचयांस्तथा ।
काञ्चनानि च शृङ्गाणि राजतानि तथैव च २४
प्रस्रवाणि मनोज्ञानि प्रसन्नान्यद्भुतानि च ।
धनधान्योपपन्नानि स्त्रीरत्नैरावृतानि च २५
हस्त्यश्वरथगाढानि नगराणि विलोकयन् ।
तं समं सर्वतः स्निग्धं मृदुसंस्पर्शमारुतम् २६

-की शिलावाले सागरके तेजसे भरे हुए रमणीय समुद्रके तीरको देखते हुए तपस्यासे लोकोंके जीतनेवालों दिव्य फूलोंसे संयुक्त विशाल, श्वेत इच्छानुरूप गमन करनेवाले विमानोंको मार्गवश प्राप्त होते हुए गन्धर्व और अप्सराओंको रावणने देखा। उसने गोंद और रसवाली मूल औषधियोंवाले चन्दनके, नासिकाको तृप्त करनेवाले, हजारों श्रेष्ठ वनोंको देखते हुए मुख्य अगरुओंके तक्कोल, जात्य और सुगन्धित फलोंके वन और उपवनोंको देखते हुए, तमालोंके पुष्प, मरिचोंके गुल्म, तीरपर सूखते हुए मोतियोंके समूह, शङ्खोंके झुंड, प्रवालोंके समूह, सुवर्ण तथा रजतमय पर्वत, सुन्दर झरना, शुद्ध तालाब, धनधान्योंसे युक्त, श्रेष्ठ स्त्रियोंसे शोभित, हाथी घोडे, रथोंसे भरे नगरों और शीतल मन्द पवनके साथ स्वर्गकी उपमा-वाले समुद्रके किनारेको देखा। (१९–२६)

अनूपे सिन्धुराजस्य ददर्श त्रिदिवोपमम् ।
तत्रापश्यत्स मेघाभं न्यग्रोधं मुनिभिर्वृतम् २७
समन्ताद्यस्य ताः शाखाः शतयोजनमायताः ।
यस्य हस्तिनमादाय महाकायं च कच्छपम् २८
भक्षार्थं गरुडः शाखामाजगाम महाबलः ।
तस्य तां सहसा शाखां भारेण पतगोत्तमः २९
सुपर्णः पर्णबहुलां बभञ्जाथ महाबलः ।
तत्र वैखानसा माषा वालखिल्या मरीचिपाः ३०
अजा बभूवुर्धूम्राश्च संगताः परमर्षयः ।
तेषां दयार्थं गरुडस्तां शाखां शतयोजनाम् ३१
भग्नामादाय वेगेन तौ चोभौ गजकच्छपौ ।
एकपादेन धर्मात्मा भक्षयित्वा तदामिषम् ३२
निषादविषयं हत्वा शाखया पतगोत्तमः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे मोक्षयित्वा महामुनीन् ३३

वहां उसने ऋषियोंसे युक्त, मेघके समान, बडके वृक्षको देखा जिसकी शाखाएँ चारों ओर सौ योजन फैली हुई थीं। महाबली गरुड भोजनके लिये हाथी और बडे भारी कछुवेको लेकर उसकी शाखापर आ बैठा था। उस वृक्षकी बहुत पत्तोंवाली उसी शाखाको बोझसे पक्षियोंमें श्रेष्ठ, महाबली गरुडने सहसा तोड दिया। उस शाखाके नीचे वैखानस, माष, वालखिल्य, मरीचिप, अज, धूम्रप संज्ञावाले ब्रह्मर्षि रहते थे। उनके ऊपर दया करनेके लिये धर्मात्मा गरुड एक पैरसे सौ योजन लम्बी उस शाखाको लेकर दूसरे पैरसे उन दोनों गजकच्छपोंको लेकर आकाशमेंही उनका मांस शीघ्रतासे खाकर चला गया था। पक्षिश्रेष्ठ सर्वज्ञ गरुडने उस शाखाको ऊपरसे छोडकर उस शाखासे निषादोंके ग्रामका हनन करके शाखाके गिरनेसे भयभीत हुए महामुनियोंको बचाकर बडा हर्ष प्राप्त किया था। (२७–३३)

उसी आनन्दने दूना कर दिया है पराक्रम जिसका ऐसा बुद्धिमान्

स तु तेन प्रहर्षेण द्विगुणीकृतविक्रमः ।
अमृतानयनार्थं वै चकार मतिमान्मतिम् ३४
अयोजालानि निर्मथ्य भित्त्वा रत्नगृहं वरम् ।
महेन्द्रभवनाद्गुप्तमाजहारामृतं ततः ३५
तं महर्षिगणैर्जुष्टं सुपर्णकृतलक्षणम् ।
नाम्ना सुभद्रं न्यग्रोधं ददर्श धनदानुजः ३६
तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः ।
ददर्शाश्रममेकान्ते पुण्ये रम्ये वनान्तरे ३७
तत्र कृष्णाजिनधरं जटामण्डलधारिणम् ।
ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम् ३८
स रावणः समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा ।
मारीचेनार्चितो राजा सर्वकामैरमानुषैः ३९
तं स्वयं पूजयित्वा च भोजनेनोदकेन च ।
अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ४०
कच्चित्ते कुशलं राजँल्लङ्कायां राक्षसेश्वर ।
केनार्थेन पुनस्त्वं वै तूर्णमेव इहागतः ४१

गरुड अमृत लेनेके लिये विचार करने लगा। तदनन्तर लोहेके जाले तोडकर और रत्नमय घरको फोडकर इन्द्रके भवनमेंसे छिपे हुए अमृ... ले आया था। महर्षियोंके समूहोंसे सेवित और गरुडसे चिह्नित ... सुभद्र नामवाले उस वटवृक्षको कुबेरके छोटे भाई रावणने देखा। नदि... स्वामी समुद्रके दूसरे पार जाकर रमणीय, पवित्र, वनके बीच, एका... उसने एक आश्रम देखा। जहां काला मृगचर्म ओढे, जटा वल्कल ... परिमित आहारवाले, मारीच नामक राक्षसको देखा। राक्षस मारी... विधिपूर्वक राक्षस रावणसे मिलकर अलौकिक समस्त वस्तुओंसे ... पूजा की। मारीच उस रावणको भोजन और जलसे स्वयं पूजकर प्रयो... युक्त वाक्य बोला-"हे राजन्! लङ्कामें अच्छे प्रकार कुशल तो है ... राक्षसोंके स्वामी! किस प्रयोजनसे तुम यहां जल्दी फिर आये हो ...

एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः।
ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ४२

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः॥३५॥[११३९]

षट्त्रिंशः सर्गः।

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः।
आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमा गतिः १
जानीषे त्वं जनस्थानं भ्राता यत्र खरो मम।
दूषणश्च महाबाहुः स्वसा शूर्पणखा च मे २
त्रिशिराश्च महाबाहू राक्षसः पिशिताशनः।
अन्ये च बहवः शूरा लब्धलक्षा निशाचराः ३
वसन्ति मन्नियोगेन अधिवासं च राक्षसाः।
बाधमाना महारण्ये मुनीन्ये धर्मचारिणः ४
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
शूराणां लब्धलक्षाणां खरचित्तानुवर्तिनाम् ५
ते त्विदानीं जनस्थाने वसमाना महाबलाः।
संगताः परमायत्ता रामेण सह संयुगे ६

मारीचसे इस प्रकार कहे जानेपर बडा तेजस्वी बात करनेमें कुशल रावण पीछेसे बोला। (३३-४२)

यहाँ ३५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ॥३५॥

"हे तात मारीच ! मेरे वचनको सुनो, कहता हूं। मैं पीडित हूं और पीडित मेरे आपही परम गति हैं। जनस्थानमें मेरा भाई खर और महाबाहु दूषण तथा मेरी बहिन शूर्पणखा रहती थी, सो तुम जानतेही हो। मांसका भोजन करनेवाला महातेजस्वी त्रिशिरा तथा बडे वनमें धर्मचारी मुनियोंको सताते हुए अन्य बहुतसे शूर रक्षायुक्त राक्षस मेरी आज्ञासे बसते थे। भयानक कार्य करनेवाले, शूर, रक्षायुक्त, खरके चित्तके अनुवर्ती, महाबलशाली चौदह हजार राक्षस जो जनस्थानमें वसते थे, खर सेनापति जिनका ऐसे वे राक्षस अनेक शस्त्रोंसे सुसज्जित हुए संग्राममें

नानाशस्त्रप्रहरणाः खरप्रमुखराक्षसाः ।
तेन संजातरोषेण रामेण रणमूर्धनि ७
अनुक्त्वा परुषं किञ्चिच्छरैर्व्यापारितं धनुः ।
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम् ८
निहतानि शरैर्दीप्तैर्मानुषेण पदातिना ।
खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः ९
हत्वा त्रिशिरसं चापि निर्भया दण्डकाः कृताः ।
पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः १०
स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः ।
अशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः ११
त्यक्तधर्मा त्वधर्मात्मा भूतानामहिते रतः ।
येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमास्थाय केवलम् १२
कर्णनासापहारेण भगिनी मे विरूपिता ।
अस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम् १३
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव ।

रामके साथ जुट गये । संग्राममें उत्पन्न हुआ है क्रोध जिनको ऐसे कुछ भी कठोर वाक्य न कहकर बाणोंसे धनुष्को सज्जित कर लिया। मनुष्य रामने पैनें बाणोंसे बडे तेजस्वी चौदह हजार राक्षस मार संग्राममें खर मार डाला और दूषण भी तथा त्रिशिरा भी मार डाला दण्डकवन भयरहित कर दिये । (१–१०)

"क्रोधित पिताद्वारा निकाला हुआ, भार्यासहित, क्षीणजी क्षत्रियोंमें नीच राम उस राक्षस-सेनाका मारनेवाला हो गया। दु कठोर, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी, इन्द्रियोंको न जीतनेवाला, धर्मको वाला, अधर्मात्मा, प्राणियोंके अहितमें रत ऐसा वह राम है। जिसने विना वैर केवल बलका आश्रय लेकर (न कि धर्मका) कर्ण और ना काटकर मेरी भगिनीका बुरा रूप कर दिया। देवताओंकी समान सीता नामक उसकी स्त्रीको मैं पराक्रमसे जनस्थानसे लाऊंगा।

त्वया ह्यहं सहायेन पार्श्वस्थेन महाबल १४
भ्रातृभिश्च सुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचिन्तये ।
तत्सहायो भव त्वं मे समर्थो ह्यसि राक्षस १५
वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव ।
उपायतो महाञ्शूरो महामायाविशारदः १६
एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर ।
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम १७
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः ।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर १८
त्वां च निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम् ।
गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति १९
ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम् ।
निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव २०
ततः पश्चात्सुखं रामे भार्याहरणकर्शिते ।
विस्रब्धं प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना २१

स कार्यमें मेरे सहायक बनो । हे महाबली ! समीपमें स्थित तुम्हारी और पने भाइयोंकी सहायतासे मैं युद्धमें देवताओंको भी कुछ नहीं गिनता । राक्षस ! इस कारण तुम मेरे सहायक बनो, क्योंकि तुम समर्थ हो, ल, युद्ध और दर्पमें तुम्हारे समान अन्य कोई नहीं है । (१०–१५)

"तुम उपायके जाननेवाले हो, बडे शूर हो और सब मायाओंमें चतुर ो। हे निशाचर! इसी कारण मैं तुम्हारे पास आया हूं। उस कामको सुनो ो तुम्हें मेरी सहायतामें करना होगा। चांदीकी बिन्दुओंसे चित्रित, ुवर्णके मृग तुम बनकर उस रामके आश्रमपर सीताके सामने विचरो। िस्सन्देह मृगरूपी तुम्हें देखकर सीता अपने पति तथा लक्ष्मणसे यह हेगी कि 'इसे पकड लो।' जैसे राहु चन्द्रमाकी कान्तिको इसी प्रकार तब उन दोनोंके दूर चले जानेपर एकान्तमें बाधारहित हो सुखपूर्वक सीता- ो हर लूंगा। तदनन्तर भार्याके हरणसे दुबले हुए रामपर कृतार्थ हुए

तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः ।
शुष्कं समभवद्वक्त्रं परित्रस्तो बभूव च २२
ओष्ठौ परिलिहञ्शुष्कौ नेत्रैरनिमिषैरिव ।
मृतभूत इवार्तस्तु रावणं समुदैक्षत २३
स रावणं त्रस्तविषण्णचेता महावने रामपराक्रमज्ञः ।
कृताञ्जलिस्तत्त्वमुवाच वाक्यं हितं च तस्मै हितमात्मनश्च
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥३६॥[११

सप्तत्रिंशः सर्गः ।

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।
प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम् १
सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः २
न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यगुणोन्नतम् ।
अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्रवरुणोपमम् ३
अपि स्वस्ति भवेत्तात सर्वेषामपि रक्षसाम् ।

आत्मासे निःशङ्क होकर सहजमें प्रहार करूंगा ।" रामकी कथा सुनकर महात्मा मारीचका मुँह सूख गया और वह डर गया । दोनों सूखे ओठोंको चाटता हुआ, मरेके तुल्य आर्त होकर खुले नेत्रोंसे वह रावणकी ओर देखने लगा । डरसे दुःखी चित्तवाला, रामके पराक्रमको जाननेवाला मारीच हाथ जोड रावणसे उसके तथा अपने लिये हित वाक्य बोला । (१६–२४)

यहाँ ३६ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३६॥

वाक्य कहनेमें चतुर, महाबुद्धिमान् मारीच राक्षसोंके स्वामीका वाक्य सुनकर रावणसे बोला–" हे राजन् ! हमेशा प्रिय बोलने मनुष्य तो बहुत मिलते हैं और हितकी वार्ता जो अप्रिय होती है, उसके वक्ता और श्रोता दोनों दुर्लभ हैं । चपल और दुष्टाचारी तुम महा गुणयुक्त, इन्द्र और वरुणकी समतावाले रामको नहीं जानते । हे

अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान् ४
अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा ।
अपि सीता निमित्तं च न भवेद्व्यसनं महत् ५
अपि त्वामीश्वरं प्राप्य कामवृत्तं निरङ्कुशम् ।
न विनश्येत्पुरी लङ्का त्वया सह सराक्षसा ६
त्वद्विधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः ।
आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः ७
न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथंचन ।
न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षात्रियपांसनः ८
न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
न च तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वभूतहिते रतः ९
वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्या सत्यवादिनम् ।
करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्राजितो वनम् १०
कैकेय्याः प्रियकामार्थं पितुर्दशरथस्य च ।
हित्वा राज्यं च भोगांश्च प्रविष्टो दण्डकावनम् ११

पृथ्वीपर समस्त राक्षसोंका कल्याण रहे, कहीं क्रोधित होकर राम संसारको राक्षसरहित न कर दें। कहीं तुम्हारे जीवनके अन्तके लियेही तो जनककन्या सीता उत्पन्न नहीं हुई ? कहीं सीताके निमित्त हमपर भी महा संकट न आवे। कामी और निरंकुश तुम मालिकको पाकर तुम्हारे साथही कहीं लंकापुरी नष्ट न हो जावे। तुम्हारे समान कामी, शीलहीन, पापी, दुर्मति राजा अपने आपको, कुटुम्बको और राज्यको नष्ट कर देता है। राम न तो पिताने छोडे हैं, न मर्यादारहित हैं, न लोभी हैं, न दुःशील हैं, न नीच क्षत्रिय हैं। (१-६)

"धर्म और गुणोंसे भी हीन कौसल्याके पुत्र नहीं हैं, न तीक्ष्ण, न प्राणियोंके अहितमें रत हैं। हे तात ! कैकेयीसे अपने पिताको ठगे हुए देखकर 'उनका वचन सत्यही करूंगा' ऐसा कह धर्मात्मा राम वनको आये हैं। कैकेयी और पिता दशरथकी प्रियकामनाके लिये राज्य और

न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः।
अनृतं न श्रुतं चैव नैवं त्वं वक्तुमर्हसि १२
रामो विग्रहवान्धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः १३
कथं तु तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा।
इच्छसे प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः १४
शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे।
रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि १५
धनुर्व्यादितदीप्तास्यं शरार्चिषममर्षणः।
चापबाणधरं तीक्ष्णं शत्रुसेनापहारिणम् १६
राज्यं सुखं च संत्यज्य जीवितं चेष्टमात्मनः।
नात्यासादयितुं तात रामान्तकमिहार्हसि १७
अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा।
न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने १८
तस्य वै नरसिंहस्य सिंहोरस्कस्य भामिनी।

भोगोंको छोडकर दण्डक वनमें आये हैं। हे तात! राम न कठोर, न मूर्ख न व्यभिचारी हैं। विपरीत सुना हुआ झूंठ तुम्हें न बोलना चाहिये। राम शरीरधारी धर्म, साधु और सत्यपराक्रमी तथा सब मनुष्योंके राजा हैं जैसे देवताओंके इन्द्र। अपने तेजसे रक्षित की गई उनकी स्त्री वैदेहीको सूर्यकी कान्तिके समान बलसे कैसे हरना चाहते हो? बाण जिसकी लौ हैं, धनुष् और तलवार ईन्धन हैं, ऐसी दीप्त दुर्धर्षणीय रामरूपी अग्निमें तुम्हें सहसा न प्रवेश करना चाहिये। धनुषही है फैलाया हुआ मुख जिनका, बाण है जिह्वा जिनकी ऐसे चापरूपी फांसी धारण किये शत्रुओं की सेनाको नाश करनेवाले, वीर, क्रोधी रामरूपी कालमें राज्य, सुख, जीवन तथा स्वपुरुषार्थको छोडकर आप घुसनेके योग्य नहीं हैं। (९-१७)

"जिनकी सीता है उनका तेज अतुलनीय है। वनमें रामके धनुषके आश्रय रहनेवाली उसको आप हरनेमें समर्थ नहीं हैं। सिंहके समान

प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्या नित्यमनुव्रता १९
न सा धर्षयितुं शक्या मैथिल्योजस्विनः प्रिया ।
दीप्तस्येव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा २०
किमुद्यमं व्यर्थमिमं कृत्वा ते राक्षसाधिप ।
दृष्टश्चेत्त्वं रणे तेन तदन्तमुपजीवितम् २१
जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम् ।
स सर्वैः सचिवैः सार्धं विभीषणपुरस्कृतैः २२
मन्त्रयित्वा स धर्मिष्ठैः कृत्वा निश्चयमात्मनः ।
दोषाणां च गुणानां च संप्रधार्य बलाबलम् २३
आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा राघवस्य च तत्त्वतः ।
हितं हि तव निश्चित्य क्षमं त्वं कर्तुमर्हसि २४
अहं तु मन्ये तव न क्षमं रणे समागमं कोसलराजसूनुना ।
इदं हि भूयः शृणु वाक्यमुत्तमं क्षमं च युक्तं च निशाचराधिप २५

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥ [११८८]

हृदयवाले उस नरसिंह रामको स्त्री सीता प्राणोंसे भी प्यारी है, जो नित्य पतिके अनुकूल चलनेवाली है। तेजस्वी रामकी स्त्री पतली कमरवाली सीता प्रकाशित हुई अग्निकी शिखाके समान अनादर करनेके अयोग्य है। हे राक्षसोंके स्वामिन्! व्यर्थ इस उद्यमको करके क्या होगा? संग्राममें उन रामके देखनेहीसे तुम्हारे जीवनका अन्त हो जायगा। जीवन, सुख और दुर्लभ राज्यको बहुत समयतक यदि भोगना चाहते हो, तो रामका अविप्रिय मत करो। सो तुम्हें धर्मात्मा बिभीषण आदि मंत्रियोंके साथ सलाह करके, आत्माका निश्चय करके, दोष और गुणोंका, बल और अबल सुविचार कर, अपना और रामका बल ठीक ठीक जानकर, हित और अहितको सुविचार कर जो कुछ उचित है वह करना चाहिये। रामके साथ युद्धमें तुम्हारे समागमको मैं योग्य नहीं मानता। हे रावण! मेरी इस बातको फिर सुनो, तुम्हारे लिये शान्ति करनाही उत्तम है।" (१८-२५)

यहाँ ३७ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३७॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ।

कदाचिदप्यहं वीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ।
बलं नागसहस्रस्य धारयन्पर्वतोपमः १
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
भयं लोकस्य जनयन्किरीटी परिघायुधः २
व्यचरन्दण्डकारण्यमृषिमांसानि भक्षयन् ।
विश्वामित्रोऽथ धर्मात्मा मद्वित्रस्तो महामुनिः ३
स्वयं गत्वा दशरथं नरेन्द्रमिदमब्रवीत् ।
अयं रक्षतु मां रामः पर्वकाले समाहितः ४
मारीचान्मे भयं घोरं समुत्पन्नं नरेश्वर ।
इत्येवमुक्तो धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा ५
प्रत्युवाच महाभागं विश्वामित्रं महामुनिम् ।
ऊनद्वादशवर्षोऽयमकृतास्त्रश्च राघवः ६
कामं तु मम तत्सैन्यं मया सह गमिष्यति ।
बलेन चतुरङ्गेण स्वयमेत्य निशाचरम् ७
वधिष्यामि मुनिश्रेष्ठ शत्रुं तव यथेप्सितम् ।

"किसी समय मैं भी पराक्रमसे इस पृथिवीपर घूमता पर्वतकी मावाला, तपे हुए सोनेके कुण्डल धारण किये, नीले मेघके समान को भय उत्पन्न करता, किरीट पहिने, परिघ आयुधको बांधे, हजार योंके बलको धारण किये, ऋषियोंके मांसको खाता हुआ दण्डकार विचरता था। मुझसे डरे, महामुनि विश्वामित्र राजा दशरथके पास जाकर बोले– 'हे राजन्! मुझको मारीचसे घोर भय उत्पन्न हुआ अतः एकान्त-चित्त हुए राम यज्ञके समयमें मेरी रक्षा करें।' ऐसा पर धर्मात्मा राजा दशरथ बडे भाग्यशाली, महामुनि विश्वामित्रसे बो 'यह राम बारह वर्षकी अवस्थावाला शस्त्रज्ञानसे शून्य बालक मेरी जो सेना है वह मेरे साथ आपकी इच्छानुसार चलेगी। हे मुनि मैं स्वयं चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आकर आपके शत्रु राक्षसोंको,

एवमुक्तः स तु मुनी राजानमिदमब्रवीत् ८
रामान्नान्यद्बलं लोके पर्याप्तं तस्य रक्षसः ।
देवतानामपि भवान्समरेष्वभिपालकः ९
आसीत्तव कृतं कर्म त्रिलोकाविदितं नृप ।
काममस्ति महत्सैन्यं तिष्ठत्विह परंतप १०
बालोऽप्येष महातेजाः समर्थस्तस्य निग्रहे ।
गमिष्ये राममादाय स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ११
इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तमादाय नृपात्मजम् ।
जगाम परमप्रीतो विश्वामित्रः स्वमाश्रमम् १२
तं तथा दण्डकारण्ये यज्ञमुद्दिश्य दीक्षितम् ।
बभूवोपस्थितो रामश्चित्रं विस्फारयन्धनुः १३
अजातव्यञ्जनः श्रीमान्बालः श्यामः शुभेक्षणः ।
एकवस्त्रधरो धन्वी शिखी कनकमालया १४
शोभयन्दण्डकारण्यं दीप्तेन स्वेन तेजसा ।
अदृश्यत तदा रामो बालचन्द्र इवोदितः १५

आप वध चाहते हैं, हनन करूंगा ।' (१–८)

"इस प्रकार कहनेपर वह मुनि राजासे बोले-' उस राक्षसके लिये रामसे अतिरिक्त और कोई शक्ति पर्याप्त नहीं है । हे राजन्! आप संग्राममें देवताओंका भी पालन करनेवाले हैं और तुम्हारा किया हुआ कर्म तीनों लोकोंमें विदित है । हे परम-तपस्वी ! यद्यपि बडी सेना यथेच्छ है तो भी वह यहीं रहे । और यह महा तेजस्वी बालक भी राम उसको दण्ड देनेमें समर्थ हैं। हे परम-तपस्वी ! मैं रामको लेकर जाऊंगा। तुम्हारा कल्याण हो! ' ऐसा कहकर वह मुनि विश्वामित्र बडे प्रसन्न होकर रामको साथ लेकर अपने आश्रमको चले गये । (८–१२)

"यज्ञके उद्देशसे दण्डकारण्यमें दीक्षित हुए मुनिके पास रामचन्द्र चित्रित धनुष्को चढाकर स्थित हो गये । अप्राप्तयौवन, श्रीमान्, बालक, श्यामवर्ण, शुभ दृष्टिवाले, एक वस्त्र धारण किये, धनुष् तथा शिखा धारण

ततोऽहं मेघसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
बली दत्तवरो दर्पादाजगामाश्रमान्तरम् १६
तेन दृष्टः प्रविष्टोऽहं सहसैवोद्यतायुधः ।
मां तु दृष्ट्वा धनुः सज्यमसंभ्रान्तश्चकार ह १७
अवजानन्न संमोहाद्बालोऽयमिति राघवम् ।
विश्वामित्रस्य तां वेदिमभ्यधावं कृतत्वरः १८
तेन मुक्तस्ततो बाणः शितः शत्रुनिबर्हणः ।
तेनाहं ताडितः क्षिप्तः समुद्रे शतयोजने १९
नेच्छता तात मां हन्तुं तदा वीरेण रक्षितः ।
रामस्य शरवेगेन निरस्तो भ्रान्तचेतनः २०
पातितोऽहं तदा तेन गम्भीरे सागराम्भसि ।
प्राप्य संज्ञां चिरात्तात लङ्कां प्रति गतः पुरीम् २१
एवमस्मि तदा मुक्तः सहायास्ते निपातिताः ।

किये, सुवर्णकी मालासे शोभित, प्रकाशमान अपने तेजसे दण्डकारण्य सुशोभित करते, उदय हुए बालचन्द्रमाके समान राम दिखाई पड़ते। तदनन्तर मैं मेघकी तुलनावाला, तचे सोनेके कुण्डल पहिने हुए, बल... वर प्राप्त किये हुए दर्पके कारण उस आश्रमपर आया। हथियार उ... मुझको घुसता हुआ एक साथ उन्होंने देखा। मुझे देखकर नहीं घब... हुए रामने धनुष् चढा लिया। 'यह बालक है' इस प्रकार मैं मोह... रामका अपमान करता हुआ जल्दीसे विश्वामित्रकी उस वेदीपर दौ... (१३-१८)

"तदनन्तर उन रामने शत्रुओंका नाश करनेवाला पैना बाण छो... उससे ताडित हुआ मैं सौ योजन विस्तारवाले समुद्रमें गिरा। हे ता... मुझे मारनेको नहीं इच्छा करते वीर रामने मेरी रक्षा की और रा... बाणवेगसे पीडित हुआ मैं मूर्च्छित हो गया। उस समय उस बा... गम्भीर सागरके जलमें मुझे छोड दिया। हे तात! मैं बहुत सम... सावधान होकर लङ्कापुरीको गया। इस प्रकार मुझे छोड दिया और...

अकृतास्त्रेण रामेण बालेनाक्लिष्टकर्मणा २२
तन्मया वार्यमाणस्तु यदि रामेण विग्रहम् ।
करिष्यस्यापदं घोरां क्षिप्रं प्राप्य नशिष्यसि २३
क्रीडारतिविधिज्ञानां समाजोत्सवदर्शिनाम् ।
रक्षसां चैव संतापमनर्थं चाहरिष्यसि २४
हर्म्यप्रासादसंबाधां नानारत्नविभूषिताम् ।
द्रक्ष्यसि त्वं पुरीं लङ्कां विनष्टां मैथिलीकृते २५
अकुर्वतोऽपि पापानि शुचयः पापसंश्रयात् ।
परपापैर्विनश्यन्ति मत्स्या नागह्रदे यथा २६
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गान्दिव्याभरणभूषितान् ।
द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौ तव दोषात्तु राक्षसान् २७
हृतदारान्सदारांश्च दश विद्रवतो दिशः ।
हतशेषानशरणान्द्रक्ष्यसि त्वं निशाचरान् २८
शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम् ।
प्रदग्धभवनां लङ्कां द्रक्ष्यसि त्वमसंशयम् २९

सहायक, अस्त्रविद्याको नहीं जाननेवाले सरलतापूर्वक कार्य करनेवाले बालक रामने मार दिये। हे रावण ! इसी कारणसे मुझसे निषेध किये हुए भी तुम यदि रामके साथ लडाई करोगे तो शीघ्रही घोर आपत्तिको पाओगे। क्रीडा और रतिकी विधि जाननेवाले, सभा और उत्सव मनानेवाले राक्षसों-पर तुम निरर्थक विपत्ति डालोगे। धनिकोंके भवन और राजभवनोंसे भरी हुई, अनेक रत्नोंसे भूषित लङ्कापुरीको सीताके निमित्त नाश हुई देखोगे। पापोंको न करते हुए भी पवित्र मनुष्य पापियोंके संसर्गसे उन्हींके पापोंसे नष्ट हो जाते हैं जैसे कि सांपके तालाबकी मछली। (१९-२६)

"दिव्य चंदन लगे हैं जिनके अङ्गमें और दिव्य आभरणोंसे भूषित राक्षसोंको पृथ्वीपर मरे हुए तुम अपने दोषसे देखोगे। स्त्रीरहित, वा स्त्री-सहित दशों दिशाओंमें भागते, मरनेसे बचे, शरणरहित, राक्षसोंको तुम देखोगे। बाणोंके जालोंसे घिरी, अग्निकी ज्वालासे व्याप्त, जले हुए भवनवाली

परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत् ।
प्रमदानां सहस्राणि तव राजन्परिग्रहे ३०
भव स्वदारनिरतः स्वकुलं रक्ष राक्षसान् ।
मानं वृद्धिं च राज्यं च जीवितं चेष्टमात्मनः ३१
कलत्राणि च सौम्यानि मित्रवर्गं तथैव च ।
यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम् ३२
निवार्यमाणः सुहृदा मया भृशं प्रसह्य सीतां यदि धर्षयिष्यसि
गमिष्यसि क्षीणबलः सबान्धवो यमक्षयं रामशरास्तजीवितः ३३

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टत्रिंशः सर्गः ॥३८॥[१२३

नवत्रिंशः सर्गः ।

एवमस्मि तदा मुक्तः कथंचित्तेन संयुगे ।
इदानीमपि यद्वृत्तं तच्छृणुष्व यदुत्तरम् १
राक्षसाभ्यामहं द्वाभ्यामनिर्विण्णस्तथाकृतः ।
सहितो मृगरूपाभ्यां प्रविष्टो दण्डकावने २
दीप्तजिह्वो महादंष्ट्रस्तीक्ष्णशृङ्गो महाबलः ।

लङ्काको तुम देखोगे इसमें सन्देह नहीं । पराई स्त्रीके छूनेसे बडा
कोई पाप नहीं है । हे राजन् ! तुम्हारे यहां हजारों स्त्रियाँ हैं । हे राक्षस
अपनी स्त्रियोंमें दत्तचित्त होओ । अपना कुल, मान, ऋद्धि, रा
जीवन और अपने पुरुषार्थकी रक्षा करो । सुंदर स्त्री और मित्रवर्ग
यदि बहुत समयतक भोगना चाहते हो तो रामका विप्रिय मत करो ।
मित्रसे रोके हुए भी तुम यदि सीताको बलात्कारसे ले आओगे, तो रा
बाणने खींचा है जीवन जिनका ऐसे तुम क्षीणबल होकर कुटुम्बस
यमलोकको चले जावोगे । (२७-३३)

यहाँ ३८ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

"तब तो इस प्रकार रामने मुझे किसी तरह संग्राममें छोड दिया ।
समय जो कुछ अलौकिक हाल हुआ है, उसे भी सुनो । यह
मेरे साथ हो जानेपर भी मोहित हुआ मैं मृगरूपधारी दो राक्षसोंसे

व्यचरन्दण्डकारण्यं मांसभक्षो महामृगः ३
अग्निहोत्रेषु तीर्थेषु चैत्यवृक्षेषु रावण।
अत्यन्तघोरो व्यचरंस्तापसांस्तान्प्रधर्षयन् ४
निहत्य दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः।
रुधिराणि पिबंस्तेषां तन्मांसानि च भक्षयन् ५
ऋषिमांसाशनः क्रूरस्त्रासयन्वनगोचरान्।
तदा रुधिरमत्तोऽहं व्यचरं दण्डकावनम् ६
तदाऽहं दण्डकारण्ये विचरन्धर्मदूषकः।
आसादयं तदा रामं तापसं धर्ममाश्रितम् ७
वैदेहीं च महाभागां लक्ष्मणं च महारथम्।
तापसं नियताहारं सर्वभूतहिते रतम् ८
सोऽहं वनगतं रामं परिभूय महाबलम्।
तापसोऽयमिति ज्ञात्वा पूर्ववैरमनुस्मरन् ९
अभ्यधावं सुसंक्रुद्धस्तीक्ष्णशृङ्गो मृगाकृतिः।
जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तं प्रहारमनुस्मरन् १०

दण्डकारण्यमें घुस गया। प्रकाशित जीभवाला, बडे शरीरवाला, तीक्ष्ण दाढवाला, महाबली, मांसभक्षी महामृग मैं दण्डकारण्यमें विचरने लगा। हे रावण! अग्निहोत्रोंमें, तीर्थोंमें, मार्गके वृक्षोंमें तपस्वियोंको डराता अत्यन्त घोर रूपसे विचरने लगा। ऋषियोंका मांस खानेवाला, क्रूर, मैं दण्डकारण्यमें धर्मचारी तपस्वियोंको मारकर उनका रुधिर पीता और मांस खाता, वनवासियोंको डराता, रुधिरसे मत्त हुआ विचरता, धर्मचारी, तपस्वी राम और महारथी लक्ष्मण तथा महाभागा सीताके पास पहुंचा। (१-८)

"तीक्ष्ण शृङ्गवाला, मृगरूपधारी, बुद्धिरहित, मारनेकी इच्छा करनेवाला, वही मैं तपस्वी, मिताहारी, सर्वहितैषी, महाबली रामका तिरस्कार कर "तपस्वी हैं" ऐसा समझ और पहिले वैरको याद करके क्रोधित हो उस प्रहारका स्मरण करके उनके ऊपर दौडा। उन रामने बलसे धनुष्

तेन त्यक्तास्त्रयो बाणाः शिताः शत्रुनिबर्हणाः।
विकृष्य सुमहच्चापं सुपर्णानिलतुल्यगाः ११
ते बाणा वज्रसंकाशाः सुघोरा रक्तभोजनाः।
आजग्मुः सहिताः सर्वे त्रयः संनतपर्वणः १२
पराक्रमज्ञो रामस्य शठो दृष्टभयः पुरा।
समुत्क्रान्तस्ततो मुक्तस्तावुभौ राक्षसौ हतौ १३
शरेण मुक्तो रामस्य कथंचित्प्राप्य जीवितम्।
इह प्रव्राजितो युक्तस्तापसोऽहं समाहितः १४
वृक्षे वृक्षे हि पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् १५
अपि रामसहस्राणि भीतः पश्यामि रावण।
रामभूतमिदं सर्वमरण्यं प्रतिभाति मे १६
राममेव हि पश्यामि रहिते राक्षसेश्वर।
दृष्ट्वा स्वप्नगतं राममुद्भ्रमामीव चेतनः १७
रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण।
रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे १८

खींचकर वैरियोंका नाश करनेवाले, गरुड और वायुके समान शब्द... पैंने तीन बाण छोडे। वज्रके समान छोडे हुए, रक्तका भोजन करने... झुके हुए पर्ववाले ऐसे वे तीनों बाण मिले हुए आये। पहिलेसे ... पराक्रमको जाननेवाला, शठ, घबराया हुआ मैं भय देखकर भाग... अतः बच गया और वे दोनों राक्षस मारे गये। रामके बाणसे किसी... बचा हुआ मैं जीवन पाकर तपस्वी, एकान्तचित्त, ब्रह्मचारी हुआ यह... प्रत्येक वृक्षपर चीर और काला मृगचर्म ओढे, धनुष् लिये, रामको ... लिये यमराजके समान देखता हूं। (९–१५)

"हे रावण! भयभीत हुआ मैं हजारों रामोंको देखता हूं और ... सब वन मुझे रामरूपही मालूम होता है। हे राक्षसाधिप! अकेले... रामकोही देखता हूं और स्वप्नमें रामको देखकर, मोहित होकर आंखें...

अहं तस्य प्रभावज्ञो न युद्धं तेन ते क्षमम् ।
बलिं वा नमुचिं वापि हन्याद्धि रघुनन्दनः १९
रणे रामेण युध्यस्व क्षमां वा कुरु रावण ।
न ते रामकथा कार्या यदि मां द्रष्टुमिच्छसि २०
बहवः साधवो लोके युक्ता धर्ममनुष्ठिताः ।
परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः २१
सोऽहं परापराधेन विनशेयं निशाचर ।
कुरु यत्ते क्षमं तत्त्वमहं त्वां नानुयामि वै २२
रामश्च हि महातेजा महासत्त्वो महाबलः ।
अपि राक्षसलोकस्य भवेदन्तकरोऽपि हि २३
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः ।
अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः २४
इदं वचो बन्धुहितार्थिना मया यथोच्यमानं यदि नाभिपत्स्यसे ।
सबान्धवस्त्यक्षसि जीवितं रणे हतोऽद्य रामेण शरैरजिह्मगैः २५

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्ये अरण्य० एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥[१२४६]

...स हो जाता हूं । हे रावण ! रामसे डरे हुए मुझे रकारादिक नाम ...से रत्न और रथ आदि भय उत्पन्न करते हैं । मैं उनके प्रभावको जाननेवाला हूं, उनके साथ तुम्हारा युद्ध ठीक नहीं; राम तो बलि और नमुचिको भी मार सकते हैं । हे राक्षस ! युद्धमें रामसे लडो या क्षमा करो, यदि मुझे देखना चाहते तो तुम रामकी कथा न कहना । (१६–२०)

"धर्मपर चलते, योग्य, बहुतसे साधु लोकमें दूसरोंके अपराधसे ...कुलसहित नष्ट हो गये हैं। हे निशाचर ! मैं तेरे अपराधसे नष्ट हो जाऊंगा, ...री समझमें आवे सो कर, मैं तेरा अनुयायी नहीं होऊंगा । महातेजस्वी, ...बलवान्, पराक्रमी राम कहीं राक्षसलोकके लिये यमराज न हो जावें ? यदि शूर्पणखाके कारणसे जनस्थानमें गया हुआ आचारहीन खर सरलतापूर्वक कार्य करनेवाले रामने मार डाला तो बताइये कि रामका इसमें

चत्वारिंशः सर्गः।

मारीचस्य तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः।
उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् १
तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः।
अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः २
दुष्कुलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते।
वाक्यं निष्फलमत्यर्थं बीजमुप्तमिवोखरे ३
त्वद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुगे।
मूर्खस्य पापशीलस्य मानुषस्य विशेषतः ४
यस्त्यक्त्वा सुहृदो राज्यं मातरं पितरं तथा।
स्त्रीवाक्यं प्राकृतं श्रुत्वा वनमेकपदे गतः ५
अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः।
प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव संनिधौ ६
एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच विद्यते।

क्या अपराध है ? बन्धुओंका हित चाहनेवाले मुझसे कहे हुए वचनको न मानोगे तो आज कुटुम्बसहित रामके सीधे चलनेवाले बा हत होकर जीवनको त्याग दोगे।" (२१–२५)

यहाँ ३९ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥

मारीचसे कहे हुए उस शान्तियुक्त वाक्यको रावणने नहीं किया, जैसे मरनेवाला मनुष्य औषधिका ग्रहण नहीं करता है। प्रेरित हुआ राक्षस रावण पथ्य और हित कहनेवाले मारीचसे और कठोर वाक्य बोला-" हे मारीच! अयोग्य अर्थवाले वाक्यको मुझसे कहते हो, वह ऊषरमें बोये हुए बीजके समान अत्यन्त निष्फल पापशील, मूर्ख, विशेष करके मनुष्य रामके युद्धमें तेरे वचन प्रवृत्त नहीं कर सकते हैं। जो मित्र, राज्य, पिता, माता इन सबको कर कैकेयीके असार वाक्यको सुनके एक साथ वनमें चला गया, खरको मारनेवाले उस रामकी प्राणोंसे प्यारी सीता स्त्री तेरे सामने

न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ७
दोषं गुणं वा संपृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि ।
अपायं वा उपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये ८
संपृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता ।
उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ९
वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदुपूर्वं शुभं हितम् ।
उपचारेण वक्तव्यो युक्तं च वसुधाऽधिपः १०
सावमर्दं तु यद्वाक्यमथवा हितमुच्यते ।
नाभिनन्देत तद्राजा मानार्थी मानवर्जितम् ११
पञ्चरूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः ।
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च १२
औष्ण्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्डं प्रसन्नताम् ।
धारयन्ति महात्मानो राजानः क्षणदाचर १३
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मान्याः पूज्याश्च नित्यदा ।
त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं मोहमाश्रितः १४

...श्य हरनी चाहिये । हे मारीच ! यह मेरी निश्चित बुद्धि हृदयमें है, सो ...समेत देवता और दैत्योंसे भी नहीं लौटाई जा सकती। (१-७)

"इस कार्यके निश्चयमें गुण या दोष, अपाय या उपाय यदि तुमसे ...गये होते तो इस प्रकार तुम कहते । पूछे हुए विद्वान् मंत्रिको हाथ ...कर अपनी विभूतिकी इच्छा करते हुए राजासे कहना चाहिये। राजासे ...कूल, कोमल, हित, शुभ और मानपूर्वक वाक्य कहना चाहिये । हे ...चि ! तिरस्कार समेत जो हितका वाक्य कहा जाता है, मानार्थी राजा ...हीन उस वाक्यसे प्रसन्न नहीं होता । अमितपराक्रमी राजा पाँच रूपों- ...धारण करते हैं—अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरुण। हे राक्षस ! ...त्मा राजा तेज, विक्रम, सौम्यता, दण्ड और प्रसन्नता इनको धारण ... हैं, इस लिये सब अवस्थाओंमें राजा माननीय और पूजनीय (८-१४)

अभ्यागतं तु दौरात्म्यात्परुषं वदसीदृशम् ।
गुणदोषौ न पृच्छामि क्षयं चात्मनि राक्षस १५
मयोक्तमपि चैतावत्त्वां प्रत्यमितविक्रम ।
अस्मिंस्तु स भवान्कृत्ये साहाय्यं कर्तुमर्हसि १६
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम ।
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः १७
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ।
प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि १८
त्वां हि मायामयं दृष्ट्वा काञ्चनं जातविस्मया ।
आनयैनमिति क्षिप्रं रामं वक्ष्यति मैथिली १९
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे दूरं गत्वाऽप्युदाहर ।
हा सीते लक्ष्मणेत्येवं रामवाक्यानुरूपकम् २०
तच्छ्रुत्वा रामपदवीं सीतया च प्रचोदितः ।
अनुगच्छति संभ्रान्तं सौमित्रिरपि सौहृदात् २१
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे लक्ष्मणे च यथासुखम् ।

"तू तो धर्मको न जानकर केवल मोहका सहारा लेकर आ मुझसे दुष्टतासे कठोर वचन कहना चाहता है । हे राक्षस ! मैं गु दोष और अपने आत्माकी हानि भी नहीं पूंछता, हे अमितपर मुझसे कहे हुए इस वाक्यको तुम इस समय करो । इस बडे काम सहाय करनेयोग्य हो । जो तुम्हें मेरी आज्ञासे सहायमें काम कर उसे भी सुनो । चांदीकी बूंदोंसे चित्रित, सोनेके मृग तुम बनके उ आश्रमपर सीताके सामने विचरो । सीताको लोभित करके फिर ज आवे वहां जा सकते हो । सोनेके मायारूपी हरिण तुम्हें देखकर वाली सीता 'इसे शीघ्रही लाओ' ऐसा रामसे कहेगी । राम निकल जानेपर तुम जाकर रामके वाक्यके अनुरूप 'हा सीते! हा ऐसा कहना । उसे सुनकर सीतासे प्रेरित, सम्भ्रमयुक्त, लक्ष्मण भी रामके मार्गपर चले जायँगे । (१४-२१)

आहरिष्यामि वैदेहीं सहस्राक्षः शचीमिव २२
एवं कृत्वा त्विदं कार्यं यथेष्टं गच्छ राक्षस ।
राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि मारीच तव सुव्रत २३
गच्छ सौम्य शिवं मार्गं कार्यस्यास्य विवृद्धये
अहं त्वाऽनुगमिष्यामि सरथो दण्डकावनम् २४
प्राप्य सीतामयुद्धेन वञ्चयित्वा तु राघवम् ।
लङ्कां प्रति गमिष्यामि कृतकार्यः सह त्वया २५
नो चेत्करोषि मारीच हन्मि त्वामहमद्य वै ।
एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि २६
राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते २७
आसाद्य तं जीवितसंशयस्ते मृत्युर्ध्रुवो ह्यद्य मया विरुध्यतः ।
एतद्यथावत्परिगण्य बुद्धया यदत्र पथ्यं कुरु तत्तथा त्वम् २८
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥ [१२७४]

"राम और लक्ष्मणके चले जानेपर सुखपूर्वक वैदेहीको इस प्रकार ले आऊंगा जैसे इन्द्र शचीको ले लाये थे । हे राक्षस ! इस कार्यको इस प्रकार करके तुम इच्छा सदृश चले जाना, हे सुव्रत ! मारीच ! तुम्हें राज्य का आधा भाग दे दूंगा । हे सौम्य ! इस कार्यकी, सिद्धिके लिये कल्याणकारी मार्गपर जाओ, रथसमेत मैं तुम्हारे पीछे दण्डकारण्यको जाऊंगा । रामको छलकर सीताको विना युद्धके पाकर कृतकृत्य हुआ मैं तेरे साथ लङ्कापुरीको लौट जाऊंगा । हे मारीच ! यदि तुम नहीं करोगे तो तुम्हें अभी मार डालूंगा । इस कार्यको बलसे तो अवश्यही करोगे । राजाके प्रतिकूल मनुष्य कभी सुख नहीं पा सकता है । रामके पास जाकर तो तुम्हारे जीवनमें सन्देह है, परन्तु मुझसे विरोध करके निश्चय मृत्यु है । इस बातको यथावत् बुद्धिसे विचारकर जो यहां योग्य हो सो तुम करो ।" (२२-२८)

यहाँ ४० वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४०॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ।

आज्ञप्तो रावणेनेत्थं प्रतिकूलं च राजवत् ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं निःशङ्को राक्षसाधिपम् १
केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा ।
सपुत्रस्य सराज्यस्य सामात्यस्य निशाचर २
कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत् ।
केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः ३
शत्रवस्तव सुव्यक्तं हीनवीर्या निशाचर ।
इच्छन्ति त्वां विनश्यन्तमुपरुद्धं बलीयसा ४
केनेदमुपदिष्टं ते क्षुद्रेणाहितबुद्धिना ।
यस्त्वामिच्छति नश्यन्तं स्वकृतेन निशाचर ५
वध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण ।
ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ६
अमात्यैः कामवृत्तो हि राजा कापथमाश्रितः ।
निग्राह्यः सर्वथा सद्भिः स निग्राह्यो न गृह्यसे ७
धर्ममर्थं च कामं च यशश्च जयतां वर ।

राजाके अयोग्य प्रतिकूल वाक्योंसे आज्ञा दिया हुआ राक्षस मा[रीच] राक्षसोंके राजा रावणसे कठोर वाक्य बोला— "हे रावण ! किस पा[पी ने] पुत्र, राज्य और मंत्रियोंसमेत तुम्हारे नाशका उपदेश दिया है? हे रा[जन्] कौन पापी सुखी हुए तुमसे नहीं प्रसन्न होता है? किसने इस बहानेसे [मृत्युके] द्वारका उपदेश तुमको दिया है ? हीनबल तुम्हारे शत्रु राक्षस बल[वान्से] दबे हुए तुम्हारे विनाशकी इच्छा करते हैं। हे राक्षस ! किस [अहित] कहनेवाले दुष्टने तुम्हें यह उपदेश दिया है, हे राक्षस ! जो तुम्हें तुम्[हारे] कर्मसे तुम्हारे नाशकी इच्छा करता है ? हे रावण ! वधके योग्य [तुम्हारे] मंत्री निश्चयही नहीं मारे जाते, जो कुमार्गमें चलते तुमको सब [प्रकार] नहीं रोकते हैं। कुमार्गपर चलता हुआ स्वतन्त्र राजा अच्छे मंत्रि[यों द्वारा] सदा रोकनेके योग्य होता है। (१-७)

स्वामिप्रसादात्सचिवाः प्राप्नुवन्ति निशाचर ८
विपर्यये तु तत्सर्वं व्यर्थं भवति रावण ।
व्यसनं स्वामिवैगुण्यात्प्राप्नुवन्तीतरे जनाः ९
राजमूलो हि धर्मश्च यशश्च जयतां वर ।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु रक्षितव्या नराधिपाः १०
राज्यं पालयितुं शक्यं न तीक्ष्णेन निशाचर ।
न चातिप्रतिकूलेन नाविनीतेन राक्षस ११
ये तीक्ष्णमन्त्राः सचिवा भुज्यन्ते सह तेन वै ।
विषमेषु रथाः शीघ्रं मन्दसारथयो यथा १२
बहवः साधवो लोके युक्तधर्ममनुष्ठिताः ।
परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः १३
स्वामिना प्रतिकूलेन प्रजास्तीक्ष्णेन रावण ।
रक्ष्यमाणा न वर्धन्ते मृगा गोमायुना यथा १४
अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः ।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः १५

"हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे राक्षस ! मन्त्री धर्म, अर्थ, काम और यश स्वामीकी प्रसन्नतासे ही पा सकते हैं । हे रावण ! विपर्यय होनेपर सम्पूर्ण व्यर्थ हो जाता है । स्वामीकी मूर्खतासे अन्य मनुष्य भी दुःख पाते हैं । हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! धर्म और जय इन सबका राजाही मूल है, इसीसे सब अवस्थाओंमें राजाओंकी रक्षा करनी चाहिये । हे निशाचर ! हे रावण ! अविनीत, प्रतिकूल और तीक्ष्ण मनुष्यसे राज्यकी पालना नहीं हो सकती है । तीव्र उपायोंकी सलाह देनेवाले मन्त्री राजाके साथही नष्ट हो जाते हैं—जैसे विषम स्थलमें मन्द सारथीके जल्दी चलनेवाले घोडे नष्ट हो जाते हैं । धर्मका अनुष्ठान करते हुए बहुतसे योग्य साधु दूसरोंके अपराधसे कुटुम्बसहित नष्ट हो गये हैं । हे राक्षस ! तीक्ष्ण और प्रतिकूल स्वामीसे रक्षा की गई प्रजा नहीं बढती है—जैसे गीदडसे रक्षित भेड नहीं बढती । (८-१४)

तदिदं काकतालीयं घोरमासादितं मया ।
अत्र त्वं शोचनीयोऽसि ससैन्यो विनशिष्यसि १६
मां निहत्य तु रामोऽसावचिरात्त्वां वधिष्यति ।
अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये चाप्यरिणा हतः १७
दर्शनादेव रामस्य हतं मामवधारय ।
आत्मानं च हतं विद्धि हृत्वा सीतां सबान्धवम् १८
आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया ।
नैव त्वमपि नाहं वै नैव लङ्का न राक्षसाः १९
निवार्यमाणस्तु मया हितैषिणा न मृष्यसे वाक्यमिदं निशा...
परेतकल्पा हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम्...

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ।

एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः ।
गच्छावेत्यब्रवीद्दीनो भयाद्रात्रिचरप्रभोः १
दृष्टश्चाहं पुनस्तेन शरचापासिधारिणा ।

"हे रावण ! अवश्यही सब राक्षस नष्ट हो जायँगे जिनका कि तू... दुर्बुद्धि, अजितेन्द्रिय राजा है । यह जो तूने स्वेच्छाकृत घोर कार्य कि... है, इससे मुझे यही शोक है कि तू सेनासमेत नष्ट हो जायगा। ... मारकर राम थोडेही कालमें तुझे मारेंगे, इसीसे मैं कृतकृत्य हूं कि... वैरीके हाथसे मरूंगा । रामके देखनेमात्रसे ही मुझे मरा जानो... सीताको हरकर कुटुम्बसमेत अपनेको मरा समझो। मेरे साथ सीताको... आश्रमसे तुम ले आओगे तो न तुम, न मैं, न लङ्का और न राक्षस... हे रावण ! मुझ हितैषीसे निवारण किये भी तुम इस वाक्यको... विचारते हो; क्योंकि मरणके समीप आये हुए, पूर्ण आयुवाले... मित्रोंसे कहे हुए हितको नहीं ग्रहण करते ।" (१५-२०)

यहाँ ४१ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४१॥

दीन मारीचने यह वचन रावणसे कहकर राक्षसोंके स्वामी...

मद्वधोद्यतशस्त्रेण निहतं जीवितं च मे २
नहि रामं पराक्रम्य जीवन्प्रतिनिवर्तते ।
वर्तते प्रतिरूपोऽसौ यमदण्डहतस्य ते ३
किं तु कर्तुं मया शक्यमेवं त्वयि दुरात्मनि ।
एष गच्छाम्यहं तात स्वस्ति तेऽस्तु निशाचर ४
प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स राक्षसः ।
परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत् ५
एतच्छौटीर्ययुक्तं ते मच्छन्दवशवर्तिनः ।
इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो हि राक्षसः ६
आरुह्यतामयं शीघ्रं खगो रत्नविभूषितः ।
मया सह रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः ७
प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि ।
तां शून्ये प्रसभं सीतामानयिष्यामि मैथिलीम् ॥
ततस्तथेत्युवाचैनं रावणं ताटकासुतः ८

भयसे 'हम दोनों चलते हैं' यह कहा । "बाण, धनुष् और तलवारको धारण किये मेरे मारनेको शस्त्र उठाये हुए रामने फिर ज्योंही मुझे देखा कि मेरा जीवन नष्ट हुआ । रामसे पराक्रम करके कोई भी जीता हुआ नहीं लौटता, तुम तो यमदण्डसे मारे हुएके सदृश हो और ऐसाही मैं हूं अर्थात् हम दोनों रामसे मारे जायँगे । ऐसे दुष्ट तुम्हारे विषयमें मैं क्या कर सकता हूं, हे तात ! निशाचर ! लो, यह मैं चलता हूं, तुम्हारा भला हो । " (१–४)

रावण उस वचनसे प्रसन्न होकर और उसे गाढ आलिङ्गन कर इस वचनको बोला । "यह वीरत्वयुक्त वचन तुमने मेरे अभिप्रायके अनुकूलही कहा है । अब तुम मारीच हो और पूर्व कोई अन्य राक्षस थे । पिशाचोंके-से मुखवाले खिच्चरोंसे युक्त तथा रत्नोंसे शोभित इस रथमें मेरे साथ जल्द बैठो । वैदेहीको लुभा कर फिर यथेष्ट चले जाना, मैं अकेलेमें जनकपुत्री सीताको बलात् ले जाऊंगा ।" तब ताटकासुत मारीच रावणको 'अच्छा' करके बोला । (५–८)

ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम् ।
आरुह्याययतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात् ९
तथैव तत्र पश्यन्तौ पत्तनानि वनानि च ।
गिरींश्च सरितः सर्वा राष्ट्राणि नगराणि च १०
समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः ।
ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः ११
अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात् ।
हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत् १२
एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् ।
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः १३
स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ।
मृगो भूत्वाऽऽश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह १४
स तु रूपं समास्थाय महदद्भुतदर्शनम् ।
मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः १५
रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः ।
किंचिदत्युन्नतग्रीवः इन्द्रनीलनिभोदरः । १६

इसके पश्चात् रावण और मारीच विमानकी समतावाले उस र
बैठकर वन, बगीचा, पर्वत, नदी, राज्य और नगरोंको देखते हुए
आश्रमप्रदेशसे शीघ्र चले । तदनन्तर मारीचसमेत राक्षसोंके स्वामी रा
ने दण्डकारण्यमें पहुंच कर रामके आश्रमको देखा । उस सुवर्णभू
रथसे उतर कर मारीचका हाथ पकडकर रावण यह बोला । " यह के
ओंसे घिरा हुआ रामका आश्रम दिखाई पडता है । हे मित्र! जिस का
लिये हम आये हैं उसको शीघ्र करो । " वह मारीच राक्षस राव
वचन सुनकर मृग बनकर रामके आश्रमके द्वारपर विचरने लगा। (९-
बडे अद्भुत दर्शनवाला रूप धारण करके श्रेष्ठ मणिके शृङ्गोंके अ
भागयुक्त, सफेद और काली मुखकी आकृतिवाला, लाल कमलके स
ओठ, इन्द्रनीलके समान कान, कुछ उठी हुई गर्दन, इन्द्रनीलके स

मधूकनिभपार्श्वश्च कंजकिंजल्कसंनिभः ।
वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः १७
इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः ।
मनोहरस्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः १८
क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ।
वनं प्रज्वलयन् रम्यं रामाश्रमपदं च तत् १९
मनोहरं दर्शनीयं रूपं कृत्वा स राक्षसः ।
प्रलोभनार्थं वैदेह्या नानाधातुविचित्रितम् २०
विचरन् गच्छते शष्पं शाद्वलानि समन्ततः ।
रौप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियनन्दनः २१
विटपीनां किसलयान्भक्षयन्विचचार ह ।
कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारानितस्ततः २२
तमाश्रमं मन्दगतिं सीतासंदर्शनं ततः ।
राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः । २३

रंगवाला उदर, मधूप पुष्पके समान पार्श्व (पसवाडे), पद्मकेशरोंके समान उज्ज्वल, वैदूर्यके समान खुरोंवाला, पतली जांघोंवाला, इन्द्रायुधके समान वर्णवाला, उपरको उठे हुए पूंछसे युक्त, मनोहर, चिकनेवर्णवाला और अनेक रत्नोंसे शोभित, रमणीय रामके आश्रम और वनको प्रकाशित करता हुआ वह राक्षस क्षणमात्रमें शोभायमान हरिण बन गया। वह राक्षस मनोहर दर्शनीय रूप सीताके लुभानेके लिये धारण करके घासोंमें विचरता हुआ इधर उधर फिरने लगा। (१५–२१)

चांदीकी सैकडों बूंदोंसे चित्रित बन कर वह प्रियदर्शन राक्षस वृक्षोंके कोंपलोंको तोडकर खाता हुआ विचरने लगा। केलाओंके बने घरमें जाकर फिर कनेरोंके पास पहुंच कर ऐसे स्थानमें जहां सीता उसे अच्छी तरह देख ले इधर उधर मन्द मन्द घूमने लगा। कमलोंके केसरतुल्य विचित्र पीठवाला वह महामृग शोभा देता था और रामके आश्रमके

रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् ।
पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः २४
गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते ।
विक्रीडंश्च पुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति २५
आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ।
मृगयूथैरनुगतः पुनरेव निवर्तते २६
सीतादर्शनमाकाङ्क्षन् राक्षसो मृगतां गतः ।
परिभ्रमति चित्राणि मण्डलानि विनिष्पतन् २७
समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः ।
उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश २८
राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगान्मृगवधे रतः ।
प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् २९
तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ।
कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत ३०

समीपमें इच्छापूर्वक घूम रहा था। वह मृगश्रेष्ठ बारबार जाकर लौटता हुआ विचरने लगा, क्षणमात्रमें जल्दीसे जाकर फिर लौट आता था। बारबार क्रीडा करता हुआ कभी कभी पृथ्वीपर बैठ जाता और आश्रमके द्वारपर आकर मृगोंके झुण्डोंके पीछे जाता था और मृगोंके झुण्डोंके साथ गया हुआ फिर भी लौट आता था। सीताके दर्शनेकी इच्छासे मृगरूपको प्राप्त हुआ वह राक्षस घूमता हुआ मृगोंके झुण्डके समीप विशेष विस्मयकारी विचित्र चालोंसे घूमता था। (२१-२७)

अन्य सम्पूर्ण वनवासी मृग उसे देखकर, पास आकर, सूंघकर दशों दिशाओंमें भाग जाते थे। हिरणोंके मारनेमें प्रीति रखनेवाला राक्षस अपने अभिप्रायको छिपानेके लिये उन वनवासी हिरणोंको छूकर नहीं खाता था। तदनन्तर उसी समय श्रेष्ठ नेत्रवाली, फूलोंके तोड़ने लगी हुई सीता वृक्षोंके समीपमें आई। फूलोंको चुनती हुई, मनोहर नेत्रोंवाली, श्रेष्ठ मुखवाली सीता कन्नेर, अशोक और आमोंके पास वि

कर्णिकारानशोकांश्च चूतांश्च मदिरेक्षणा।
कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुचिरानना ३१
अनर्हा वनवासस्य सा तं रत्नमयं मृगम्।
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना ३२
तं वै रुचिरदन्तोष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम्।
विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत ३३
स च तां रामदयितां पश्यन्मायामयो मृगः।
विचचार ततस्तत्र दीपयन्निव तद्वनम् ३४
अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तं नानारत्नमयं मृगम्।
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा ३५

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥[१३२९]

त्रिचत्वारिंशः सर्गः।

सा तं संप्रेक्ष्य सुश्रोणी कुसुमानि विचिन्वती।
हेमराजतवर्णाभ्यां पार्श्वाभ्यामुपशोभितम् १
प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी।
भर्तारमपि चक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम् २

लगी। वनवासके अयोग्य, वह श्रेष्ठ स्त्री मोती और मणियोंसे विचित्र अङ्गवाले उस रत्नमय मृगको देखने लगी। रुचिर दांत और ओठवाली, आश्चर्यसे फूले हुए नेत्रवाली सीता चांदीके हैं बाल जिसके ऐसे मृगको स्नेहसे देखने लगी। वह मायाका मृग रामकी प्यारी स्त्रीको देखता हुआ और उस चित्रित वनको प्रकाशित-सा करता फिर विचरने लगा। जनक-कन्या सीता पहिले नहीं देखे हुए उस रत्नमय मृगको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हो गई। (२८-३५)

यहाँ ४२ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४२॥

अच्छी कमरवाली, फूलोंको चुनती, प्रसन्नचित्त, कोमलाङ्गी, शुद्ध सुवर्णके समान रंगवाली वह सीता सोने चांदीके रङ्गवाले पसवाडोंसे शोभित उस हिरणको देखकर पतिको और अस्त्रधारी लक्ष्मणको ऊँचे स्वरसे

आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते ।
आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज ३
तावाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम् ४
शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ५
चरन्तो मृगयां हृष्टाः पापेनोपाधिना वने ।
अनेन निहता राम राजानः पापरूपिणा ६
अस्य मायाविदो मायामृगरूपमिदं कृतम् ।
भानुमत्पुरुषव्याघ्र गन्धर्वपुरसंनिभम् ७
मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव ।
जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः ८
एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता ।
उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना ९
आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः ।

पुकारने लगी। 'हे आर्यपुत्र! भाईसमेत शीघ्र आओ।' इस प्रकार बार बार बुलाकर फिर उसी मृगको देखने लगी। उस सीताके बुलाये हुए वे पुरुषसिंह राम और लक्ष्मण उस प्रदेशको देखते हुए फिर मृगको देखने लगे। उसे देखकर शङ्कित हुए लक्ष्मण रामसे कहने लगे-"इस मृगको मैं मारीच राक्षस समझता हूं। हे राजन्! इच्छासदृश रूप धारण करनेवाले, कपटी इस पापीने शिकार खेलते हुए, बलवान् अनेक राजा वनमें मारे हैं। हे पुरुषव्याघ्र! मायाको जाननेवाले इस मारीचका किया हुआ प्रकाशमान, गन्धर्वपुरके समान झूंठा यह मृगरूप है। हे राघव! इस तरहका रत्नोंसे चित्रित मृग पृथिवीपर कहीं नहीं है, हे जगतीनाथ! यह कपट है, इसमें सन्देह नहीं।" (१-८)

इस तरह कहते हुए लक्ष्मणको रोककर सुन्दर मुसकानवाली प्रसन्नचित्ता, कपटसे हरा गया है चित्त जिसका ऐसी सीता बोली

आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति १०
इहाश्रमपदेऽस्माकं बहवः पुण्यदर्शनाः ।
मृगाश्चरन्ति सहिताश्चमराः सृमरास्तथा ११
ऋक्षाः पृषतसङ्घाश्च वानराः किंनरास्तथा ।
विहरन्ति महाबाहो रूपश्रेष्ठा महाबलाः १२
न चान्यः सदृशो राजन् दृष्टः पूर्वं मृगो मया ।
तेजसा क्षमया दीप्त्या यथाऽयं मृगसत्तमः १३
नानावर्णविचित्राङ्गो रत्नभूतो महाव्रतः ।
द्योतयन्वनमव्यग्रं द्योतते शशिसंनिभः १४
अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसंपच्च शोभना ।
मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे १५
यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव ।
आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति १६
समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः ।
अन्तःपुरे विभूषार्थो मृग एष भविष्यति १७

हे आर्यपुत्र ! रमणीक यह मृग मेरे मनको हरता है, हे महाबाहो ! इसे आओ, हमारे खेलनेकी वस्तु हो जायगी । इस हमारे आश्रमपर पवित्र दर्शनवाले बहुतसे सृमर और चमर मृग चरते हैं। हे महाबाहो ! श्रेष्ठ रूपवाले मनोहर भालू, चितकबरे मृग, बन्दर और किन्नर जातिके मृग चरते हैं । हे राजन् ! इसके सदृश मैंने पहिले मृग नहीं देखा तेज, मन्द गति और दीप्तिसे जैसा कि यह मृग है । अनेक वर्णोंसे चित्रित अंगवाला, रत्नोंकी बूंदोंसे जडा हुआ और चन्द्रमाके समान यह मृग समग्र वनको प्रकाशित करता हुआ शोभता है। अहो यह रूप ! अहो यह शोभा ! अहो यह सुन्दर स्वरसम्पत्ति ! यह विचित्र अंगवाला, अद्भुत मृग मानो मेरे मनको हरता है । (९–१५)

"यदि जीता हुआही मृग तुम्हारे पकडनेमें आजावे तो आश्चर्यदायक होगा और विस्मयको उत्पन्न करेगा । वनवासके समाप्त हो जानेपर यह

भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो ।
मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति १८
जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः ।
अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति १९
निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि ।
शष्पबृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् २०
कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम् ।
वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम २१
तेन काञ्चनरोम्णा तु मणिप्रवरशृङ्गिणा ।
तरुणादित्यवर्णेन नक्षत्रपथवर्चसा २२
बभूव राघवस्यापि मनो विस्मयमागतम् ।
इति सीतावचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च मृगमद्भुतम् २३
लोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः ।
उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः २४
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लसितामिमाम् ।

फिर राज्यके प्राप्त हो जानेपर यह मृग हमारे राजमहालोंकी शोभा कारण होगा । हे प्रभो ! आर्यपुत्र भरत और मेरी सासुओंको यह मृगरूप आश्चर्य उत्पन्न करेगा । हे नरशार्दूल ! जीता हुआ यह तुम्हारी पकडाईमें न आये तो इसका चर्मही मुझको रुचिकर होगा मारे गये इस जीवके छोटी छोटी घासपर बिछे हुए, सुवर्णके समान, चर्मपर बैठनेकी इच्छा करती हूं । यह कार्य (पतिको आज्ञा देना) लिये अयोग्य माना गया है, तो भी इस जीवके शरीरसे मुझे उत्पन्न हुआ है (अतः आपको आज्ञा देती हूं ।) सोनेके रोंगटे नीलरत्नके शृङ्गवाले, मध्याह्नके सूर्यके समान वर्णवाले, छायापथके तेजवाले, उस मृगसे मेरा भी मन विस्मित हो गया है ।" (१६-२२)

पूर्वोक्त सीताका वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगको उस रूपसे लोभित हुए और सीताद्वारा प्रेरित प्रसन्नचित्त राम

रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति २५
न वने नन्दनोद्देशे न चैत्ररथसंश्रये ।
कुतः पृथिव्यां सौमित्रे योऽस्य कश्चित्समो मृगः २६
प्रतिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजयः ।
शोभन्ते मृगमाश्रित्य चित्राः कनकबिन्दुभिः २७
पश्यास्य जृम्भमाणस्य दीप्तामग्निशिखोपमाम् ।
जिह्वां मुखान्निःसरन्तीं मेघादिव शतह्रदाम् २८
मसारगल्वर्कमुखः शङ्खमुक्तानिभोदरः ।
कस्य नामानिरूप्योऽसौ न मनो लोभयेन्मृगः २९
कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् ।
नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ३०
मांसहेतोरपि मृगान्विहारार्थं च धन्विनः ।
घ्नन्ति लक्ष्मण राजानो मृगयायां महावने ३१
धनानि व्यवसायेन विचीयन्ते महावने ।

क्ष्मणसे बोले– " हे लक्ष्मण ! सीताकी मृगगत इच्छाको देखो, रूपकी ष्ठतासे यह मृग आज नहीं रहेगा। न नन्दनवनमें और न चैत्ररथ में ऐसा मृग है जो इसके समान हो । हे सौमित्रे लक्ष्मण ! फिर पृथिवी- कहांसे हो सकता है ? सोनेकी बूंदोंसे चित्रित हुई तिरछी तथा सीधी लोंकी पंक्तियां मृगके ऊपर शोभा देती हैं । जंभाई लेते हुए इस हिरण- मुखसे निकली अग्निशिखाके समान प्रकाशित जिह्वाको देखो जैसे कि से बिजली निकलती है । इन्द्रनीलसे बने हुए गिलासके समान मुख- ला और शङ्ख तथा मोतियोंके समान उदरवाला रमणीय यह मृग सके मनको नहीं लुभाता ? हे लक्ष्मण ! सुवर्णके सदृश प्रभावाला, क रत्नोंसे युक्त, दिव्य, इस रूपको देखकर किसका मन विस्मयको नहीं स होगा ? (२३–३०)

" हे लक्ष्मण ! मांसके लिये और विहारके लिये धनुष्धारी राजा ग वनमें हिरणोंको शिकारमें मारते हैं । मणि, रत्न, सुवर्ण आदि अनेक

धातवो विविधाश्चापि मणिरत्नसुवर्णिनः ३२
तत्सारमखिलं नृणां धनं निचयवर्धनम् ।
मनसा चिन्तितं सर्वं यथा शुक्रस्य लक्ष्मण ३३
अर्थी येनार्थकृत्येन संव्रजत्यविचारयन् ।
तमर्थमर्थशास्त्रज्ञाः प्राहुरर्थ्याः सुलक्ष्मण ३४
एतस्य मृगरत्नस्य परार्ध्यें काञ्चनत्वचि ।
उपवेक्ष्यति वैदेही मया सह सुमध्यमा ३५
न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी ।
भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शेऽनेनेति मे मतिः ३६
एष चैव मृगः श्रीमान्यश्च दिव्यो नभश्चरः ।
उभावेतौ मृगौ दिव्यौ तारामृगमहीमृगौ ३७
यदि वाऽयं तथा यन्मां भवेद्वदसि लक्ष्मण ।
मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया ३८
एतेन हि नृशंसेन मारीचेनाकृतात्मना ।

धातुरूप धन भी महावनमें राजाओं द्वारा मृगयाव्यवसायसे ही इकट्ठे किये जा सकते हैं । हे लक्ष्मण ! सो सार यही है कि मनसे सोचा हुआ सभी धन, शुक्रके समान, लोगोंको इकट्ठा करके बढाना चाहिये। हे लक्ष्मण! अर्थी पुरुष जिस अर्थसाधन वस्तुके कारण विना विचार किये ही चला जाय, अर्थशास्त्र जाननेवाले लोग उसे अर्थ कहते हैं । मृगोंमें रत्न इस मृगके प्रशंसनीय सुवर्णतुल्य चर्मपर मेरे साथ श्रेष्ठ कमरवाली सीता बैठेगी । इसके समान छूनेमें न तो कादली, न प्रियकी, न प्रवेणी और न आविकी [ये चारों या तो मृगचर्मोंके भेद हैं या बिछानेके आसन हैं] होगी, ऐसा मैं मानता हूं । यह जो श्रीमान् मृग है और वह जो आकाशमें दिव्य मृग (मृगशीर्ष) है, ये दोनों तारामृग और महीमृग समान हैं ।(३१–३७)

"हे लक्ष्मण ! यदि तुम मुझसे कहते हो कि यह राक्षसकी माया है, स्यात् ऐसाही हो तो भी इसका वध मुझे करना चाहिये । इस दुष्ट

वने विचरता पूर्वं हिंसिता मुनिपुङ्गवाः ३९
उत्थाय बहवो येन मृगयायां जनाधिपाः ।
निहताः परमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयं मृगः ४०
पुरस्तादिह वातापिः परिभूय तपस्विनः ।
उदरस्थो द्विजान्हन्ति स्वगर्भोऽश्वतरीमिव ४१
स कदाचिच्चिराल्लोके आससाद महामुनिम् ।
अगस्त्यं तेजसा युक्तं भक्ष्यस्तस्य बभूव ह ४२
समुत्थाने च तद्रूपं कर्तुकामं समीक्ष्य तम् ।
उत्स्मयित्वा तु भगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ४३
त्वयाऽविगण्य वातापे परिभूताश्च तेजसा ।
जीवलोके द्विजश्रेष्ठास्तस्मादसि जरां गतः ४४
तद्रक्षोऽपि न भवेदेव वातापिरिव लक्ष्मण ।
मद्विधं योऽतिमन्येत धर्मनित्यं जितेन्द्रियम् ४५
भवेद्धतोऽयं वातापिरगस्त्येनेव मा गतः ।

...कृतात्मा, वनमें विचरनेवाले, दुष्ट मारीचने पहिले बहुतसे मुनि मारे हैं। ...खेटमें प्रकट होकर इस मारीचने बडे धनुष्वाले बहुतसे राजा मारे हैं। ...इससे भी यह मृग मारनेयोग्य है। पहिले यहां वातापि तपस्वियोंको ...कर उदरमें स्थित हो उन ब्राह्मणोंको मार डालता था, जैसे खिच्चरीका ...गर्भस्थही अपनी माताको मार डालता है। वह किसी समय तेज- ...महामुनि अगस्त्यके पास लोभसे गया और उनका भक्ष्य बन गया। ...के अन्तमें रूपको धारण करनेवाले उसकी कामना देख मुसकरा कर ...गवान् अगस्त्य वातापिसे बोले-'हे वातापे! तूने अपने तेजसे कुछ न ...समझकर बहुतसे ब्राह्मण इस लोकमें तिरस्कृत किये हैं, इसीसे अब हमारे ...में तू पच गया है, अब नहीं निकल सकता।' (३८-४४)

"हे लक्ष्मण! सो यह वातापिके समान कहीं राक्षस न होवे जो नित्य ...त्मा, जितेन्द्रिय, मुझ सरीखेका अनादर करता है और अगस्त्यसे मारे ...वातापिके समान मुझे प्राप्त हुआ है। यहां तुम तैयार होओ और

इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ४६
अस्यामायत्तमस्माकं यत्कृत्यं रघुनन्दन ।
अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथवा मृगम् ४७
यावद्गच्छामि सौमित्रे मृगमानयितुं द्रुतम् ।
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या मृगत्वचि गतां स्पृहाम् ४८
त्वचा प्रधानया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ।
अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ४९
यावत्पृषतमेकेन सायकेन निहन्म्यहम् ।
हत्वैतच्चर्म आदाय शीघ्रमेष्यामि लक्ष्मण ५०
प्रदक्षिणेनातिबलेन पक्षिणा जटायुषा बुद्धिमता च लक्ष्मण
भवाप्रमत्तः प्रतिगृह्य मैथिलीं प्रतिक्षणं सर्वत एव शङ्कितः

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ।

तथा तु तं समुद्दिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः ।
दधारासिं महातेजा जाम्बूनदमयत्सरुम् १
ततस्त्रिविनतं चापमादायात्मविभूषणम् ।

यत्नवान् होकर सीताकी रक्षा करो । हे लक्ष्मण ! जो कुछ हमारा कृ... वह इस सीतामें स्थित है । हे लक्ष्मण ! मैं इस मृगको मारूंगा या पकड़... शीघ्र मृग लेनेको जाता हूं । हे लक्ष्मण ! मृगके चर्ममें है इच्छा ... ऐसी सीताको देखते रहो । सर्वोत्कृष्ट चर्मके कारण यह मृग आज... रहेगा । आश्रमपर स्थित तुम सीताके साथ सावधान रहना । तब... एक बाणसे इस मृगको मार डालूंगा, मारकर और इसका चर्म ले... लक्ष्मण ! शीघ्र चला आऊंगा । हे लक्ष्मण ! अतिसमर्थ, अतिबली, ... मान्, पक्षी जटायुके साथ सीताको ग्रहण करके सावधान रहना औ... क्षण सब ओरसे शङ्कित रहना ।" (४५-५१)

यहाँ ४३ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४३॥

महातेजस्वी रामने इस तरह भाँई लक्ष्मणसे कहकर सोनेकी ...

आबध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः २
तं वन्यराजो राजेन्द्रमापतन्तं निरीक्ष्य वै ।
बभूवान्तर्हितस्त्रासात्पुनः संदर्शनेऽभवत् ३
बद्धासिर्धनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः ।
तं स्म पश्यति रूपेण द्योतयन्तमिवाग्रतः ४
अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्तं धनुष्पाणिर्महावने ।
अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानं कदाचन ५
शङ्कितं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम् ।
दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित् ६
छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् ।
मुहूर्तादेव ददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते ७
दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् ।
स दूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः ८
आसीत्क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः ।

लवारको धारण किया। विक्रमशाली राम तीन जगह लचे हुए स्वभूषण-रूप धनुष्को लेकर और दो तरकसोंको बांधकर चले। वह बन रणोंका राजा मारीच आते रामको देखकर डरसे अन्तर्धान हो गया ौर फिर दिखाई देने लगा, रामचन्द्र तलवार बांध धनुष् ले जिधर मृग ा उधर शीघ्र हो गये। उस महावनमें धनुर्धारी रामचन्द्रने कान्तिसे काशमान, पीछेको देख देखकर अपने सम्मुख दौडते हुए, कभी बाणको काता हुआ, घबराया हुआ, आकाशमें छलांगें मारता हुआ-सा, वनके किसी स्थानमें दृश्यमान और किसीमें अदृश्यमान होता हुआ, बादलोंके टुकडोंसे आवृत शरदृतुके चन्द्रमाके समान ढका हुआसा उस हरिणको खा। वह मुहूर्तभरमें पास दिखलाई देने लगता था और क्षणभरमें दूर दीखता था। (१-७)

मृगरूप वह मारीच दिखाई देता और छिपता, इस तरह उस आश्रमसे दूर रामको ले गया। विवश हुए और उससे ठगे हुए राम

अथावतस्थे सुश्रान्तश्छायामाश्रित्य शाद्वले
स तमुन्मादयामास मृगरूपो निशाचरः । ९
मृगैः परिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत
गृहीतुकामं दृष्ट्वा तं पुनरेवाभ्यधावत । १०
तत्क्षणादेव संत्रासात्पुनरन्तर्हितोऽभवत्
पुनरेव ततो दूराद्वृक्षखण्डाद्विनिःसृतः । ११
दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः
भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः । १२
सूर्यरश्मिप्रतीकाशं ज्वलन्तमरिमर्दनम्
संधाय स दृढं चापे विकृष्य बलवद्बली । १३
तमेव मृगमुद्दिश्य ज्वलन्तमिव पन्नगम्
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् । १४
स भृशं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः
मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसंनिभः । १५
तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत्स भृशातुरः
व्यनदद्भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः । १६

क्रोधित हो गये और थक कर छायाके सहारे घासपर बैठ गये । मृगरूपी राक्षसने रामको उन्मादयुक्त कर दिया और वनके मृगोंसे घिरा हुआ पासमेंही दिखाई देने लगा । रामकी पकडनेकी इच्छा देखकर भागा और उसी समय भयसे फिर छिप गया । महातेजस्वी राम फिर दूरस्थित वृक्षोंके समूहमेंसे निकलते हुए उसे देखकर उसके मारनेका निश्चय करके बाणको लेकर कुपित हो गये । वैरियोंका नाश करनेवाले बलवान् रामने सूर्यकी किरणोंके समान चलते हुए बाणको दृढ धनुषपर चढाकर और धनुष्को बलसे खींचकर उसी मृगको लक्ष्य करके सांस लेते हुए सांपके समान प्रकाशित, ब्रह्मासे बनाये हुए अस्त्रको छोडा। (८-१४)

वज्रके समान श्रेष्ठ उस बाणने मृगरूपी मारीचके शरीरको भेदकर उसके हृदयको बेध डाला । थोडे जीवनवाला और बाणसे आतुर राक्षस

म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम् १७
स्मृत्वा तद्वचनं रक्षो दध्यौ केन तु लक्ष्मणम् ।
इह प्रस्थापयेत्सीता तां शून्ये रावणो हरेत् १८
स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम् ।
सदृशं राघवस्येव हा सीते लक्ष्मणेति च १९
तेन मर्माणि निर्विद्धं शरेणानुपमेन हि ।
मृगरूपं तु तत्त्यक्त्वा राक्षसं रूपमास्थितः २०
चक्रे स सुमहाकायो मारीचो जीवितं त्यजन् ।
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम् २१
रामो रुधिरसिक्ताङ्गं चेष्टमानं महीतले ।
जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचः स्मरन् २२
मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्ता लक्ष्मणेन तु ।
तत्तथा ह्यभवच्चाद्य मारीचोऽयं मया हतः २३
हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम् ।

वह मारीच ताडके वृक्षके बराबर उछल कर भयानक शब्द करता पृथ्वी-पर गिर पडा । मरते हुए मारीचने उस बनावटी शरीरको त्याग दिया और राक्षस रावणके उस वचनको स्मरण करके कि “ सीता किस प्रकार लक्ष्मणको यहां भेजे और एकान्तमें उसे रावण हरे ” चिन्ता करने लगा । समय आया हुआ देखकर वह रामके समान ‘ हे लक्ष्मण ! हा सीते ! ’ ऐसा शब्द करने लगा । अनुपम उस बाणसे चर्ममें बिंधे हुए, जीवन छोडते हुए, बडे शरीरवाले मारीचने मृगरूपको छोडकर अपना राक्षसरूप धारण कर लिया । (१५–२०)

रामचन्द्र घोरदर्शनवाले, रुधिरसे लिप्त अङ्गवाले, राक्षसको पृथ्वी-पर पडा और पृथ्वीपर तडपडाता देखकर लक्ष्मणके वाक्यको याद करके मनसे सीताके पास पहुंचे । यह मारीचकी ही माया है, लक्ष्मणने तो पहिलेही कहा था, वैसाही हुआ, आज मैंने मारीच मार डाला । यह राक्षस ‘ हा सीते ! हे लक्ष्मण ! ’ इस प्रकार बडे स्वरसे कहकर मरा है,

ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् २४
लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति ।
इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः २५
तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम् ।
राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वनम् २६
निहत्य पृषतं चान्यं मांसमादाय राघवः ।
त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा २७

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ।

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने ।
उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् १
नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वाऽवतिष्ठते ।
क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् २
आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि ३
तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ।
रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम् ४

यह सुनकर सीताकी क्या दशा होगी ? और महाबाहु लक्ष्मण किस अवस्थाको प्राप्त हुए होंगे ? इस प्रकार धर्मात्मा राम चिन्ता करके भी पुलकित-तनु हो गये । मृगरूपी राक्षसको मारकर और उसकी ध्वनि सुनकर विषादसे उत्पन्न घोर भयने रामको घेर लिया । राम अन्य मृग मार और उसका मांस लेकर जल्दी करते जनस्थानकी ओरको चले। (२१–२७)

यहाँ ४४ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४४॥

सीता वनमें पतिकेसे उस दीन शब्दको सुनकर लक्ष्मणसे बोलीं " तुम जाओ, यह शब्द रामका जानो । बडे पीडित और चिल्लाते हुए रामका मैंने शब्द सुना है, इसीसे मेरा जीवन और हृदय स्वस्थानपर नहीं ठहरता। तुम वनमें चिल्लाते हुए भाईकी रक्षा करो और सहायककी इच्छा

न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम्।
तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा ५
सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातस्त्वमसि शत्रुवत्।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे ६
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते।
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम् ७
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते।
तेन तिष्ठसि विस्रब्धं तमपश्यन्महाद्युतिम् ८
किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत्।
कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः ९
एवं ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकसमन्विताम्।
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव १०
पन्नगासुरगन्धर्वदेवदानवराक्षसैः।
अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः ११

ते हुए भाईके पीछे जल्दी जाओ जैसे सिंहोंके वशमें बैल पड जावे इस
ार राक्षसोंके वशमें राम पड गये हैं।" (१–४)

इस प्रकार कहे हुए भी लक्ष्मण भाईकी आज्ञाको जानकर नहीं
, तब क्रोधित हो सीता बोली— "हे लक्ष्मण! तुम भाईके मित्ररूपमें
ु हो, जो तुम इस अवस्थामें भाईके पास नहीं जाते हो। हे लक्ष्मण!
मेरी वजहसे रामका नाश होना चाहते हो, निश्चयही मेरे लोभसे
मके पास नहीं जाते। मैं यह समझती हूं कि रामका दुःख तुम्हें अच्छा
ाता है और भाईमें तुम्हारा प्रेम नहीं है, इससे तुम महाद्युति रामको
देखते हुए भी यहां निश्चिन्त बैठे हो। रामही हैं प्रधान जिनके ऐसे तुम
ां आये हो, उन रामके संकटमें फँसनेपर फिर मेरी यहां रक्षासे क्या
ा होगा?" (५–९)

इस तरह कहती हुई आंसू और शोकसे संयुक्त, हरिणीकी तरह
ी हुई सीतासे लक्ष्मण बोले– "हे वैदेहि! सर्प, असुर, गन्धर्व, देव,

देवि देवमनुष्येषु गन्धर्वेषु पतत्त्रिषु।
राक्षसेषु पिशाचेषु किन्नरेषु मृगेषु च ॥ १२
दानवेषु च घोरेषु न स विद्येत शोभने।
यो रामं प्रतियुध्येत समरे वासवोपमम् ॥ १३
अवध्यः समरे रामो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि।
न त्वामस्मिन्वने हातुमुत्सहे राघवं विना ॥ १४
अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलवतामपि।
त्रिभिर्लोकैः समुदितैः सेश्वरैः सामरैरपि ॥ १५
हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु संतापस्त्यज्यतां तव।
आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम् ॥ १६
न स तस्य स्वरो व्यक्तं न कश्चिदपि दैवतः।
गन्धर्वनगरप्रख्या माया तस्य च रक्षसः ॥ १७
न्यासभूताऽसि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना।
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ १८
कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः।
खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति ॥ १९

दानव, राक्षस इन सबोंसे तुम्हारे पति नहीं जीते जा सकते, इसमें सं नहीं है। हे देवि! देवोंमें, मनुष्योंमें, गन्धर्वोंमें, पक्षियोंमें, राक्ष पिशाचोंमें, किन्नरोंमें, मृगोंमें और घोर दानवोंमें ऐसा कोई नहीं इन्द्रके समान रामचन्द्रके सामने युद्धमें लडे। तुम ऐसा मत कहो, तो संग्राममें अवध्य हैं और मैं इस वनमें रामके विना तुमको नहीं सकता। बलवानोंकी ताकतसे, उद्यत हुए तीनों लोकोंसे और इन्द्र देवताओंसे भी उनका बल अनिवार्य है। तुम अपने हृदयको दुःखि करो और इस सन्तापको छोडो, तुम्हारे पति मृगको मारकर शीघ्र आ वह शब्द उनका नहीं था, किसीने मायासे किया था, यह गन्धर्वनगरके समान (झूठी) उसी राक्षसकी माया है। हे वैदेहि! तुम धरोहर समान हो, महात्मा रामने मेरे पास तुम्हें रख दिया है। हे वरारोहे

राक्षसा विविधा वाचो व्याहरन्ति महावने।
हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि २०
लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु क्रुद्धा संरक्तलोचना।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम् २१
अनार्य करुणारम्भ नृशंस कुलपांसन।
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत् २२
रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे।
नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत् २३
त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु।
सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि २४
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा।
तन्न सिद्ध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा २५
कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम्।
उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम् २६

न्हें यहांपर नहीं छोड सकता। हे वैदेहि! खरके मारनेसे तथा जनस्थान-वासी अन्य राक्षसोंके मारनेसे राक्षसोंने हमसे वैर कर लिया है। हे सीते! हिंसाही है विहार जिनका ऐसे राक्षस वनमें अनेक प्रकारकी आवाजें करते हैं, उनकी तुम चिन्ता मत करो।" (१०-२०)

लक्ष्मणने सीतासे जब ऐसा कहा तब क्रोधित हुई तथा लाल नेत्र कर सीता सच बोलनेवाले लक्ष्मणसे कठोर वाक्य बोली "रे अनार्य! रे करुणारम्भ! रे दुष्ट! रे कुलघातक! रामका दुःख तुझे प्यारा है, यह मैं जानती हूं, जिससे रामका दुःख देखकर तू ऐसा कहता है। हे लक्ष्मण! सौतेली मांके पुत्र तुमसदृश दुष्ट हमेशा छिपकर रहनेवालेमें पाप हो तो आश्चर्य नहीं। दुष्ट, गुप्तचारी अकेले तुम वनमें अकेले रामके साथ मेरे लिये रहते हो अथवा भरतने तुमको भेजा है। सो हे लक्ष्मण! तुम्हारा वा भरतका अभिप्राय सिद्ध नहीं होगा, मैं कमलके समान श्याम, कमलपत्रके समान नेत्रवाले रामका सहारा लेकर फिर कैसे दूसरे मनुष्यकी कामना

समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ।
रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले २७
इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः २८
उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम ।
वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि २९
स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ।
विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः ३०
न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे ।
श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसंनिभम् ३१
उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिणो हि वनेचराः ।
न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया ३२
धिक्त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे ।
स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् ३३
गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने ।

करूंगी ? हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारे ही सामने प्राण छोड दूंगी और रा[म]
विना क्षणमात्र भी पृथ्वीपर नहीं जीऊँगी, इसमें सन्देह नहीं है।"(२१-
इस तरह रोमांचित करनेवाले कठोर वाक्य सीताद्वारा कहे ज[ाने पर]
इन्द्रियोंके जीतनेवाले लक्ष्मण हाथ जोडकर सीतासे बोले, "तुम
देवताके समान हो, इसलिये मैं उत्तर नहीं दे सकता। हे सीते!
उलटा वाक्य स्त्रियोंमें होवे तो कोई आश्चर्य नहीं। यह स्त्रियोंका स्व[भाव]
संसारमें दिखलाई पडता है। धर्मको छोडनेवाली, चपल, तीक्ष्ण औ[र भेद]
करानेवाली स्त्रियाँ होतीं हैं। हे जनककन्ये ! वैदेहि ! कानोंको तपे [बाणके]
समान लगनेवाले ऐसे वाक्यको मैं नहीं सह सकता। साक्षीभूत [वनके]
सब जीव सुनो, न्यायवादी मुझसे जैसा इन्होंने अन्यायका कठोर [वाक्य]
कहा है। तुम्हें आज धिक्कार है, तुम नाशको प्राप्त हो जाओ, जो तुम [गुरु]
वाक्यमें स्थित मुझसे ऐसी शङ्का करती हो। स्त्रीपन स्वभावसेही दुष्[ट]

रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः ३४
निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः ३५
लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रबाष्पपरिप्लुता ३६
गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण ।
आबंधिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ३७
पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ३८
इति लक्ष्मणमाश्रुत्य सीता शोकसमन्विता ।
पाणिभ्यां रुदती दुःखादुदरं प्रजघान ह ३९
तामार्तरूपां विमना रुदन्तीं सौमित्रिरालोक्य विशालनेत्राम् ।
आश्वासयामास न चैव भर्तुस्तं भ्रातरं किंचिदुवाच सीता ४०
ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः कृताञ्जलिः किंचिदभिप्रणम्य ।

है। हे वरानने ! जहां राम हैं मैं वहां जाऊंगा, तेरा कल्याण हो। हे विस्तृत नेत्रवाली ! तेरी रक्षा समस्त वनके देवता करें। घोर निमित्त (अपशकुन) जो उत्पन्न हो रहे हैं, उनके कारण रामके साथ पुनः आया मैं तुम्हें देखूंगा या नहीं, हे सीते ! यह मैं नहीं जानता।" (२८-३५)

लक्ष्मणने जब ऐसा कहा तब रोती हुई तथा आंसुओंसे व्याप्त नेत्रवाली सीता उत्तरमें तीव्र वाक्य बोली, "हे लक्ष्मण ! रामके विना मैं गोदावरी नदीमें डूब जाऊंगी वा फांसी लगा लूंगी वा विषम स्थलसे गिरकर अपने प्राण छोड दूंगी, या तीक्ष्ण विषको पी जाऊँगी या अग्निमें घुस जाऊंगी, परन्तु रामसे अन्य पुरुषको कदापि भी न छूऊंगी।" इस प्रकार लक्ष्मणके प्रति चिल्लाकर दुःखयुक्त सीता रोने लगी और दोनों हाथोंसे दुःखपूर्वक उदरको पीटने लगी। विमना हुए लक्ष्मण पीडित रूपवाली, विशाल नेत्रवाली, रोती हुई सीताको देखकर समझाने लगे, पर सीताने पतिके भाई लक्ष्मणसे कुछ भी न कहा। तदनन्तर आत्मवान् हाथ जोडे हुए

अवेक्षमाणो बहुशः स मैथिलीं जगाम रामस्य समीपमात्मवान्

इत्यार्षे श्रीमद्रा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥ [१४

षट्चत्वारिंशः सर्गः ।

तया परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः ।
स विकाङ्क्षन्भृशं रामं प्रतस्थे न चिरादिव १
तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः ।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् २
श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही ।
वामे चांसेऽवसज्ज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ३
परिव्राजकरूपेण वैदेहीमन्ववर्तत ।
तामाससादातिबलो भ्रातृभ्यां रहितां वने ४
रहितां सूर्यचन्द्राभ्यां संध्यामिव महत्तमः ।
तामपश्यत्ततो बालां राजपुत्रीं यशस्विनीम् ५
रोहिणीं शशिना हीनां ग्रहवद्भृशदारुणः ।
तमुग्रं पापकर्माणं जनस्थानगता द्रुमाः ६

लक्ष्मण सीताको प्रणाम करके बहुत वार सीताको देखते हुए फि[र]
प्रणाम करके रामके समीपको गये । (३६–४१)

यहाँ ४५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४५॥

सीताके कठोर वाक्योंसे क्रोधित हुए लक्ष्मण रामकी अतिशय इ[च्छा]
करते,हुए शीघ्रही चल दिये । तब समयकी प्रतीज्ञासे (कहीं समीप [
खडा हुआ, संन्यासीके रूपको धारण किये हुए रावण अवकाश (मौ[के]
को पाकर शीघ्रही सीताके सम्मुख आया । चिकने रंगे हुए वस्त्र प[हने]
शिखाधारी, छत्र तथा उपानह धारण किये, वह रावण वाम कन्धेपर [
दंड कमण्डलु धारण करके संन्यासीके वेषसे सीताके पास आया। अति[ब]
रावणने उस वनमें राम लक्ष्मणसे रहित सीताको प्राप्त किया जैसे [
अन्धकार चन्द्र-सूर्यसे हीन संध्याको प्राप्त होता है । अति कठोर राव[ण]
यशवाली, बाला, रामकी स्त्रीको देखा जैसे (शनैश्चर) ग्रह चन्द्र[

संदृश्य न प्रकम्पन्ते न प्रवाति च मारुतः ।
शीघ्रस्रोताश्च तं दृष्ट्वा वीक्षन्तं रक्तलोचनम् ७
स्तिमितं गन्तुमारेभे भयाद्गोदावरी नदी ।
रामस्य त्वन्तरं प्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदन्तरे ८
उपतस्थे च वैदेहीं भिक्षुरूपेण रावणः ।
अभव्यो भव्यरूपेण भर्तारमनुशोचतीम् ९
अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः ।
सहसा भव्यरूपेण तृणे कूप इवावृतः १०
अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वैदेहीं रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
तिष्ठन्संप्रेक्ष्य च तदा पत्नीं रामस्य रावणः ११
शुभां रुचिरदन्तोष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
आसीनां पर्णशालायां बाष्पशोकाभिपीडिताम् १२
स तां पद्मपलाशाक्षीं पीतकौशेयवासिनीम् ।
अभ्यगच्छत वैदेहीं दुष्टचेता निशाचरः १३
दृष्ट्वा कामशराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन् ।

रोहिणीको देखता है । जनस्थानके वृक्ष उग्र तथा तेज कर्म करनेवाले रावणको देखकर कांपते नहीं थे और न वायु चलता था। शीघ्र बहनेवाले स्रोत लाल नेत्रवाले रावणको देखकर मन्द मन्द चलने लगे और गोदावरी नदी भी भयसे मन्द चलने लगी । (१–८)

रामके अवकाशको देखनेवाला दशग्रीव रावण उसी अवकाशमें वैदेही सीताके पास भिक्षु (संन्यासी) के रूपमें आया। दुर्जन रावण सुजनके वेषसे पतिका सोच करती हुई सीताके पास आया जैसे कि चित्राके पास शनैश्चर आया हो । तिनकोंसे ढके हुए कूपके समान सुजनके रूपमें वह पापी विदेहकी कन्या यशस्विनी रामकी स्त्रीको देखकर ठहर गया । तब रावण सुन्दर, श्रेष्ठ दांत और ओठवाली, पूर्ण चन्द्रके समान मुखवाली, पर्णशालामें बैठी, आंसू और शोकसे पीडित रामकी स्त्रीको देखकर ठहर गया। दुष्ट चित्तवाला वह राक्षस पद्मपत्रके समान नेत्रोंवाली, पीले रेशमी

अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः
तामुत्तमां त्रिलोकानां पद्महीनामिव श्रियम् । १४
विभ्राजमानां वपुषा रावणः प्रशशंस ह
रौप्यकाञ्चनवर्णाभे पीतकौशेयवासिनि । १५
कमलानां शुभां मालां पद्मिनीव च बिभ्रती
ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने । १६
भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी
समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डुरा दशनास्तव । १७
विशाले विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके
विशालं जघनं पीनमूरू करिकरोपमौ । १८
एतावुपचितौ वृत्तौ संहतौ संप्रगल्भितौ
पीनोन्नतमुखौ कान्तौ स्निग्धतालफलोपमौ । १९
मणिप्रवेकाभरणौ रुचिरौ तौ पयोधरौ
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि । २०

वस्त्रोंको धारण किये हुई सीताके पास गया । कामके बाणोंसे पीडित रावण वेदका उच्चारण करता हुआ विजन देशमें विनययुक्त वचन बोल रावण, पद्मसे अलग हुई शोभाके समान, शरीरसे प्रकाशमान संसार श्रेष्ठ स्त्री सीताकी प्रशंसा करने लगा । (९-१५)

हे सुवर्णके समान चमकवाली ! हे पीत रेशमी वस्त्र धारण करने तू कौन है, जो कमलोंकी सुन्दर माला धारण किये हुए पद्मिनी (रिया) के समान है ? हे वरारोहे ! हे शुभानने ! तू ह्री है या कीर्ति अथवा श्री है वा शुभ लक्ष्मी है या अप्सरा है वा भूति है अथवा स्वे पूर्वक विचरनेवाली रति है ? तेरे दांत एकसार प्रशंसनीय चिकने श्वे और विशाल, उज्ज्वल, इधर उधर लाल, काली पुतलीवाले तेरे नेत्र बडी और पुष्ट जंघा है और हाथीकी सूंडके समान तेरी ऊरू (रानें ऊंचे, गोल, मिले हुए, पुष्ट और ऊंचे हैं मुख जिनके ऐसे तथा चि तालके फलके समान श्रेष्ठ मणि है गहना जिनका ऐसे तेरे स्तन हैं

मनो हरासि मे रामे नदीकूलमिवाम्भसा २१
करान्तमितमध्यासि सुकेशे संहतस्तनि ।
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी २२
नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ।
रूपमग्र्यं च लोकेषु सौकुमार्यं वयश्च ते २३
इह वासश्च कान्तारे चित्तमुन्माथयन्ति मे ।
सा प्रतिक्राम भद्रं ते न त्वं वस्तुमिहार्हसि २४
राक्षसानामयं वासो घोराणां कामरूपिणाम् ।
प्रासादाग्र्याणि रम्याणि नगरोपवनानि च २५
संपन्नानि सुगन्धीनि युक्तान्याचरितुं त्वया ।
वरं माल्यं वरं गन्धं वरं वस्त्रं च शोभने २६
भर्तारं च वरं मन्ये त्वद्युक्तमसितेक्षणे ।
का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा शुचिस्मिते २७
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे ।

मन्दमुसकरानवाली ! हे श्रेष्ठ दांतोंवाली! हे सुन्दर नेत्रवाली! हे विलास-वाली ! हे कान्ते ! तुम मेरे मनको हरती हो जैसे नदी जलसे अपने किनारोंको हरती रहती है । मुट्ठीमें आ जानेवाली तुम्हारी कटि है तथा सुन्दर केश हैं और मिले हुए स्तन हैं । तुम्हारे समान न देवी है, न यक्षी है और न किन्नरी है । मैंने पृथ्वीपर ऐसी स्त्री पहिले कभी नहीं देखी। (१६–२३)

संसारमें तेरा श्रेष्ठ रूप, सुकुमारता, अवस्था और इस निर्जन वनमें बसना मेरे मनको आश्चर्यमें करता है। सो तुम घरको लौटो,तुम्हारा कल्याण हो। तुम यहां रहनेके योग्य नहीं हो, यह तो स्वेच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले घोर राक्षसोंका वासस्थान है । रमणीक राजाओंके श्रेष्ठ भवन और सुगन्धिवाले नगरोंके बगीचे तुम्हारे सेवन (विहार करने) के योग्य हैं। हे शोभने ! हे काले नेत्रवाली ! श्रेष्ठ फूल, श्रेष्ठ भोजन, श्रेष्ठ वस्त्र और श्रेष्ठ पति तुम्हारे योग्य मैं समझता हूं। [ऐसा वैसा नहीं] हे वरानने ! हे

नेह गच्छन्ति गन्धर्वा न देवा न च किंनराः २८
राक्षसानामयं वासः कथं तु त्वमिहागता ।
इह शाखामृगाः सिंहा द्वीपिव्याघ्रमृगा वृकाः २९
ऋक्षास्तरक्षवः कङ्का कथं तेभ्यो न बिभ्यसे ।
मदान्वितानां घोराणां कुञ्जराणां तरस्विनाम् ३०
कथमेका महारण्ये न बिभेषि वरानने ।
काऽसि कस्य कुतश्च त्वं किंनिमित्तं च दण्डकान् ३१
एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षससेवितान् ।
इति प्रशस्ता वैदेही रावणेन महात्मना ३२
द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम् ।
सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिली ३३
उपानीयासनं पूर्वं पाद्येनाभिनिमन्त्र्य च ।
अब्रवीत्सिद्धमित्येव तदा तं सौम्यदर्शनम् ३४

द्विजातिवेषेण समीक्ष्य मैथिली समागतं पात्रकुसुम्भधारिणम्

वरारोहे ! तुम रुद्रों वा मरुतों अथवा वसुओंकी कौन हो ? तुम देवसी मालूम पडती हो । यहां पर न गन्धर्व आते हैं, न देवता और किन्नर क्योंकि यह राक्षसोंका वासस्थान है, तुम यहां कैसे आयी हो यहां वन्दर, सिंह, चीते, व्याघ्र, हरिण, रीछ, तरक्षु (मृगको खा वाले जीव), कङ्क (एक प्रकारका जीव मांसाहारी) आदि हैं, तुम उनसे क्यों नहीं डरतीं ? हे वरानने ! मदयुक्त, घोर, बली, हाथियोंसे इस बडे वनमें अकेली तुम कैसे नहीं डरती हो ? हे कल्याणि ! तुम कौन हो, किनकी हो, कहांसे आई हो, और घोर तथा राक्षसोंसे सेवित दण्डकारण्यमें अकेली क्यों विचरती हो ? " (२३-३१)

इस प्रकार दुष्टात्मा रावण द्वारा प्रशंसित सीता ब्राह्मणके वेषमें आये हुए रावणको देख सब प्रकारके अतिथिके योग्य सत्कारोंसे पूजने लगी। सीताने पहिले आसन देकर और फिर पाद्योंसे सत्कार कर सौम्य रूप जिसका ऐसे रावणसे " पक्वान्न सिद्ध है, अर्थात् भोजन तैयार है

अशक्यमुद्देष्टुमुपायदर्शनान्न्यमन्त्रयद्ब्राह्मणवत्तथागतम् ३५
इयं बृसी ब्राह्मण काममास्यतामिदं च पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति ।
इदं च सिद्धं वनजातमुत्तमं त्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ३६
निमन्त्र्यमाणः प्रतिपूर्णभाषिणीं नरेन्द्रपत्नीं प्रसमीक्ष्य मैथिलीम् ।
प्रसह्य तस्या हरणे दृढं मनः समर्पयामास वधाय रावणः ३७
ततः सुवेषं मृगयागतं पतिं प्रतीक्षमाणा सहलक्ष्मणं तदा ।
निरीक्षमाणा हरितं ददर्श तन्महद्वनं नैव तु रामलक्ष्मणौ ३८
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥[१४८६]

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ।

रावणेन तु वैदेही तदा पृष्टा जिहीर्षुणा ।
परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना १
ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम् ।
इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत् २

यह कहा । तदनन्तर सीताने कमण्डलु और कुसुम्भके वस्त्र धारण किये तथा ब्राह्मणके वेषसे आये हुए उसको देखकर भोजन करानेके अयोग्य तथा हरनेमें है बुद्धि जिसकी ऐसे उस रावणको ब्राह्मणके समान नौता दिया । हे ब्राह्मण ! यह बृसी (मुनियोंका आसन) है, इस पर अच्छी तरह बैठो तथा इस पादोदकको ग्रहण करो और यह वनमें पैदा हुआ सिद्ध उत्तम अन्न तुम्हारे वास्ते है, इसे यहां निश्चिन्त हो भोजन करो ।" नौता दिया है जिसको ऐसे रावणने योग्य वाक्य कहनेवाली रामकी स्त्री सीताको देख कर अपने वध (नाश)के वास्ते बलात्कारसे उसके हरनेमें मनको लगाया। तदनन्तर शिकारके लिये गये, सुन्दर वेषवाले, लक्ष्मण सहित पतिकी प्रतीक्षा करती हुई तथा उसी दिशाको निगाह लगाये सीताने उसी बडे वनको तो देखा, परन्तु राम-लक्ष्मणको न देखा । (३२-३७)

॥ यहाँ ४६ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४६॥

संन्यासीके चिह्नधारी तथा हरनेकी इच्छा करनेवाले रावणने जब सीतासे पूंछा तो सीताने अपनेको बतलाया । यह ब्राह्मण है और अतिथि

दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः ।
सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया ३
उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने ।
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ४
तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामन्त्रयत प्रभुः ।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः ५
तस्मिन्संभ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने ।
कैकेयी नाम भर्तारं ममार्या याचते वरम् ६
परिगृह्य तु कैकेयी श्वशुरं सुकृतेन मे ।
मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ।
द्वावयाचत भर्तारं सत्यसंधं नृपोत्तमम् ७
नाद्य भोक्ष्ये न च स्वप्स्ये न पास्ये न कदाचन ।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ८
इति ब्रुवाणां कैकेयीं श्वशुरो मे स पार्थिवः ।
अयाचतार्थैरन्वर्थैर्न च याञ्चां चकार सा ९

है, न बतानेसे कहीं मुझे शाप न दे, इस तरह सीता थोडी देर तक धरके बोली– ' हे द्विजोत्तम ! मिथिलाके राजा महात्मा जनककी कन्या हूं, सीता मेरा नाम है और रामकी स्त्री हूं, तुम्हारा कल्याण सब कामनाओंसे पूर्ण अमानुष भोगोंको भोगती इक्ष्वाकुओंके अयोध्यामें बारह वर्ष वास करती स्थित रही हूं । तदनन्तर १३ वें राजमन्त्रियोंके साथ राजा दशरथने रामके अभिषेककी सलाह की रामके अभिषेकका प्रारम्भ होनेपर कैकेयी नाम्नी मेरी सास अपने वर मांगने लगी । कैकेयीने अपने सुकर्मसे मेरे ससुरको वशमें करके राजासे दो वर धर्मकी सौगन्द दे मांगे–(१) मेरे पतिका वनको (२) भरतको राजगद्दी होना । मैं आज न खाऊंगी, न सोऊंगी, न पी जो रामका अभिषेक हुआ तो यह मेरे जीवनका अन्त होगा । (१-

इस प्रकार कहती हुई कैकेयीसे मेरे श्वसुर बोले कि ' तुम

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मानि गण्यते १०
रामेति प्रथितो लोके सत्यवाञ्शीलवाञ्शुचिः ।
विशालाक्षो महाबाहुः सर्वभूतहिते रतः ११
कामार्तश्च महाराजः पिता दशरथः स्वयम् ।
कैकेय्याः प्रियकामार्थं तं रामं नाभ्यषेचयत् १२
अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् ।
कैकेयी मम भर्तारमित्युवाच द्रुतं वचः १३
तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव ।
भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम् १४
त्वया तु खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ।
वने प्रव्रज काकुत्स्थ पितरं मोचयानृतात् १५
तथेत्युवाच तां रामः कैकेयीमकुतोभयः ।
चकार तद्वचः श्रुत्वा भर्ता मम दृढव्रतः १६

वर्णादिक ग्रहण करो और इस वरको न मांगो ।' इस प्रार्थनाको उस कैयीने अस्वीकार किया । उस समय बडे तेजस्वी मेरे पति पचीस वर्षके और मेरी अवस्था जन्मसे अठारह वर्षकी थी । " राम " इस नामसे कोंमें प्रसिद्ध हैं । गुणवान् सत्यवान्, पवित्र, विशाल नेत्रवाले, बडी हुवाले, सब प्राणियोंके हित में लगे हैं । महातेजस्वी पिता दशरथने मपीडित हो कैकयीके प्रियकी इच्छासे रामका अभिषेक नहीं किया । भिषेकके वास्ते पिताके समीपमें आये हुए मेरे पति रामसे कैकयी रतायुक्त यह वचन बोली, ' हे राम ! तुम्हारे पिताने जो आज्ञा दी है सुनो-" अकण्टक इस राज्यको भरतके वास्ते दो और तुम्हें वनमें दह वर्ष वास करना चाहिये । " हे राम ! तुम वनको जाओ और ताको झूठसे छुडाओ ।' नहीं है किसी ओरसे भय जिनको ऐसे तथा व्रतधारी मेरे पति रामने कैकैयीसे ' बहुत अच्छा ' यह कह उसके स वचनको पूरा किया । (९-१६)

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयाः सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ।
एतद्ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम् १७
तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ।
रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेरिहा १८
स भ्राता लक्ष्मणो नाम ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः प्रव्रजन्तं मया सह १९
जटी तापसरूपेण मया सह सहानुजः ।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं धर्मनित्यो दृढव्रतः २०
ते वयं प्रच्युता राज्यात्कैकेय्यास्तु कृते त्रयः ।
विचराम द्विजश्रेष्ठः वनं गम्भीरमोजसा २१
समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया २२
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम् ।
रुरून्गोधान्वराहांश्च हत्वादायामिषं बहु २३
स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः ।
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज २४

"हे ब्राह्मण ! रामका यह श्रेष्ठव्रत है कि देते ही हैं और लेते नहीं बोलते हैं, झूठ नहीं कहते । वैरियोंका नाश करनेवाले, पुरुषोंमें ... समान, संग्राममें सहायक, लक्ष्मण नाम बलवान् दूसरी मांसे उत्पन्न ... भाई हैं । वही धर्माचारी, दृढव्रत, धनुष् हाथमें लिये भाई लक्ष्मण ... साथ आये हुए रामके पीछे आये हैं । जटा रखाये तपस्वीके रूपसे ... भाईके साथ धर्मधारी तथा इन्द्रियोंके जीतनेवाले राम दण्डका... आये हैं । हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! कैकेयीके कर्तव्यसे हम तीनों राज्यभ्रष्ट ... अपने तेजसे गम्भीर वनमें विचरते हैं । मुहूर्तमात्र ठहरो और यहां बसो, मेरे पति बहुतसी वनकी चीजें लेकर रुरु (काले हिरण), ... (गोह), वराह (सुअरों) को मारकर आवेंगे । हे द्विज ! तुम ... नाम गोत्र, कुल अच्छी तरह कहो और अकेले दण्डकारण्यमें क्यों ... हो ?" (१७–२४)

एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः ।
प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः २५
येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः ।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः २६
त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम् ।
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते २७
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव २८
लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी ।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि २९
तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विचरिष्यसि ।
न चास्य वनवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि ३०
पञ्च दास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः ।
सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि ३१
रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा ।
प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ३२

रामकी स्त्री सीताके ऐसे कहनेपर राक्षसोंका स्वामी महाबली रावण तीव्र वचन बोला-“ हे सीते ! जिसने देव, असुर और सर्पों समेत लोकोंको डरपाया है, वही मैं रावण नामी राक्षसोंका राजा हूं । हे निन्दारहित ! मैं सुवर्णके समान क्रान्तिवाली और पीत वस्त्रवाली तुझे देखकर अपनी स्त्रियोंमें रति नहीं पाता । तुम इधर उधरसे लाकर इकट्ठी की हुई बहुतसी उत्तम स्त्रियोंकी पटरानी होओ, तुम्हारा कल्याण हो । सागरसे घिरी हुई, पर्वतके मस्तकपर स्थित, समुद्रके बीचमें लङ्का नाम्नी मेरी बडी भारी पुरी है । हे सीते ! वहां मेरे साथ जब वनोंमें विहार करोगी तो हे भामिनि ! इस वनवासकी इच्छा भी न करोगी । हे सीते ! यदि तुम मेरी स्त्री हो जाओगी तो सब गहनोंसे भूषित पांच हजार दासी तुम्हारी सेवा करेंगीं ।” (२५-३१)

महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् ।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ३३
सर्वलक्षणसंपन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् ।
सत्यसंधं महाभागमहं राममनुव्रता ३४
महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ३५
पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम् ।
पृथुकीर्तिं महाबाहुमहं राममनुव्रता ।
त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् ३६
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ३७
पादपान्काञ्चनान्नूनं बहून्पश्यसि मन्दभाक् ।
राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि राक्षस ३८
क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः ।
आशीविषस्य वदनाद् दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ।

तब श्रेष्ठ अङ्गोंवाली तथा रावण द्वारा इस प्रकार बोधित कुपित हुई उस राक्षसका तिरस्कार करके बोली " मैं बडे पर्वतके स... न कांपनेवाले, बडे समुद्रके समान क्षोभरहित तथा इन्द्रके समान ... रामके पीछे चलनेवाली हूं । मैं समस्त लक्षणोंसे युक्त, बडके वृक्षके स... विशेष विस्तारवाले, सत्यप्रतिज्ञावाले और महाभाग्यशाली रामके ... चलनेवाली हूं । मैं महाबाहु, विस्तृत हृदयवाले, सिंहके समान चलने... मनुष्योंमें श्रेष्ठ और सिंहसमान तेजस्वी रामके पीछे चलनेवाली हूं। पूर्ण चन्द्रमाके समान मुंहवाले, राजाको प्यारे, जितेन्द्रिय तथा ... यशःशाली रामकी अनुगामिनी हूं । तू आखिरको गीदड है और ... दुर्लभ सिंहिनीकी इच्छा करता है । सूर्यकी कान्तिके समान तू मुझे ... छू सकता । मन्दभागी तू निश्चय सुवर्णके वृक्षोंको देखता है, हे रावण! ... तू रामकी प्रिय स्त्रीके लेनेकी इच्छा करता है । (६२-३८)

"बलशाली, मृगके शत्रु, भूखे सिंहके मुंहसे या विषधारी सां...

मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि ३९
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान्गन्तुमिच्छसि ।
अक्षि सूच्या प्रमृजासि जिह्वया लेढि च क्षुरम् ४०
राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि ।
अवसृज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि ४१
सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ।
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि ४२
अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ।
कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमिच्छसि ४३
अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ।
रामस्य सदृशीं भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि ४४
यदन्तरं सिंहशृगालयोर्वने यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः ।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ४५
यदन्तरं काञ्चनसीसलोहयोर्यदन्तरं चन्दनवारिपङ्कयोः ।
यदन्तरं हस्तिबिडालयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तथैव च ४६

...खसे दाढ उखाडनेकी इच्छा करता है । श्रेष्ठ पर्वत मन्दराचलको हाथसे ...खाडना चाहता है और कालकूट विषको पीकर आनन्दयुक्त जाना चाहता ... । आंखको सुईसे पोंछता है और जीभसे छुरेको चाटना चाहता है जो तू ...मकी प्रिय पत्नीके लेनेकी इच्छा करता है । कण्ठमें शिला बांधकर ...मुद्रको तैरना चाहता है और सूर्य तथा चन्द्रमा दोनोंको हाथसे उठा ...ना चाहता है जो तू रामकी प्रिय पत्नीको प्रधर्षण करना चाहता है । ...लती हुई अग्निको देखकर भी वस्त्रसे लेजाना चाहता है जो तू कल्याण-...ारिणी रामकी स्त्रीको हरना चाहता है । लोहेके हैं मुख जिनके ऐसे ...शूलोंके ऊपर चलना चाहता है जो तू रामकी स्त्रीको पाना चाहता है । ...जो अन्तर (फर्क) वनके सिंह और शृगालमें है, जो छोटी नदी तथा ...समुद्रमें है और जो श्रेष्ठ मधुपेय तथा कांजीमें है, वही अन्तर रामचन्द्रजी ...और तुझमें है । (३९-४५)

यदन्तरं वायसवैनतेययोर्यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि ।
यदन्तरं हंसकगृध्रयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च
तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावे रामे स्थिते कार्मुकबाणपाणौ ।
हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये वज्रं यथा मक्षिकयावगीर्णम्
इतीव तद्वाक्यमदुष्टभावा सुदुष्टमुक्त्वा रजनीचरं तम् ।
गात्रप्रकम्पाद्व्यथिता बभूव वातोद्धता सा कदलीव तन्वी
तां वेपमानामुपलक्ष्य सीतां स रावणो मृत्युसमप्रभावः ।
कुलं बलं नाम च कर्म चात्मनः समाचचक्षे भयकारणार्थं
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७ [१

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ।

एवं ब्रुवत्यां सीतायां संरब्धः परुषं वचः ।
ललाटे भ्रुकुटिं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह
भ्राता वैश्रवणस्याहं सापत्नो वरवर्णिनि ।

"जो अन्तर सुवर्ण और शीशे-लोहेमें है, जो अन्तर चन्दन ज[ल]
कींचमें है और जो अन्तर हाथी और बिडालमें है वही अन्तर राम[के]
और तुझमें है । जो अन्तर गरुड और कौवेमें है, जो अन्तर जलमुर्ग[े]
मोरमें है और जो सारस तथा गृध्र में है वही अन्तर तुझमें और राम[में]
इन्द्रके समान प्रभाववाले उन रामको धनुष् हाथमें लिये खडे र[हते]
तुझसे हरी हुईभी मैं जीर्णताको नहीं प्राप्त होऊंगी अर्थात् तू मुझे
नहीं कर सकता जैसे (खांडके भ्रमसे) मक्षिकासे खा[य]ा हुआ हीरा
जीर्ण होता (पचता)। " नहीं है दुष्ट स्वभाव जिसका ऐसी सीता
राक्षससे धृष्ट वचन कह कर शरीरके कंपनेसे दुःखित हो गई जैसे [वायुसे]
कंपाई हुई कदली (केला) हो । मृत्युके समान प्रतापी वह रावण [कांपती]
हुई सीताको देखकर डरानेके लिये अपना कुल, बल, नाम और क[र्म]
सुनाने लगा । (४६-५०)

॥ यहाँ ४७ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४७॥

ऐसा कठोर वचन कहती हुई सीतासे भौंह सिकोडकर रावण

रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान् २
यस्य देवाः सगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः ।
विद्रवन्ति सदा भीता मृत्योरिव सदा प्रजाः ३
येन वैश्रवणो भ्राता वैमात्रः कारणान्तरे ।
द्वन्द्वमासादितः क्रोधाद्रणे विक्रम्य निर्जितः ४
मद्भयार्तः परित्यज्य स्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ।
कैलासं पर्वतश्रेष्ठमध्यास्ते नरवाहनः ५
यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम् ।
वीर्यादावर्जितं भद्रे येन यामि विहायसम् ६
मम संजातरोषस्य मुखं दृष्ट्वैव मैथिलि ।
विद्रवन्ति परित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः ७
यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र मारुतो वाति शङ्कितः ।
तीव्रांशुः शिशिरांशुश्च भयात्संपद्यते दिवि ८
निष्कम्पपत्रास्तरवो नद्यश्च स्तिमितोदकाः ।
भवन्ति यत्र तत्राहं तिष्ठामि च चरामि च ९

"हे श्रेष्ठ रङ्गवाली! तेरा कल्याण हो, मैं कुबेरका सौतेला भाई, दशशिर-वाला प्रतापी रावण हूं। जिसके भयसे गन्धर्व, देवता, पिशाच, पक्षी तथा सर्प भयभीत होकर भागते हैं, जैसे मृत्युसे प्रजा। जिसने किसी कारण युद्ध कर दूसरी मां का बेटा कुबेर नामक राजा क्रोधसे रणमें पराक्रमसे जीत[illegible] जिस मेरे भयसे पीडित हुआ कुबेर समृद्धिवाले अपने स्थानको छोडकर कैलास पर्वतपर रहता है, उसीका जो पुष्पक नाम विमान इच्छानुकूल गमन करनेवाला है, हे भद्रे! वह मैंने बलसे छीन लिया हैं, जिससे आकाशमें जाता हूं। हे सीते! रोषयुक्त मेरे मुखको देखते ही इन्द्र आदि देवता डर कर भाग जाते हैं। (१-७)

"जिस जगहपर मैं ठहरता हूं वहां पवनभी शङ्कासे चलता है। तेज किरणोंवाला भी सूर्य भयसे शीतल किरणोंवाला हो जाता है। जिस जगह पर मैं ठहरता तथा विचरता हूं वहांके वृक्षोंके पत्ते नहीं हिलते और

मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा ।
संपूर्णा राक्षसैर्घोरैर्यथेन्द्रस्यामरावती २०
प्राकारेण परिक्षिप्ता पाण्डुरेण विराजिता ।
हेमकक्ष्या पुरी रम्या वैदूर्यमयतोरणा २१
हस्त्यश्वरथसंबाधा तूर्यनादविनादिता ।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः संकुलोद्यानभूषिता २२
तत्र त्वं वस हे सीते राजपुत्रि मया सह ।
न स्मरिष्यसि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि २३
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्दिव्यांश्च वरवर्णिनि ।
न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः २४
स्थापयित्वा प्रियं पुत्रं राज्ये दशरथो नृपः ।
मन्दवीर्यस्ततो ज्येष्ठः सुतः प्रस्थापितो वनम् २५
तेन किं भ्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा ।
करिष्यसि विशालाक्षि तापसेन तपस्विना २६
रक्ष राक्षसभर्तारं कामय स्वयमागतम् ।

नदियोंका जल भी नहीं बहता । समुद्रके दूसरी पार लङ्का नामवाली नगरी है और घोर राक्षसोंसे भरी हुई है जैसे इन्द्रकी अमरावती देवतों सफेद विराजमान परकोटासे घिरी हुई है, सुवर्णकी जिसमें ड्योढी हैं वैदूर्यके जिसमें तोरण (छज्जे) हैं । हाथी, घोडा, रथ इनसे भरी हुई तुरईकी आवाजसे शब्दायमान है और समस्त कामनाओंके देनेवाले हैं जिनके ऐसे वृक्षोंसे भरे हुए बागोंवाली है । हे सीते ! हे राजपुत्रि! मनस्विनि ! वहांपर मेरे साथ वसती हुई तू मनुष्योंकी स्त्री नारियों स्मरण नहीं करेगी । (८-१३)

"हे सुन्दर रूपवाली ! मानुष तथा दिव्य भोगोंको भोगती तू अल्पायु मनुष्य रामका स्मरण नहीं करेगी । राजा दशरथने प्रिय भरतको राज्यपर बैठाकर मन्दपराक्रमी होनेसे यह बडा पुत्र वनको निका है ! हे विशालाक्षि ! राज्यभ्रष्ट हुए, निर्बुद्धि, तपस्वी, कायर रामसे

न मन्मथशराविष्टं प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि १७
प्रत्याख्याय हि मां भीरु पश्चात्तापं गमिष्यसि ।
चरणेनाभिहत्येव पुरूरवसमुर्वशी १८
अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः ।
तव भाग्येन संप्राप्तं भजस्व वरवर्णिनि १९
एवमुक्ता तु वैदेही क्रुद्धा संरक्तलोचना ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम् २०
कथं वैश्रवणं देवं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि २१
अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः ।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः २२
अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् ।
न हि रामस्य भार्यां मामानीय स्वस्तिमान्भवेत् २३
जीवेच्चिरं वज्रधरस्य पश्चाच्छचीं प्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ।

क्या प्रयोजन है ? समस्त राक्षसोंके स्वामी, यदृच्छासे स्वयं ही यहां आये तथा कामबाणोंसे पीडित मुझसे तुम्हें निषेध करना योग्य नहीं । हे भीरु ! मुझसे निषेध करके तुम पश्चात्ताप करोगी जैसे पुरूरवाको चरणसे मारकर उर्वशीने पश्चात्ताप किया था । वह मनुष्य राम युद्धमें मेरी अंगुलीके भी समान नहीं है । हे श्रेष्ठ रूपवाली ! तू अपने भाग्यसे प्राप्त हुए मुझको भज ।" (१४–१९)

इस प्रकार प्रेरित सीता क्रोधित हो लाल नेत्र करके राक्षस राज रावणसे कठोर वाक्य बोली–" सब प्राणियोंसे नमस्करणीय कुबेरको भाई बताकर भी अयोग्य काम करनेकी तुम कैसे इच्छा करते हो ? हे रावण ! वे सब राक्षस अवश्यही नष्ट हो जायँगे जिनका तू कठोर, दुर्बुद्धि, इन्द्रियोंको न जीतनेवाला राजा है । इन्द्रकी स्त्री इन्द्राणीको हरकर जीना सहल है; परन्तु रामकी स्त्री मुझको हरकर जीना नहीं हो सकता । रूपमें अद्वितीय इन्द्राणीको इन्द्रके हाथसे छीनकर चाहे बहुत समय तक जीता

ना मादृशीं राक्षस घर्षयित्वा पीतामृतस्यापि तवास्ति मोक्षः

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे अष्टचत्वारिंशःसर्गः ४८ [१५

एकोनपञ्चाशः सर्गः।

सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान्।
हस्ते हस्तं समाहत्य चकार सुमहद्वपुः १
स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे वाक्यकोविदः।
नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ २
उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः।
आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ३
अर्कं तुद्यां शरैस्तीक्ष्णैर्विभिन्द्यां हि महीतलम्।
कामरूपेण उन्मत्ते पश्य मां कामरूपिणम् ४
एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे।
क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्ते नेत्रे बभूवतुः ५
सद्यः सौम्यं परित्यज्य तीक्ष्णरूपं स रावणः।
स्वं रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ६

रहे, परन्तु हे राक्षस! मुझ सदृश स्त्रीको दूषित करके अमृत पीकर तेरी मुक्ति नहीं हो सकती।" (२०-२४)

॥ यहाँ ४८ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४८॥

प्रतापी रावणने सीताके वचनको सुनकर हाथमें हाथको मा[रकर] अपने शरीरको बढा लिया, तदनन्तर वह फिर सीतासे कठिण वाक्य [कहने लगा] "पागल तूने मेरे बल तथा पराक्रमको नहीं सुना, यह मैं समझता [हूं।] आकाशमें स्थित होकर मैं अपनी भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकता [हूं,] समुद्रको पी सकता हूं और संग्राममें स्थित होकर मृत्युको भी मार [सकता] हूं और पैने बाणोंसे सूर्यको दुःखित कर सकता हूं तथा पृथ्वीतलको [फाड़] सकता हूं। और हे उन्मत्ते! इच्छानुकूल शरीर धारण करनेवाले [और] कामनाओंको पूर्ण करनेवाले मुझे तुम पतिसम देखो।" इस तरह [कहते] हुए क्रोधी रावणके सूर्य तथा अग्निके सदृश काली पुतली तक लाल [नेत्र हो गये]

संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकाञ्चनभूषणः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो नीलजीमूतसंनिभः ७
दशास्यो विंशतिभुजो बभूव क्षणदाचरः ।
स परिव्राजकच्छद्म महाकायो विहाय तत् ८
प्रतिपेदे स्वकं रूपं रावणो राक्षसाधिपः ।
रक्ताम्बरधरस्तस्थौ स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य मैथिलीम् ९
स तामसितकेशान्तां भास्करस्य प्रभामिव ।
वसनाभरणोपेतां मैथिलीं रावणोऽब्रवीत् १०
त्रिषु लोकेषु विख्यातं यदि भर्तारमिच्छसि ।
मामाश्रय वरारोहे तवाहं सदृशः पतिः ११
मां भजस्व चिराय त्वमहं श्लाघ्यः पतिस्तव ।
नैव चाहं क्वचिद्भद्रे करिष्ये तव विप्रियम् १२
त्यज्यतां मानुषो भावो मयि भावः प्रणीयताम् ।
राज्याच्च्युतमसिद्धार्थं रामं परिमितायुषम् १३

...थे। कुबेरके भाई उस रावणने सौम्य भिक्षुरूपको शीघ्रही त्यागकर कालके ...पके सदृश अपने रूपको धारण कर लिया। उसी समय निशाचर रावण ...लनेत्र वाला, श्रीसम्पन्न, तप्त सुवर्णके कुण्डल पहिने, बडे क्रोधसे युक्त, ...ले मेघके सदृश, दश मुख बीसबाहुवाला हो गया। राक्षसोंका स्वामी ...वण छलसे किये हुए संन्यासीके रूपको त्यागकर अपने रूपको धारण ...रके क्रोधसे लाल नेत्रधारी, मेघके समान बडी कायावाला तथा लाल ...वस्त्रधारी हो गया और स्त्रियोंमें रत्न सीताको देखकर खडा हो गया। (...-९)

नीले हैं केशाग्र जिसके, और सूर्यकान्तिके सदृश वर्णवाली तथा ...वस्त्र और गहनोंसे युक्त सीतासे रावण बोला " हे वरारोहे! यदि तुम ...लोकोंमें प्रसिद्ध पतिकी इच्छा करती हो तो मेरा सहारा लो, मैं ही तुम्हारे ...सदृश पति हूं। अधिक समय तकके लिये तू मुझे भज, मैं प्रशंसनीय ...तेरा पति हूं। हे भद्रे! मैं तेरे प्रतिकूल कभी भी न करूंगा। मानुष भाव

कैर्गुणैरनुरक्तासि मूढे पण्डितमानिनि ।
यः स्त्रियो वचनाद्राज्यं विहाय ससुहृज्जनम् २४
अस्मिन्व्यालानुचरिते वने वसति दुर्मतिः ।
इत्युक्त्वामैथिलीं वाक्यं प्रियार्हां प्रियवादिनीम् २५
अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः ।
जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव २६
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः ।
ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना २७
तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं तीक्ष्णदंष्ट्रं महाभुजम् ।
प्राद्रवन्मृत्युसंकाशं भयार्ता वनदेवताः २८
स च मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः ।
प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथः २९
ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वनः ।
अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोहयत्तदा ३०

(रामकी प्रीति)को छोडो और मुझमें प्रीति करो । हे मूढे ! हे अ[...] चतुर समझनेवाली ! राज्यसे भ्रष्ट, असफलमनोरथ, परिमित आ[...] राममें कौनसे गुणोंसे अनुरक्त है जो दुर्मति स्त्रीके वचनसे मित्रयुक्त रा[...] छोडकर इस सर्पादियुक्त वनमें वसता है?" इस प्रकार सीतासे कह [...] काममोहित रावणने प्रिय वचन कहने योग्य तथा प्रिय बोलनेवाली [...] के पास जाकर उसको ग्रहण कर लिया जैसे कि आकाशमें बुध रोहि[...] ग्रहण करे । उस रावणने कमलसदृश नेत्रवाली सीताको बायें [...] बालोंमें तथा दाहिने हाथसे पैरोंमें पकड लिया । मृत्युसदृश, तीक्ष[...] वाले, बडी भुजावाले, पर्वतके समान उस रावणको देखकर वनके [...] भयसे पीडित हो भागने लगे । और वहां पर मायायुक्त, मनोहर, [...] युक्त, तेज शब्द वाला, सुवर्णके पहियों वाला रावणका रथ दि[...] दिया । तदनन्तर कठोर शब्दवाले रावणने सीताको कठिन वा[...] झिडककर गोदमें लेकर रथमें बिठा दिया । (१०-२०)

सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी ।
रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने २१
तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव ।
विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः २२
ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा ।
भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथातुरा २३
हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक ।
ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा २४
जीवितं सुखमर्थं च धर्महेतोः परित्यजन् ।
ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि २५
ननु नामाविनीतानां विनेतासि परंतप ।
कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम् २६
न तु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम् ।
कालोऽप्यङ्गीभवत्यत्र सस्यानामिव पक्तये २७
त्वं कर्म कृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ।
जीवितान्तकरं घोरं रामाद्व्यसनमाप्नुहि २८

रावण द्वारा पकडी हुई, यशस्विनी, दुःखसे पीडित सीता वनमें [दूर] गये हुए रामको 'हे राम !' इस प्रकार पुकारने लगी। कामसे पीडित [राव]ण सर्पिणीके समान लिपटती हुई, कामरहित सीताको लेकर उड चला। [तद]नन्तर राक्षस द्वारा आकाशमें ले जाई जाती हुई, भ्रान्तचित्तवाली, [बेह]ोश सीता पीडितके समान बारंबार चिल्लाने लगी। "हे गुरुके चित्तको [प्रस]न्न करनेवाले, महाबाहो लक्ष्मण ! क्या तुम राक्षससे हरी हुई मुझे [क्य]ों नहीं देखते ? हे परन्तप ! अशिक्षितोंको शिक्षा करनेवाले आप हैं, [फि]र इस पापी रावणको क्यों नहीं शिक्षा देते ? दुर्जन मनुष्यके पापका [फ]ल शीघ्र नहीं दिखाई देता, इसमें कालभी सहकारी हेतु है अर्थात् [का]ल पाकर फल होता है जैसे अनाजके पकनेके लिये काल अपेक्षित [हो]ता है। (२१-२७)

हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैः सह ।
ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः २९
आमन्त्रये जनस्थानं कर्णिकारांश्च पुष्पितान् ।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ३०
हंससारससंघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम् ।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ३१
दैवतानि च यान्यस्मिन्वने विविधपादपे ।
नमस्करोम्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसत मां हृताम् ३२
यानि कानिचिदप्यत्र सत्त्वानि विविधानि च ।
सर्वाणि शरणं यामि मृगपक्षिगणानि वै ३३
ह्रियमाणां प्रियां भर्तुः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।
विवशा ते हृता सीता रावणेनेति शंसत ३४
विदित्वा तु महाबाहुरमुत्रापि महाबलः ।
आनेष्यति पराक्रम्य वैवस्वतहृतामपि ३५
सा तदा करुणावाचो विलपन्ती सुदुःखिता ।

" कालके प्रभावसे चेतनारहित तूने जो यह काम किया है, वि... तुझे रामसे प्राणान्तकारी घोर दुःख प्राप्त होगा । खेद है कि अब बा... सहित कैकेयी सफलमनोरथ हो जायगी जो कि धर्मकी कामना... यशस्वी रामकी धर्मपत्नी मैं हरी जाती हूं । मैं जनस्थानमें खिले ... कन्हेरके वृक्षोंको सम्बोधन करती हूं कि " रावण सीताको हरे लिये ... है" यह तुम शीघ्र रामसे कह देना । हंस और सारस पक्षियोंसे ... गोदावरी नदीको मैं नमस्कार करती हूँ । " सीताको रावण हरे लिये ... रहा है" यह शीघ्रही रामसे कह देना । अनेक प्रकारके वृक्षोंवाले ... वनमें जितने देवता हैं उन सबको मैं नमस्कार करती हूं, मेरे पतिसे ... हरना कह देना । यहां पर जो कोई जीव वास करते हैं और जो ... तथा पक्षिगण हैं, मैं उन सबकी शरण कहती हूं । (२८-३३)

" प्राणोंसे भी प्यारी, हरी हुई मुझको पतिसे कहना कि रा...

वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना ३६
सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता ।
समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहितया गिरा ३७
जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् ।
अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा ३८
नैष वारयितुं शक्यस्त्वया क्रूरो निशाचरः ।
सत्त्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः ३९
रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम ।
लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ४०

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ।४९।[१६००]

पञ्चाशः सर्गः ।

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे ।
निरैक्षद्रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः १
ततः पर्वतशृङ्गाभस्तीक्ष्णतुण्डः खगोत्तमः ।
वनस्पतिगतः श्रीमान्व्याजहार शुभां गिरम् २

विवश हुई सीताको हर लिया । महाबली महाबाहु राम मुझे यहां भी जानकर यमसे हरी हुईंकोभी छीन कर ले आवेंगे । ” तदनन्तर करुण वाणी कहती दुःखित हुई बडे नेत्रवाली सीताने वृक्षपर बैठे हुए गृध्रको देखा । सुन्दर कटिवाली रावणके वशमें प्राप्त हुई वह सीता भयभीत हो उसको देखकर दुःखयुक्त वाणीसे चिल्लाई । “ हे आर्य जटायो ! पापकर्मी इस राक्षससे अनाथके समान निर्दय भावसे हरी हुई मुझे तुम देखो । कठोर, बलवान्, विजयी, आयुधसमेत, दुर्मति यह राक्षस तुमसे वारण नहीं किया जा सकता । अतः हे जटायो ! यह मेरा हरना ज्योंका त्यों सम्पूर्ण राम और लक्ष्मणसे कहना । ” (३४-४०)

॥ यहाँ ४९ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४९॥

इसके बाद कुछ कुछ सोते हुए जटायुने उस शब्दको सुना और शीघ्रही रावण तथा सीताको देखा । तदनु पर्वतशिखरके समान कान्ति-

दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रवः ।
भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि सांप्रतम् ३
जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः ४
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः ।
तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ५
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि ।
कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत् ६
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल ।
निवर्तय गतिं नीचां परदाराभिमर्शनात् ७
न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत् ।
यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ८
अर्थं वा यदि वा कामं शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम् ।
व्यवस्यन्त्यनुराजानं धर्मं पौलस्त्यनन्दन ९
राजा धर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः ।

मान्, पैनी चोंचवाला, वृक्षपर बैठा हुआ, शोभायुक्त जटायु शुभ
बोला– "हे दशग्रीव ! सत्यके आश्रयवाला, प्राचीन धर्ममें स्थित,
बली मैं जटायु नामसे गृध्रराज हूं। हे भाई ! तुम्हें निन्दित कर्म
उचित नहीं है। दशरथात्मज राम महेन्द्र तथा वरुणके तुल्य उपमा
सम्पूर्ण लोकका राजा और लोकोंके हितमें लगा हुआ है। उस लो
की सीता नाम्नी यह यशस्विनी धर्मपत्नी है, जिसको तुम हर करके
चाहते हो। हे महाबली ! धर्ममें स्थित राजा परस्त्रियोंको कैसे छू
है ? उसके लिये तो राजदारा विशेष कर रक्षणीय हैं। परस्त्री
उत्पन्न नीच मतिको छोड दो। (१-७)

"धीर मनुष्य वह काम न करे जिसकी दूसरा निन्दा करे;
जैसी विद्वान्की अपनी स्त्री ऐसी ही दूसरेकी स्त्री रक्षाके योग्य
पौलस्त्यनन्दन ! श्रेष्ठ मनुष्य शास्त्रमें जो नहीं आये ऐसे धर्म,

धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते १०
पापस्वभावश्चपलः कथं त्वं रक्षसां वर ।
ऐश्वर्यमभिसंप्राप्तो विमानमिव दुष्कृती ११
कामस्वभावो यः सोऽसौ न शक्यस्तं प्रमार्जितुम् ।
नहि दुष्टात्मनामार्यमावसत्यालये चिरम् १२
विषये वा पुरे वा ते यदा रामो महाबलः ।
नापराध्यति धर्मात्मा कथं तस्यापराध्यसि १३
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः ।
अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा १४
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः ।
यस्य त्वं लोकनाथस्य हृत्वा भार्यां गमिष्यसि १५
क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा ।
दहेद्दहनभूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा १६
सर्पमाशीविषं बद्ध्वा वस्त्रान्तेनावबुध्यसे ।
ग्रीवायां प्रतिमुक्तं च कालपाशं न पश्यसि १७

कामकी इच्छा नहीं करते । राजा धर्म है, काम है और द्रव्योंका उत्तम खजाना है; क्योंकि शुभ धर्म हो या पाप हो सब राजारूपी जडसे ही चलता है । हे रावण ! पापस्वभाववाला, चालाक, दुष्कृति तू किस प्रकार विमानके तुल्य ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ है ? जो जिसका स्वभाव है वह दूर नहीं किया जा सकता, जैसे दुष्टात्माओंके हृदयमें उपदेश बहुत समय तक नहीं ठहरता । जब तेरे देश तथा नगरमें धर्मात्मा राम कुछ अपराध नहीं करते, तो कैसे उनका तू अपराध करता है ? यदि शूर्पणखाके कारण जनस्थानमें गया हुआ अयोग्यचरित्रवाला खर रामने मार डाला सो ठीक ठीक बतलाइये इसमें रामका क्या दोष है, जिन लोकनाथ रामकी स्त्री लेकर तुम जाते हो ? सीताको जल्दी छोडो । अग्निके समान घोर चक्षुसे राम तुम्हें कहीं जला न देवें जैसे इन्द्रके वज्रने वृत्रासुरको जला दिया था । क्यों तुम कपडेमें विषधारी सर्पको बांधकर नहीं चेतते हो

स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत्।
तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् १८
यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्तिर्न यशो ध्रुवम्।
शरीरस्य भवेत्खेदः कस्तत्कर्म समाचरेत् १९
षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम रावण।
पितृपैतामहं राज्यं यथावदनुतिष्ठतः २०
वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी।
न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि २१
न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः।
हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव २२
युद्ध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण।
शयिष्यसे हतो भूमौ यथा पूर्वं खरस्तथा २३
असकृत्संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः।
न चिराच्चीरवासास्त्वां रामो युधि वधिष्यति २४

और गर्दनमें पडी हुई कालफांसीको नहीं जानते ? हे सौम्य! मनु वह भार उठाना चाहिये जिससे दुःखी न होवे, वही अन्न खाना चा जो बेरोग पच जावे। पृथ्वीपर जिस कामको करके न धर्म होवे, न तथा न यश होवे प्रत्युत शरीरको उलटा खेद होवे तो उस कामको करेगा ? (८-१९)

"हे रावण! पिता और बाबाके राज्यको यथावत् पालते हुए जन्मको साठ हजार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मैं वृद्ध हूं और तुम धनुर्धारी, बाणधारी, कवच पहिने और रथसमेत हो, तथापि सीत लेकर कुशलसे नहीं जाओगे। मेरे देखते हुए तुम सीताको बलसे नहीं जा सकते जैसे कोई न्याययुक्त हेतुओंसे निश्चित वेदश्रुतिको उलटा कर सकता। हे रावण! यदि शूर है तो युद्ध कर और थोडी देर तक तू मरा हुआ पृथ्वीपर सोवेगा जैसे कि पहिले खर सो चुका है। जि अनेक वार संग्राममें दैत्य दानव मारे हैं, चीरवल्कलधारी वह राम

किं तु शक्यं मया कर्तुं गतौ दूरं नृपात्मजौ ।
क्षिप्रं त्वं नश्यसे नीच तयोर्भीतो न संशयः २५
न हि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम् ।
सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महिषीं प्रियाम् २६
अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः ।
जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च २७
तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण ।
वृन्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात् २८
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर २९

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ।५०। [१६२९]

एकपञ्चाशः सर्गः ।

इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः १
स संप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे ।
बभूव वातोद्धतयोर्मेघयोर्गगने यथा २
तद्बभूवाद्भुतं युद्धं गृध्रराक्षसयोस्तदा ।

तुझे संग्राममें मारेंगे । राम लक्ष्मण दूर निकल गये हैं, अतः मैं क्या सकता हूं ? हे नीच ! उनसे भयभीत हुआ तू शीघ्रही नाशको प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं । मेरे जीते जी रामकी प्यारी स्त्री इस कमलाक्षी सीताको नहीं ले जा सकता । मुझे अवश्यही अपने जीवनसे राजा दशरथ और महात्मा रामका प्रिय कार्य करना चाहिये । हे दशग्रीव रावण ! थोडी देर ठहर और देख, डण्ठलसे फलकी भांति तुझे रथसे गिराऊगा । हे निशाचर ! जब तक प्राण हैं तब तक तेरा युद्धरूपी आतिथ्य करूंगा ।” (१०-२९)

॥ यहाँ ५० वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५०॥

जटायु द्वारा इस प्रकार बोधित और क्रुद्ध हुए और कोपसे लाल हो गये हैं जिसके और तपे सुवर्णके हैं कुण्डल जिसके ऐसा क्रोधी

सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ३
ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः।
अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजं महाबलम् ४
स तानि शरजालानि गृध्रः पत्ररथेश्वरः।
जटायुः प्रतिजग्राह रावणास्त्राणि संयुगे ५
तस्य तीक्ष्णनखाभ्यां तु चरणाभ्यां महाबलः।
चकार बहुधा गात्रे व्रणान्पतगसत्तमः ६
अथ क्रोधाद्दशग्रीवो जग्राह दश मार्गणान्।
मृत्युदण्डनिभान्घोराञ्छत्रोर्निधनकाङ्क्षया ७
स तैर्बाणैर्महावीर्यः पूर्णमुक्तैरजिह्मगैः।
बिभेद निशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रं घोरैः शिलीमुखैः ८
स राक्षसरथे पश्यञ्जानकीं बाष्पलोचनाम्।
अचिन्तयित्वा बाणांस्तान्राक्षसं समभिद्रवत् ९
ततोऽस्य सशरं चापं मुक्तामणिविभूषितम्।
चरणाभ्यां महातेजा बभञ्ज पतगोत्तमः १०

रावण गृध्रराजके ऊपरको दौडा। उन दोनोंका उस महावनमें घोर (यु)द्ध हुआ जैसे वायुसे प्रेरित मेघोंका आकाशमें होता है। गृध्र तथा राक्षसका अद्भुत युद्ध हुआ जैसे पङ्खवाले माल्यवान् नामक दो बडे पर्वतोंका युद्ध... तदनन्तर महाबली राक्षसने नालीक, नाराच और विकर्ण नामक महा... बाणोंसे गृध्रराजके ऊपर वर्षा की। पक्षियोंके स्वामी उस गृध्र जटायुने रा... से संग्राममें छोडे हुए बाणसमूहको सहन कर लिया। महाबली पक्षियोंमें श्रेष्ठ जटायुने रावणके शरीरमें पैने नखवाले चरणोंसे अनेक व्रण (घाव) कर दिये। इसके पीछे क्रोधसे रावणने वैरीके मारनेकी इच्छासे मृत्युद(ण्ड)... समान दश बाणोंको ग्रहण किया। (१-७)

महाबली उस रावणने कान तक खेंचकर छोडे हुए, सीधे... वाले, पैने, घोर बाणोंसे गृध्रराजको भेदन किया। आंसूसे भरे नेत्र... सीताको रावणके रथमें देखता हुआ वह गृध्र उन बाणोंकी कुछ चिन्ता...

ततोऽन्यद्धनुरादाय रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
ववर्ष शरवर्षाणि शतशोऽथ सहस्रशः ११
शरैरावारितस्तस्य संयुगे पतगेश्वरः ।
कुलायमभिसंप्राप्तः पक्षिवच्च बभौ तदा १२
स तानि शरजालानि पक्षाभ्यां तु विधूय ह ।
चरणाभ्यां महातेजा बभञ्जास्य महद्धनुः १३
तच्चाग्निसदृशं दीप्तं रावणस्य शरावरम् ।
पक्षाभ्यां च महातेजा व्यधुनोत्पतगेश्वरः १४
काञ्चनोरश्छदान्दिव्यान्पिशाचवदनान्खरान् ।
तांश्चास्य जवसंपन्नाञ्जघान समरे बली १५
अथ त्रिवेणुसंपन्नं कामगं पावकार्चिषम् ।
मणिसोपानचित्राङ्गं बभञ्ज च महारथम् १६
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं छत्रं च व्यजनैः सह ।
पातयामास वेगेन ग्राहिभी राक्षसैः सह १७

र राक्षसके ऊपर दौडा । इसके अनन्तर महातेजस्वी पक्षियोंके स्वामी जटायुने रावणके मोती और मणियोंसे भूषित, बाणयुक्त धनुष्को पैरोंसे तोड डाला । फिर बढे हुए क्रोधवाला रावण दूसरे धनुष्को लेकर सैकडों, हजारों बाणोंकी वर्षा करने लगा । संग्राममें रावणके बाणोंसे ढका हुआ गृध्र घोसलेमें बैठे हुए पक्षीकी तरह शोभित होने लगा । महातेजस्वी उस गृध्रने अपने पङ्खोंसे बाणोंकी वर्षा दूर करके चरणोंसे रावणके बडे धनुष्को तोड डाला । महाबली पक्षियोंके राजा गृध्रने अग्निके समान दीप्त रावणके कवचको पङ्खोंसे नीचे गिरा दिया । (८–१४)

बली गृध्रने रावणके सुवर्णकी झूलोंवाले, पिशाचके सदृश मुखवाले, वेगवान्, खिच्चरोंको युद्धमें मार डाला । उस जटायुने त्रिवेणुवाले, इच्छानुकूल गमन करनेवाले, अग्निसमान दीप्त, मणि तथा सुवर्णसे चित्रित अङ्गवाले बडे रथको भी तोड दिया । गृध्रने चामरों सहित तथा उनके धारण करनेवाले राक्षसोंके सहित पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभित छत्रको

सारथेश्चास्य वेगेन तुण्डेन च महच्छिरः ।
पुनर्व्यपहनच्छ्रीमान्पक्षिराजो महाबलः १८
स भग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अङ्कनादाय वैदेहीं पपात भुवि रावणः १९
दृष्ट्वा निपतितं भूमौ रावणं भग्नवाहनम् ।
साधु साध्विति भूतानि गृध्रराजमपूजयन् २०
परिश्रान्तं तु तं दृष्ट्वा जरया पक्षियूथपम् ।
उत्पपात पुनर्हृष्टो मैथिलीं गृह्य रावणः २१
तं प्रहृष्टं निधायाङ्के रावणं जनकात्मजाम् ।
गच्छन्तं खड्गशेषं च प्रनष्टहतसाधनम् २२
गृध्रराजः समुत्पत्य रावणं समभिद्रवत् ।
समावार्य महातेजा जटायुरिदमब्रवीत् २३
वज्रसंस्पर्शबाणस्य भार्यां रामस्य रावण ।
अल्पबुद्धे हरस्येनां वधाय खलु रक्षसाम् २४
समित्रबन्धुः सामात्यः सबलः सपरिच्छदः ।

भी शीघ्रतासे गिरा दिया । महाबली पक्षिगण गृध्रने रावणके सारथिके पुन शिरको चौंचसे ही काट दिया । भग्नधनुष्वाला, रथरहित, घोडों से ... सारथिसे रहित वह रावण सीताको गोदमें लेकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ... नाश हो गया है वाहन जिसका ऐसे रावणको भूमिपर पडा हुआ देख... प्राणधारी " अच्छा हुआ, अच्छा हुआ " यह कह कर गृध्रराजकी प्रशंसा करने लगे । वृद्धावस्थाके कारण थके हुए गृध्रराजको देख कर प्रसन्न हुआ रावण सीताको लेकर फिर उड चला । (१५–२१)

महातेजस्वी गृध्रराज जटायुने उडकर खड्ग छोडकर शेष सब हथि... यार जिसके नष्ट हो गये हैं ऐसे और आनन्दपूर्वक जाते हुए रावणके ... जाकर और उसे रोककर यह कहा कि– " कमबुद्धिवाले रावण ! व... समान लगते हैं बाण जिनके ऐसे रामकी इस स्त्रीको राक्षसोंके नाश... लिये तू हरता है । मित्र तथा कुटुम्बियों, मन्त्रियों और सेना समेत ...

विषपानं पिबस्येतात्पिपासित इवोदकम् २५
अनुबन्धमजानन्तः कर्मणामविचक्षणाः ।
शीघ्रमेव विनश्यन्ति यथा त्वं विनशिष्यसि २६
बद्धस्त्वं कालपाशेन क गतस्तस्य मोक्ष्यसे ।
वधाय वडिशं गृह्य सामिषं जलजो यथा २७
नहि जातु दुराधर्षौ काकुत्स्थौ तव रावण ।
धर्षणं चाश्रमस्यास्य क्षमिष्येते तु राघवौ २८
यथा त्वया कृतं कर्म भीरुणा लोकगर्हितम् ।
तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः २९
युद्धस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण ।
शयिष्यसि हतो भूमौ यथा भ्राता खरस्तथा ३०
परेतकाले पुरुषो यत्कर्म प्रतिपद्यते ।
विनाशायात्मनोऽधर्म्यं प्रतिपन्नोऽसि कर्म तत् ३१
पापानुबन्धो वै यस्य कर्मणः को नु तत्पुमान् ।
कुर्वीत लोकाधिपतिः स्वयंभूर्भगवानपि ३२

नुगामियों सहित तू विषपान करता है जैसे कि प्यासा मनुष्य जलको ता है । कर्मोंके फलको न जाननेवाले मूड मनुष्य शीघ्र ही नाशको प्राप्त ते हैं जैसे कि तू नाशको प्राप्त होगा । कालपाशसे बंधा हुआ तू उस मसे कहां जाकर छूटेगा ? अर्थात् कहीं भी जाय तो भी नहीं बच सकेगा से कि मछली मांसयुक्त बडिश (कांटा) को खाकर कहीं भी जावे तो ी नहीं बच सकती । हे रावण ! किसीसे न जीते जानेवाले रघुवंशी राम क्ष्मण इस आश्रमका नाश करना अर्थात् सीताका अपमान कभी भी हन नहीं करेंगे । (२२–२८)

" डरे हुए तूने लोकनिन्दित जैसा कर्म किया है वह चोरोंका मार्ग , वीरोंका नहीं । हे रावण ! यदि शूर है तो युद्ध कर और थोडी देर तक हर, तू मरा हुआ भूमिपर सोवेगा जैसे कि तेरा भाई खर सो गया । रनेके समयमें मनुष्य जैसा कर्म अपने नाशके लिये करता है, उसी तरह

एवमुक्त्वा शुभं वाक्यं जटायुस्तस्य रक्षसः ।
निपपात भृशं पृष्ठे दशग्रीवस्य वीर्यवान् ३३
तं गृहीत्वा नखैस्तीक्ष्णैर्विददार समन्ततः ।
अधिरूढो गजारोहो यथा स्याद् दुष्टवारणम् ३४
विददार नखैरस्य तुण्डं पृष्ठे समर्पयन् ।
केशांश्चोत्पाटयामास नखपक्षमुखायुधः ३५
स तदा गृध्रराजेन क्लिश्यमानो मुहुर्मुहुः ।
अमर्षस्फुरितोष्ठः सन्प्राकम्पत च राक्षसः ३६
संपरिष्वज्य वैदेहीं वामेनाङ्केन रावणः ।
तलेनाभिजघानार्तो जटायुं क्रोधमूर्च्छितः ३७
जटायुस्तमतिक्रम्य तुण्डेनास्य खगाधिपः ।
वामबाहून्दश तदा व्यपाहरदरिन्दमः ३८
संच्छिन्नबाहोः सद्यो वै बाहवः सहसाभवन् ।
विषज्वालावलीयुक्ता वल्मीकादिव पन्नगाः ३९

अधर्म कार्यको तू कर रहा है । जिस कर्मसे पाप लगे तो लोकोंका मा... स्वयंभू भगवान् होकर भी कौन उस कामको करेगा ?" (२९-३२)

ऐसा शुभ वाक्य कहकर बली जटायु उस दशग्रीव राक्षस राव... पृष्ठ (पीठ) पर बैठ गया । उस रावणको पकडकर पैने नखोंसे ... तरफसे फाडने लगा जैसे कि हाथीवान् हाथीपर बैठकर दुष्ट हाथी... विदारित करता है । नख, पक्ष और मुख ही हैं आयुध जिसका ... जटायु उस रावणकी पीठ पर चोंच रखके नखोंसे पीठको विदीर्ण ... लगा और बालोंको उखाडने लगा । इस तरह गृध्रराज द्वारा वार ... क्लेशको प्राप्त हुआ और क्रोधसे फडक रहा है ओठ जिसका ऐसा रा... कांपने लगा । क्रोधी रावणने सीताको वाम गोदमें लेकर जटायुको ... (थपेडे) से मारा । वैरियोंका नाश करनेवाला पक्षियोंका राजा ज... उसके ऊपर जाकर मुखसे बाईं ओरकी दश बाहुओंको जिनसे कि सीता... गोदमें लिये हुए था, उखाडने लगा । रावणकी भुजा कट जानेपर स...

ततः क्रोधाद्दशग्रीवः सीतामुत्सृज्य वीर्यवान् ।
मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च गृध्रराजमपोथयत् ४०
ततो मुहूर्तं संग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः ।
राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च ४१
तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः ।
पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत् ४२
स च्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा ।
निपपात महागृध्रो धरण्यामल्पजीवितः ४३
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ।
अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता ४४
तं नीलजीमूतनिकाशकल्पं सपाण्डुरोरस्कमुदारवीर्यम् ।
ददर्श लङ्काधिपतिः पृथिव्यां जटायुषं शान्तमिवाग्निदावम् ४५
ततस्तु तं पत्ररथं महीतले निपातितं रावणवेगमर्दितम् ।
पुनश्च संगृह्य शशिप्रभानना रुरोद सीता जनकात्मजा तदा ४६

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥५१॥[१६७५]

एकदम पुनः इस प्रकार बाहें निकल आईं मानो बमीसे विषरूपी ज्वाला-समूहसे युक्त सर्प निकले हैं। (३३-३९)

तदनन्तर क्रोधसे दशग्रीव रावण सीताको छोड़कर मुट्ठी और चरणोंसे गृध्रराजको मारने लगा। राक्षसोंमें मुख्य रावण तथा पक्षियोंमें श्रेष्ठ जटायु अतुल पराक्रमी उन दोनोंका मुहूर्त भर संग्राम हुआ। उस रावणने खड्‌ग लेकर रामके लिये युद्ध करते हुए जटायुके पंख और पार्श्व तथा पैर काट दिये। भयानक कर्म करनेवाले राक्षस द्वारा छिन्न पंखवाला तथा थोड़े जीवनवाला वह गृध्र भूमिपर गिर पड़ा। रक्तसे भीगे हुए जटायुको भूमिपर गिरा देखकर दुःखित हुई सीता भाईके समान उसके पास दौड़ी। लङ्काधिपति रावणने नीले बादलके प्रकाशके समान तथा सुन्दर श्वेत हृदयवाले अत्यन्त पराक्रमी पृथ्वीपर पड़े हुए जटायुको शान्त दावाग्निके समान देखा। तदनु चन्द्रकान्तिके समान मुखवाली जनककी कन्या सीता

द्विपञ्चाशः सर्गः ।

सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्य तम् ।
गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता १
निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वरदर्शनम् ।
अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां परिदृश्यते २
न नूनं राम जानासि महद्व्यसनमात्मनः ।
धावन्ति नूनं काकुत्स्थ मदर्थं मृगपक्षिणः ३
अयं हि कृपया राम मां त्रातुमिह संगतः ।
शेते विनिहतो भूमौ ममाभाग्याद्विहंगमः ४
त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वराङ्गना ।
सुसंत्रस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके ५
तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत् ।
अभ्यधावत वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ६
तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान् ।

भूमिपर पडे हुए, रावणके वेगसे पीडित पक्षीको देखकर वार वार
ङ्गन करके रोने लगी । (४०-४६)

॥ यहाँ ५१ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५१॥

चन्द्रमुखी दुःखित सीता रावण द्वारा आहत गृध्रराजको दे
विलाप करने लगी । " आंख आदिका फडकना, स्वप्न तथा पक्षि
शब्द मनुष्योंके सुख-दुःखमें अवश्यही निमित्त होता है । हे राम!
निश्चय ही अपने ऊपर आये बडे दुःखको आप नहीं जानते ? निश्चय
पक्षी मेरे लिये रामके पासको दौड रहे हैं । मेरी रक्षाके निमित्त आया
पक्षी निश्चयही मेरे भाग्यके दोषसेही रावण द्वारा निहत हुआ भूमिपर
है । हे राम ! हे लक्ष्मण ! आज मुझे बचाओ । " इस प्रकार भय
सीता चिल्लाने लगी मानो सुननेवालोंके पासमें ही चिल्लाती हो । रा
राज रावण गिर गये हैं आभरण तथा माला जिसकी तथा अनाथके
विलपती सीताके पास दौडा । (१-६)

मुञ्च मुञ्चेति बहुशः प्राप तां राक्षसाधिपः ७
क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने ।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः ८
प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम् ।
जगत्सर्वममर्यादं तमसान्धेन संवृतम् ९
न वाति मारुतस्तत्र निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ।
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां देवो दिव्येन चक्षुषा १०
कृतं कार्यमिति श्रीमान्व्याजहार पितामहः ।
प्रहृष्टा व्यथिताश्चासन्सर्वे ते परमर्षयः ११
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः ।
रावणस्य विनाशं च प्राप्तं बुद्ध्वायदृच्छया १२
स तु तां राम रामेति रुदतीं लक्ष्मणेति च ।
जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः १३
तप्ताभरणवर्णाङ्गी पीतकौशेयवासिनी ।
रराज राजपुत्री तु विद्युत्सौदामनी यथा १४

भूमिपर लोटती, बेलकी भांति बडे बडे वृक्षोंको पकडती तथा राम राम पुकारती हुई रामसे वियुक्त सीतासे ' छोड, छोड ' यह कहते हुए राक्षसाधिप कालसदृश रावणने अपने जीवनके नाशार्थ सीताके केशोंको पकड लिया । इस प्रकार सीताका अपमान होनेपर चराचर सम्पूर्ण जगत् अन्धकारसे व्याप्त तथा मर्यादारहित हो गया । उस समय वहांपर वायु नहीं चलता था और सूर्य निष्प्रभ हो गया था । श्रीमान् पितामह (ब्रह्मा) ने दिव्य दृष्टिसे दीन तथा अपहृत सीताको देखकर ' कार्य हो गया ' ऐसा कहा । दण्डकारण्यके रहनेवाले समस्त ऋषि सीताको हरी हुई देख कर तथा रावणका विनाश समय आया जानकर दुःखित तथा हर्षित हुए । ' हा राम ! हा लक्ष्मण ' कह कर रोती हुई सीताको लेकर राक्षसेश्वर रावण आकाशको चल दिया । (७-१३)

तप्त सुवर्णके सदृश वर्णवाली तथा पीले रेशमी वस्त्रको धारण किये

उद्धूतेन च वस्त्रेण तस्याः पीतेन रावणः ।
अधिकं परिबभ्राज गिरिर्दीप्त इवाग्निना ॥ १५
तस्याः परमकल्याण्यास्ताम्राणि सुरभीणि च ।
पद्मपत्राणि वैदेह्या अभ्यकीर्यन्त रावणम् ॥ १६
तस्याः कौशेयमुद्धूतमाकाशे कनकप्रभम् ।
बभौ चादित्यरागेण ताम्रमभ्रमिवातपे ॥ १७
तस्यास्तद्विमलं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम् ।
न रराज विना रामं विनालमिव पङ्कजम् ॥ १८
बभूव जलदं नीलं भित्त्वा चन्द्र इवोदितः ।
सुललाटं सुकेशान्तं पद्मागर्भाभमव्रणम् ॥ १९
शुक्लैः सुविमलैर्दन्तैः प्रभावद्भिरलंकृतम् ।
तस्याः सुनयनं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम् ॥ २०
रुदितं व्यपमृष्टास्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम् ।
सुनासं चारुताम्रोष्ठमाकाशे हाटकप्रभम् ॥ २१
राक्षसेन्द्रसमाधूनं तस्यास्तद्वदनं शुभम् ।

राजपुत्री सीता इस प्रकार शोभित हुईं जैसे प्रकाशमान बिजली। ... पीले तथा उडते हुए सीताके वस्त्रसे अधिक शोभित हुआ जैसे कि ... प्रदीप्त पर्वत। परमकल्याणरूपिणी सीताके रक्तवर्णवाले सुगन्धित कम... रावणके ऊपर गिरने लगे। आकाशमें उडता, स्वर्णसदृश कान्तिमान, ... सीताका रेशमी वस्त्र इस प्रकार शोभित हुआ जैसे कि धूपमें ... अरुणाईसे ताम्रवर्णके बादल। रावणकी गोदमें प्राप्त हुआ, श्रेष्ठ ना... वाला सीताका मुख आकाशमें विना रामके शोभा नहीं देता था जैसे ... नालका कमल। (१४–१८)

काले बादलको भेद कर उदय हुए चन्द्रमाके समान, सुन्... मस्तक और केश जिसमें, विकसित पद्मके तुल्य, निर्दोष, कान्ति... सफेद स्वच्छ दांतोंसे शोभित, रावणकी गोदीमें प्राप्त, रोता हुआ, ... आँसे पूर्ण, देखनेमें चन्द्रतुल्य, प्रिय, सुन्दर नासिकावाला, लाल ओष्ठ...

शुशुभे न विना रामं दिवा चन्द्र इवोदितः २२
सा हेमवर्णा नीलाङ्गं मैथिली राक्षसाधिपम् ।
शुशुभे काञ्चनी काञ्ची नीलं गजमिवाश्रिता २३
सा पद्मपीता हेमाभा रावणं जनकात्मजा ।
विद्युद्घनमिवाविश्य शुशुभे तप्तभूषणा २४
तस्या भूषणघोषेण वैदेह्या राक्षसेश्वरः ।
अभूत्सचपलो नीलः सघोष इव तोयदः २५
उत्तमाङ्गच्युता तस्याः पुष्पवृष्टिः समन्ततः ।
सीताया ह्रियमाणायाः पपात धरणीतले २६
सा तु रावणवेगेन पुष्पवृष्टिः समन्ततः ।
समाधूता दशग्रीवं पुनरेवाभ्यवर्तत २७
अभ्यवर्तत पुष्पाणां धारा वैश्रवणानुजम् ।
नक्षत्रमाला विमला मेरुं नगमिवोत्तमम् २८
चरणान्नूपुरं भ्रष्टं वैदेह्या रत्नभूषितम् ।
विद्युन्मण्डलसंकाशं पपात धरणीतले २९

सुवर्णकीसी कान्तिवाला, मनोहर और राक्षससे भयभीत सीताका मुख आकाशमें इस प्रकार शोभित नहीं हुआ जैसे दिनमें उदय हुआ चन्द्रमा। सुवर्णके समान कान्तिवाली वह सीता नीले अंगवाले राक्षसाधिप रावणके आश्रयमें हुई इस प्रकार शोभित हुई जैसे कि नील गजको सुवर्णकी मेखला (तगडी) पद्मसमान पीतवर्णवाली, स्वर्णकी-सी कान्तिवाली और तप्त सुवर्णके भूषणोंवाली वह जनकात्मजा सीता रावणके पास ऐसी शोभित हुई जैसे बादलोंमें बिजली। (१९-२४)

राक्षसेश्वर रावण उस सीताके गहनोंके शब्दसे चंचलतायुक्त, शब्द करते हुए नीले मेघके तुल्य शोभित हुआ। हरी जाती हुई उस सीताके शिरसे टपकी हुई फूलोंकी वर्षा चहूं ओर पृथ्वीपर पडी। रावणके वेगसे उडाई हुई वह फूलोंकी वर्षा फिर भी रावणकेही ऊपर गिरी। फूलोंकी झडी कुबेरके भाई रावणके समीप हुई जैसे ऊंचे उठे हुए मेरु

तरुप्रवालरक्ता सा नीलाङ्गं राक्षसेश्वरम् ।
प्रशोभयत वैदेही गजं कक्ष्येव काञ्चनी ३०
तां महोल्कामिवाकाशे दीप्यमानां स्वतेजसा ।
जहाराकाशमाविश्य सीतां वैश्रवणानुजः ३१
तस्यास्तान्यग्निवर्णानि भूषणानि महीतले ।
सघोषाण्यवशीर्यन्त क्षीणास्तारा इवाम्बरात् ३२
तस्याः स्तनान्तराद्भ्रष्टो हारस्ताराधिपद्युतिः ।
वैदेह्या निपतन्भाति गङ्गेव गगनच्युता ३३
उत्पातवाताभिहता नानाद्विजगणायुताः ।
मा भैरिति विधूताग्रा व्याजह्रुरिव पादपाः ३४
नलिन्यो ध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः ।
सखीमिव गतोत्साहां शोचन्तीव स्म मैथिलीम् ३५
समन्तादभिसंपत्य सिंहव्याघ्रमृगद्विजाः ।

पर्वतके समीप नक्षत्रमाला हो । बिजलीके समान चमकता हु रत्नोंसे भूषित और मनोहर शब्दवाला वैदेहीके पैरसे भ्रष्ट (बिछुवा) पृथ्वीपर गिर पडा । प्रवालसदृश वर्णवाली सीताने अङ्गवाले राक्षसको इस प्रकार शोभित कर दिया जैसे सुवर्णकी क (हाथी बांधनेकी जंजीर) हाथीको शोभित करती है। (२५-३०)

कुबेरके भाई रावणने आकाशका आश्रय लेकर अपने दीप्यमान सीताको महोल्का (उत्पातसूचक तारा) के समान हर लि सीताके अग्निके समान चमकते हुए शब्दायमान गहने पृथिवीपर गिरे मानो आकाशसे च्युत तारे गिरते हो। सीताके थनमध्यसे गिरा चन्द्रमाके समान कान्तिवाला हार आकाशसे गिरती हुई गङ्गाके दिखलाई दिया । बढी हुई वायुसे कंपाये, अनेक पक्षियोंसे युक्त हिल रहे हैं अग्रभाग जिनके ऐसे वृक्ष मानो 'मत डरो' ऐसा क थे। टूट गये हैं कमल जिनके और डर गये हैं मीन तथा जलचर जिनके ऐसी कमलिनी मूर्च्छित हुई सखीके समान सीताक

अन्वधावंस्तदा रोषात्सीताच्छायानुगामिनः ३६
जलप्रपातास्रमुखाः शृङ्गैरुच्छ्रितबाहुभिः ।
सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः ३७
ह्रियमाणां तु वैदेहीं दृष्ट्वा दीनो दिवाकरः ।
प्रविध्वस्तप्रभः श्रीमानासीत्पाण्डुरमण्डलः ३८
नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता ।
यत्र रामस्य वैदेहीं सीतां हरति रावणः ३९
इति भूतानि सर्वाणि गणशः पर्यदेवयन् ।
वित्रस्तका दीनमुखा रुरुदुर्मृगपोतकाः ४०
उद्वीक्ष्योद्वीक्ष्य नयनैर्भयादिव विलक्षणैः ।
सुप्रवेपितगात्राश्च बभूवुर्वनदेवताः ४१
विक्रोशन्तीं दृढं सीतां दृष्ट्वा दुःखं तथागताम् ।
तां तु लक्ष्मण रामेति क्रोशन्तीं मधुरस्वराम् ।
अवेक्षमाणां बहुशो वैदेहीं धरणीतलम् ४२

[.]ा करती थीं । सिंह, व्याघ्र, मृग और पक्षी अनेक स्थानोंसे आकर [र]ावणके ऊपर मानो रोष करके सीताकी छायाके पीछे दौडे । जलोंके [झ]रनेही हैं आंसू जिनके ऐसे मुखवाले और शिखरही हैं उठी हुई [भु]जा जिनकी ऐसे पर्वत सीताके हरे जानेपर मानो चिल्लाते थे । (३१-३७)

शोभावाला सूर्य हरी हुई सीताको देखकर प्रभाहीन श्वेतमण्डल[वा]ला हो गया । वहां धर्म नहीं है, सत्य नहीं है, आर्जव नहीं है, दया [न]हीं है, जहां रामकी स्त्री सीताको रावण हरता है । इस तरह समस्त [प्रा]णी बहुशः विलाप करने लगे । डरे हुए, दीनमुखवाले, आंसुओंके [गि]रनेसे मैले हो गये हैं नेत्र जिनके ऐसे हिरणोंके बच्चे नेत्रोंसे सीताको [दे]ख देख कर रोने लगे । ऐसे दुःखको प्राप्त हुई 'हे राम ! हे लक्ष्मण ! [इ]स प्रकार मधुर आवाजसे चिल्लाती, बार बार पृथ्वीको देखती हुई [सी]ताको देखकर वनके देवताओंके शरीर कांपने लगे। उस रावणने

स तामाकुलकेशान्तां विप्रमृष्टविशेषकाम् ।
जहारात्मविनाशाय दशग्रीवो मनस्विनीम्
ततस्तु सा चारुदती शुचिस्मिता विनाकृता बन्धुजनेन मैथिली
अपश्यती राघवलक्ष्मणावुभौ विवर्णवक्त्रा भयभारपीडिता

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥५२॥ [१७१

त्रिपञ्चाशः सर्गः ।

खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा ।
दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी १
रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम् ।
रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत् २
न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण ।
ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ३
त्वयैव नूनं दुष्टात्मन्भीरुणा हर्तुमिच्छता ।
ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ४

खुले हुए केशोंवाली और नष्ट हो गये हैं तिलक फूल जिसके पतिव्रता सीताको अपने नाशके लिये हरण किया । तदनन्तर दांतवाली, मन्द मुसकानवाली, अपने मनुष्योंसे अलग की गई, पीडित, राम, लक्ष्मण दोनोंको न देखती हुई, मुरझाये हुए मुख सीता अतिशय भयसे पीडित हुई । (३८–४४)

यहां ५२ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

कम्पित हुई तथा बडे भयमें वर्तमान जनककी कन्या आकाशमें उडते हुए उसे देखकर दुःखित हो गई । रोषसे तथा लाल हो गये हैं नेत्र जिसके ऐसी और हरी गई सीता भयङ्कर नेत्र राक्षससे रोती हुई करुणायुक्त वचन बोली, "हे नीच ! इस तू लज्जित नहीं होता है, हे रावण ! जो तू मुझे अकेली जानकर भागा जा रहा है? रे दुष्टात्मन् ! डरते हुए तथा मुझे हरनेकी इच्छा हुए तुझनेही मृगरूपी मायासे मेरे पतिको दूर किया था और जो

यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः ।
गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम ५
परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम ।
विश्राव्य नामधेयं हि युद्धेनास्मि जिता त्वया ६
ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे ।
स्त्रियाश्चाहरणं नीच रहिते च परस्य च ७
कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम् ।
सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौटीर्यमानिनः ८
धिक्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा ।
कुलाक्रोशकरं लोके धिक्ते चारित्रमीदृशम् ९
किं शक्यं कर्तुमेवं हि यज्जवेनैव धावसि ।
मुहूर्तमपि तिष्ठ त्वं न जीवन्प्रतियास्यसि १०
नहि चक्षुःपथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः ।
ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ११
न त्वं तयोः शरस्पर्शं सोढुं शक्तः कथंचन ।

बचानेको उद्यत हुआ था तथा मेरे श्वसुरका पुराना मित्र था वह गृध्रराज भी तूने मार डाला । हे राक्षसाधम ! तेरा पराक्रम अधिक दिखाई पडता है जिससे ' मैं रावण हूं ' इस प्रकार अपना नाम सुनाकर युद्धमें मुझे जीत लिया ! हे नीच ! अकेलेमें पराई स्त्रीका हरना रूप निन्दित कर्मको करके तू लज्जित क्यों नहीं होता ? (१-७)

" अपनेको शूर माननेवाले तेरे इस खोटे तथा अधर्मयुक्त कर्मको मनुष्य संसारमें निन्दित कहेंगे । जो तूने शूरता कही थी, उस शूरता तथा बलको धिक्कार है ! कुलमें बुराई पैदा करनेवाले तेरे ऐसे चालचलन को भी धिक्कार है ! हे दुष्टात्मन् ! जब तू इस वेगसे दौडता चला जा, रहा है तो राम तेरे विषयमें क्या कर सकते हैं ? थोडी देर तो ठहर जा फिर जीता नहीं लौट सकेगा । उन दोनों राजपुत्र राम-लक्ष्मणके नेत्रोंके सामने आकर सेनासमेत भी तू मुहूर्त भर नहीं जी सकता । उन दोनोंके

वने प्रज्वलितस्येव स्पर्शमग्नेर्विहङ्गमः १२
साधु कृत्वाऽऽत्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण १३
मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धो भ्रात्रा सह पतिर्मम ।
विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि १४
येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि ।
व्यवसायस्तु ते नीच भविष्यति निरर्थकः १५
नह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम् ।
उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान्धारयितुं चिरम् १६
न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे ।
मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते १७
मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ।
पश्यामीह हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम् १८
यथा चास्मिन्भयस्थाने न बिभेषि निशाचर ।
व्यक्तं हिरण्मयांस्त्वं हि संपश्यसि महीरुहान् १९
नदीं वैतरणीं घोरां रुधिरौघविवाहिनीम् ।

बाणस्पर्शको सहनेको तू कभी भी समर्थ नहीं है जैसे पक्षी वनमें ज
हुई अग्निको नहीं छू सकते । हे रावण ! अच्छा हो जो तू अपना
समझ मुझे छोड दे । पापी तूने मुझे न छोडा तो मेरे हर लेनेके का
रूठें हुए मेरे पति भाईके साथ हो तेरे नाशके लिये यत्न करेंगे । (८-
" जिस निन्दित कामके लिये तू मुझे बलसे हरना चाहता है, हे
तेरा वह कर्म व्यर्थ जायगा अर्थात् मनोरथ सफल न होगा । देवस
अपने पतिको विना देखे वैरीके वशमें प्राप्त हुई मैं बहुत दिनतक ज
नहीं चाहती । निश्चयही तू अपना प्रिय तथा हित नहीं देखता जैसे म
मृत्युसमयमें विपरीत कर्मोंको करता है । मरणासन्न मनुष्योंको हि
वचन नहीं भाता। मैं आज तुझे गलेमें कालकी फांसी बांधे हुए देखती
रे राक्षस ! जिस हेतुसे तू इस भयके स्थानमें नहीं डरता है, इससे
होता है कि तू सोनेके वृक्ष देख रहा है । रे रावण ! तू लोहूको बहाने

खड्गपत्रवनं चैव भीमं पश्यसि रावण २०
तप्तकाञ्चनपुष्पां च वैदूर्यप्रवरच्छदाम्
द्रक्ष्यसे शाल्मलीं तीक्ष्णामायसैः कण्टकैश्चिताम् २१
नहि त्वमीदृशं कृत्वा तस्यालीकं महात्मनः ।
धारितुं शक्ष्यसि चिरं विषं पीत्वेव निर्घृण २२
बद्धस्त्वं कालपाशेन दुर्निवारेण रावण ।
क्व गतो लप्स्यसे शर्म मम भर्तुर्महात्मनः २३
निमेषान्तरमात्रेण विना भ्रातरमाहवे ।
राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश २४
कथं स राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली ।
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् २५
एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा ।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह २६

तदा भृशार्तां बहु चैव भाषिणीं विलापपूर्वं करुणं च भामिनीम् ।
जहार पापस्तरुणीं विचेष्टतीं नृपात्मजामागतगात्रवेपथुः २७

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥५३॥ [१७४६]

घोर वैतरणी नदी और भयानक तलवारके समान हैं पत्ते जिसमें ऐसे वनको देखेगा । तू शीघ्र तप्तस्वर्णरूपी पुष्पोंवाले, वैदूर्यरूप पत्तेवाले और पैने लोहेके काटोंसे युक्त शाल्मलीके वृक्षको देखेगा । (१५–२१)

" महात्मा उन रामका ऐसा अप्रिय करके तू बहुत समयतक नहीं जी सकेगा जैसे कि घृणारहित मनुष्य विष पीकर नहीं जी सकता । हे रावण ! तू अनिवार्य कालपाशसे बंधा हुआ है, मेरे पति महात्मा रामसे (वैर करके) कहांपर सुख पावेगा ? पलमात्रमें विना भाईके अर्थात् अकेले जिन रामने वनमें चौदह हजार राक्षसोंको मारा था, वही वीर, बली, सब अस्त्रोंमें कुशल, रामचन्द्र प्यारी स्त्रीको हरनेवाले तुझे पैने बाणोंसे क्या नहीं मारेंगे ? " रावणकी गोदमें स्थित भय और शोकयुक्त सीता यह तथा अन्य कठोर वाक्य कहती हुई करुणायुक्त विलाप करने

चतुःपञ्चाशः सर्गः ।

ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाममपश्यती ।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थापन्पञ्च वानरपुङ्गवान् १
तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् ।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च २
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी ।
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ।
संभ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान् ३
पिङ्गाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव ।
विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः ४
स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम् ।
जगाम मैथिलीं गृह्य रुदतीं राक्षसेश्वरः ५
तां जहार सुसंहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ।
उत्सङ्गेनैव भुजगीं तीक्ष्णदंष्ट्रां महाविषाम् । ६

लगी। अत्यन्त पीडित, विलापपूर्वक करुणायुक्त वचन कहनेवाली, क... सहित तडफडाती हुई और उत्पन्न हुआ है कम्पन जिसके शरीरको... सीताको पापी रावण हर ले चला। (२२-२७)

यहाँ ५३ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

हरी जाती हुई तथा किसी सहायकको न देखती हुई सीताने ... शिखरपर बैठे हुए पांच वानरोंको देखा। उनके बीचमें विशालनेत्र... सुन्दर जंघावाली सीताने सुवर्णके समान रेशमी डुपट्टा और श्रेष्ठ गहनोंको... डाल दिया, इस आशयसे कि ये रामसे कह दें। भूषणों सहित वस्त्र... उतारकर उन वानरोंके बीचमें सीताने छोड दिया, सम्भ्रमसे रावण... कर्म नहीं जान पाया। पीत नेत्रवाले उन वानरोंने विशाल नेत्रवाली, चिल्ला... हुई सीताको मानो पलक बन्द नहीं होते ऐसे नेत्रोंसे देखा। राक्षसों... स्वामी रावण रोती हुई सीताको लेकर पम्पाको उल्लङ्घन करके लङ्का... सम्मुख गया। प्रसन्न हुआ रावण अपनी मृत्युरूप सीताको गोदमें... चला जैसे कोई पैनी दाढवाली महाविषैली सर्पिणीको ले जाता हो।(...

वनानि सरितः शैलान्सरांसि च विहायसा ।
स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः ७
तिमिनक्रानिकेतं तु वरुणालयमक्षयम् ।
सरितां शरणं गत्वा समतीयाय सागरम् ८
संभ्रमात्परिवृत्तोर्मी रुद्धमीनमहोरगः ।
वैदेह्यां ह्रियमाणायां बभूव वरुणालयः ९
अन्तरिक्षगता वाचः ससृजुश्चारणास्तथा ।
एतदन्तो दशग्रीव इति सिद्धास्तदाब्रुवन् १०
स तु सीतां विचेष्टन्तीमङ्केनादाय रावणः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः ११
सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम् ।
संरूढकक्ष्यां बहुलां स्वमन्तःपुरमाविशत् १२
तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहसमन्विताम् ।
निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम् १३

वह रावण आकाशमार्गसे वन, नदी, पर्वत और तालाब इन सबको शीघ्र लांघ गया जैसे कि धनुष्से छूटा हुआ बाण । तिमि (एक प्रकारकी मछली) नक्र, इनका गृहरूप वरुण (जल) का अक्षय स्थान, नदियोंको शरण देनेवाला जो सागर है उसे भी पार हो गया। सीताको हर ले जानेके समय समुद्र रावणके दर्शनसे उत्पन्न क्षोभसे तरंगोंसे रहित हो गया तथा उसके मीन और सर्प अन्दर छिप गये । आकाशमें स्थित चारण (देव-योनिविशेष) " सीताका हरनाही है अन्त जिसका ऐसा यह रावण है " ऐसी वाणी कहने लगे और सिद्ध भी इसी तरह कहने लगे । वह रावण शरीरवाली अपनी मृत्युके समान तडफडाती हुई सीताको गोदसे लेकर लङ्कापुरीमें घुस गया । तदनन्तर वह अच्छे प्रकार अलग अलग बने रास्तों-वाली लंकामें पहुंचकर मनुष्योंसे पूर्ण ड्योढीवाले अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ । रावणने काले नेत्रवाली तथा शोक मोहमें तत्पर सीताको बैठा दिया जैसे कि मय दैत्यने मायाकी स्त्रीको बैठा दिया हो । (७-१३)

अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः ।
यथा नैनां पुमान्स्त्री वा सीतां पश्यत्यसंमतः । १४
मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च ।
यद्यदिच्छेत्तदेवास्या देयं मच्छन्दतो यथा १५
या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किंचिदप्रियम् ।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम् १६
तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किं कृत्यमिति चिन्तयन् १७
ददर्शाष्टौ महावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् १८
स तान्दृष्ट्वा महावीर्यो वरदानेन मोहितः ।
उवाच तानिदं वाक्यं प्रशस्य बलवीर्यतः १९
नानाप्रहरणाः क्षिप्रमितो गच्छत सत्वराः ।
जनस्थानं हतस्थानं भूतं पूर्वं खरालयम् २०
तत्रास्यतां जनस्थाने शून्ये निहतराक्षसे ।
पौरुषं बलमाश्रित्य त्रासमुत्सृज्य दूरतः २१

रावणने घोर दृष्टिवाली और पिशाचियोंके समान आका
राक्षसियोंसे इस तरह कहा कि " सीताको मेरी आज्ञा विना कोई
तथा स्त्री न देख पावे । मोती, मणि, सुवर्ण, वस्त्र और गहने तथा
जिस चीजकी इच्छा करे वही इसे देना जैसे कि मुझे देती हो
जो जानकर वा अनजाने सीतासे अप्रिय वचन कहेगी, उसका
मुझे प्यारा न होगा अर्थात् शीघ्र मार डालूंगा । " प्रतापी राव
राक्षसियोंसे ऐसा कहकर अन्तःपुरसे निकलकर " क्या करना चा
यह चिन्ता कर मांसके भोजन करनेवाले महाबली आठ राक्षसोंको
महाबली और वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंको देखक
और पराक्रमसे उनकी प्रशंसा करके बोला । (१४–१९)

" अनेक हथियारोंको बांधे हुए तुम यहांसे शीघ्रही पहिले
खर रहता था, ऐसे शून्य जनस्थानको जाओ । मर गये हैं राक्षस

बहुसैन्यं महावीर्यं जनस्थाने निवेशितम् ।
सदूषणखरं युद्धे निहतं रामसायकैः २२
ततः क्रोधो ममापूर्वो धैर्यस्योपरि वर्धते ।
वैरं च सुमहज्जातं रामं प्रति सुदारुणम् २३
निर्यातयितुमिच्छामि तच्च वैरं महारिपोः ।
नहि लप्स्याम्यहं निद्रामहत्वा संयुगे रिपुम् २४
तं त्विदानीमहं हत्वा खरदूषणघातिनम् ।
रामं शर्मोपलप्स्यामि धनं लब्ध्वेव निर्धनः २५
जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता ।
प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः । २६
अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरेव निशाचरैः ।
कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधं प्रति २७
युष्माकं तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि ।
अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं निवेशिताः २८
ततः प्रियं वाक्यमुपेत्य राक्षसा महार्थमष्टावभिवाद्य रावणम् ।
विहाय लङ्कां सहिताः प्रतस्थिरे यतो जनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः २९

... शून्य जनस्थानमें पुरुषार्थका सहारा लेकर भयको त्यागकर वसना । ... जो बडी भारी सेना जनस्थानमें बसाई थी, वह दूषण तथा खर ...त रामने युद्धमें बाणोंसे मार डाली है । इसके न सहनेसे मेरा क्रोध ...रताके ऊपर वर्तमान है और रामके प्रति कठिन वैर होगया है । मैं ...सीसे उस वैरको निकालना चाहता हूं और वैरीको संग्राममें विना मारे ...हीं सोऊंगा । " (२०–२४)

... "खर और दूषणको मारनेवाले उस रामको मैं मारकर सुखी होऊंगा ...से निर्धन मनुष्य धन पाकर सुखी होता है । जनस्थानपर वसते हुए ... यह अच्छी तरहसे खबर लेना कि वह क्या करता है ? सब राक्षस हो-...यारीसे जाना और रामके मारनेका यत्न सदा करते रहना । मैं संग्राममें ...म्हारे बलको जानता हूं इसीसे जनस्थानमें मैंने तुमको नियुक्त किया है।"

ततस्तु सीतामुपलभ्य रावणः सुसंप्रहृष्टः परिगृह्य मैथिलीम्
प्रसज्ज्य रामेण च वैरमुत्तमं बभूव मोहान्मुदितः स रावण
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः । [१८,

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ।

संदिश्य राक्षसान्घोरान्रावणोऽष्टौ महाबलान् ।
आत्मानं बुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत १
स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणैः प्रपीडितः ।
प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् २
स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः ।
अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां दुःखपरायणाम् ३
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां शोकभारावपीडिताम् ।
वायुवेगैरिवाक्रान्तां मज्जन्तीं नावमर्णवे ४
मृगयूथपरिभ्रष्टां मृगीं श्वभिरिवावृताम् ।
अधोगतमुखीं सीतां तामभ्येत्य निशाचरः ५

तदनन्तर आठ राक्षस बडे अर्थवाले प्रिय वाक्यको सुन रा
नमस्कार कर और लङ्काको त्यागकर छिपे हुए जनस्थानको चल
तदनन्तर सीताको प्राप्त करके प्रसन्न हुआ रावण सीताको ग्रहण
और रामसे वैर बांध करके भी मोहसे आनन्दित हो गया। (२५-३
यहाँ ५४ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

रावण महाबली घोर आठ राक्षसोंको आज्ञा देकर बुद्धिके न
अपनेको कृतार्थ मानने लगा। कामके बाणोंसे बींधा हुआ वह
सीताकी चिन्ता करता हुआ सीताके देखनेको जल्दीसे रमणीक घ
गया। राक्षसोंके स्वामी रावणने उस घरमें प्रविष्ट होकर राक्ष
बीचमें शोकपरायण सीताको देखा। राक्षसराज रावणने आंसुओं
हुआ है मुंह जिसका, शोकातिशयसे पीडित, पवनके झकोरोंसे
डूबती हुई नावके समान, मृगोंके झुंडसे अलग हुई और कुत्तोंद्वारा
हुई हरिणीके समान, अधोमुखी दीन सीताके पास पहुंच कर

तां तु शोकवशाद्दीनामवशां राक्षसाधिपः ।
स बलाद्दर्शयामास गृहं देवगृहोपमम् ६
हर्म्यप्रासादसंबाधं स्त्रीसहस्रनिषेवितम् ।
नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानारत्नसमन्वितम् ७
दान्तकैस्तापनीयैश्च स्फाटिकै राजतैस्तथा ।
वज्रवैदूर्यचित्रैश्च स्तम्भैर्दृष्टिमनोरमैः ८
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
सोपानं काञ्चनं चित्रमारुरोह तया सह ९
दान्तका राजताश्चैव गवाक्षाः प्रियदर्शनाः ।
हेमजालावृताश्चासंस्तत्र प्रासादपङ्क्तयः १०
सुधामणिविचित्राणि भूमिभागानि सर्वशः ।
दशग्रीवः स्वभवने प्रादर्शयत मैथिलीम् ११
दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च नानापुष्पसमावृताः ।
रावणो दर्शयामास सीतां शोकपरायणाम् १२

...वश हुई और दीन सीताको बलात् (इच्छा न होनेपर भी) देवगृहके ...मान सुन्दर घरको दिखलाया। (१-६)

वह गृह अट्टालिका और कमरोंसे पूर्ण, हजारों स्त्रियोंसे सेवित, ...नेक पक्षियोंसे युक्त, अनेक प्रकारके रत्नोंसे संयुक्त, सुवर्णमय, उत्तम ...नेके स्फटिक और चांदीके बने हुए वज्र और वैदूर्यसे चित्रित, देखनेमें ...नोहर खम्भोंसे शोभायमान, देवताओंकी दुन्दुभिके शब्दवाला, तचे ...सुवर्णके तोरणवाला था। तदनु सीताके साथ चित्रित सुवर्णकी सीढियोंपर ...ढा, उस सोपानमार्ग (जीने) में हाथीके दान्तके और चांदीके मनोहर ...वाक्ष (झरोखे) थे और उसके ऊपर सोनेके जालोंसे संयुक्त मकानोंकी ...तारें थीं। रावणने अपने भवनमें चूनाकारी और मणियोंसे चित्रित ...भूमिके भागोंको सीताको सम्पूर्णतासे दिखाया। रावणने शोकपरायण ...सीताको बावडियों, अनेक प्रकारके वृक्षोंसे संयुक्त अल्प सरोंको दिखलाया। (७-१२)

दर्शयित्वा तु वैदेहीं कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम् ।
उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया १३
दश राक्षसकोट्यश्च द्वाविंशतिरथापराः ।
वर्जयित्वा जनान्वृद्धान्बालांश्च रजनीचरान् १४
तेषां प्रभुरहं सीते सर्वेषां भीमकर्मणाम् ।
सहस्रमेकमेकस्य मम कार्यपुरःसरम् १५
यदिदं राज्यतन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी १६
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां मम योऽसौ परिग्रहः ।
तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये १७
साधु किं तेऽन्यथाबुद्ध्या रोचयस्व वचो मम ।
भजस्व माऽभितप्तस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि १८
परिक्षिप्ता समुद्रेण लङ्केयं शतयोजना ।
नेयं धर्षयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः १९
न देवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषु नर्षिषु ।

समस्त भवन दिखाकर पापी रावण सीताको लुभानेकी इच्छा वाक्य बोला, " हे सीते ! यहांपर जो भयानक कर्म करनेवाले बत्तीस करोड राक्षस हैं, उन सबका मैं राजा हूं । वृद्ध और बालक राक्षसोंको छोडकर एक हजार राक्षस तो अकेले मेरे कार्योंको करनेवाले हैं। हे विशालाक्षि ! यह जो मेरा प्रजावर्ग है, वह और मेरा जीवन, ये सब तुझमें स्थित हैं और तुम मेरे प्राणोंसे भी प्यारी हो । मेरी बहुतसी उत्तम स्त्रियोंका जो कुटुम्ब है, उनकी तुम स्वामिनी बनो और हे प्रिय सीते ! मेरी स्त्री बनो । मेरे वचनको पसंद करो, यह ही अच्छा है, अन्यमें बुद्धि करनेसे क्या फल ? इसलिये मुझेही सेवन करो और सन्तापित हुए मुझपर प्रसन्नता करो । (१३–१८)

" समुद्रसे घिरी हुई सौ योजन विस्तारवाली मेरी लङ्का है, इसको इन्द्रसमेत देव और दैत्योंसे भी नष्ट नहीं हो सकती । संसारमें न देवोंमें

अहं पश्यामि लोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत् २०
राज्यभ्रष्टेन दीनेन तापसेन पदातिना ।
किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा २१
भजस्व सीते मामेव भर्ताऽहं सदृशस्तव ।
यौवनं त्वध्रुवं भीरु रमस्वेह मया सह २२
दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने ।
काऽस्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः २३
न शक्यो वायुराकाशे पाशैर्बद्धुं महाजवः ।
दीपमानस्य वाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमलाः शिखाः २४
त्रयाणामपि लोकानां न तं पश्यामि शोभने ।
विक्रमेण नयेद्यस्त्वां मद्बाहुपरिपालिताम् २५
लंकायाः सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय ।
त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचरम् ।
अभिषेकजलक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व च २६

...क्षोंमें, न गन्धर्वोंमें, न पक्षियोंमें मैं ऐसा कोई देखता हूं जो मेरे समान ...लमें होवे । राज्यसे भ्रष्ट, दीन, तपस्वी, अल्पआयुवाले, अल्पतेजस्वी ...नुष्य रामके साथ रह कर क्या करोगी ? हे सीते ! मुझेही सेवो, मैं ...म्हारे सदृश पति हूं । हे भीरु ! यौवन अनिश्चित है, इसलिये मेरे साथ ...मण करो । हे श्रेष्ठ मुखवाली ! रामके दर्शनकी बुद्धि मत कर, हे सीते ! ...नोरथोंसे भी यहांपर आनेकी उनकी क्या शक्ति है ? अर्थात् वे यहां ...आनेका चिन्तन भी नहीं कर सकते । बडे वेगवाला वायु आकाशमें ...ांसियोंसे बांधा नहीं जा सकता और प्रकाशमान अग्निकी निर्धूम ज्वाला ...भी पकडी नहीं जा सकती (१९–२४)

"हे शोभने ! तीनों लोकोंमें मैं ऐसे मनुष्यको नहीं देखता जो मेरी ...बाहुसे रक्षित तुम्हें पराक्रमसे ले जावे । लङ्कामें बैठी हुई तुम इस बडे राज्यका पालन करो, देवता और चराचर मेरे समान तुम्हारी सेवामें होंगे। ...द्दानीके अभिषेकके जलसे भीगी हुई और प्रसन्न हुई तू मेरे साथ रमण

दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद्गतम् ।
यच्च ते सुकृतं कर्म तस्येह फलमाप्नुहि २७
इह सर्वाणि माल्यानि दिव्यगन्धानि मैथिलि ।
भूषणानि च मुख्यानि तानि सेव मया सह २८
पुष्पकं नाम सुश्रोणि भ्रातुर्वैश्रवणस्य मे ।
विमानं सूर्यसंकाशं तरसा निर्जितं रणे २९
विशालं रमणीयं च तद्विमानं मनोजवम् ।
तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथासुखम् ३०
वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शनम् ।
शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने ३१
एवं वदति तस्मिन्सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना ।
पिधायेन्दुनिभं सीता मन्दमश्रूण्यवर्तयत् ३२
ध्यायन्तीं तामिवास्वस्थां सीतां चिन्ताहतप्रभाम् ।
उवाच वचनं वीरो रावणो रजनीचरः ३३
अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते ।

कर। पहिले जो अशुभ कर्म किये थे वे वनवाससे नष्ट हो गये और जो तुम्हारा शुभ धर्म है उसका फल पाओ। हे सीते! यहांपर सब प्रकारके पुष्पादि तथा दिव्य गन्धादि और उत्तम आभूषण विद्यमान हैं, उनको मेरे साथ भोगो। हे श्रेष्ठ कटिवाली! सूर्यके समान प्रकाशवाला जो पुष्पक नामक विमान मेरे भाई कुबेरका था, वह मैंने बलसे जीत लिया। हे सीते! वह विमान बडा है, रमणीय है और उसके समान अन्य कोई नहीं है, उसमें बैठ मेरे साथ सुखपूर्वक विहार करो। हे वरारोहे! हे वरानने! पद्मके समान, उज्ज्वल, श्रेष्ठ, मुख शोकपीडित अच्छा नहीं लगता (२५-३१)

उसके ऐसा कहनेपर श्रेष्ठ स्त्री सीता वस्त्रके किनारेसे चन्द्रके समान मुख ढककर आंसू बहाने लगी। पापी राक्षस रावण ध्यान करती हुई अस्वस्थके समान दीन हुई, चिन्ताने नष्ट कर दी है कान्ति जिसकी

आर्षोऽयं दिवि निष्पन्दो यस्त्वामभिभाविष्यति ३४
एतौ पादौ मया स्निग्धौ शिरोभिः परिपीडितौ ।
प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते ३५
इमाः शून्यमया वाचः शुष्यमाणेन भाषिताः ।
न चापि रावणः कांचिन्मूर्ध्ना स्त्रीं प्रणमेत ह ३६
एवमुक्त्वा दशग्रीवो मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
कृतान्तवशमापन्नो ममयमिति मन्यते ३७

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः॥५५॥[१८१३]

षट्पञ्चाशः सर्गः ।

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता ।
तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत १
राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः ।
सत्यसन्धः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः २
रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ३

सीतासे बोला– " हे सीते ! धर्मका लोप करनेवाली लज्जासे अब बस करो, यह दैवकृत संयोग ऋषिप्रोक्त है, जिससे मैं तुम्हें प्राप्त हुआ । ये बडे यत्नसे तुम्हारे पैर मैं शिरसे छूता हूं, मुझपर शीघ्रही प्रसन्न होओ । मैं तुम्हारे वशमें रहनेवाला दास हूं । कामदेवसे तप्यमान मैंने ये नीच वचन कहे हैं, क्योंकि मैं किसी स्त्रीको शिरसे प्रणाम नहीं करता ।" ऐसा कह यमराजके वश प्राप्त हुआ रावण जनककन्या सीताको " यह मेरी है " यह मानने लगा । (३२-३७)

॥ यहाँ '५५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥'५५॥

पूर्वोक्त प्रकारसे बोधित, भयरहित, शोकसे पीडित सीता तिनकेको बीचमें रखकर रावणसे बोली, " धर्मके अचल सेतुके समान, दशरथ नामवाले राजा प्रसिद्ध हैं । जिनके सत्यप्रतिज्ञावाले पुत्र श्री रामचन्द्र हैं । धर्मात्मा, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध, बडी बाहुओंवाले,

इक्ष्वाकूणां कुले जातः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा यस्ते प्राणान्वधिष्यति ४
प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया वै धर्षिता बलात् ।
शायिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथा खरः ५
य एते राक्षसाः प्रोक्ता घोररूपा महाबलाः ।
राघवे निर्विषाः सर्वे सुपर्णे पन्नगा यथा ६
तस्य ज्याविप्रमुक्तास्ते शराः काञ्चनभूषणाः ।
शरीरं विधमिष्यन्ति गङ्गाकूलमिवोर्मयः ७
असुरैर्वा सुरैर्वा त्वं यद्यवध्योऽसि रावण ।
उत्पाद्य सुमहद्वैरं जीवंस्तस्य न मोक्ष्यसे ८
स ते जीवितशेषस्य राघवोऽन्तकरो बली ।
पशोर्यूपगतस्येव जीवितं तव दुर्लभम् ९
यदि पश्येत्स रामस्त्वां रोषदीप्तेन चक्षुषा ।
रक्षस्त्वमद्य निर्दग्धो यथा रुद्रेण मन्मथः १०
यश्चन्द्रं नभसो भूमौ पातयेन्नाशयेत वा ।

विशाल नेत्रवाले, सब लोकोंके देवता राम मेरे पति हैं। इक्ष्वाकुके [illegible] उत्पन्न हुए, सिंहके समान कन्धोंवाले, बडे तेजस्वी राम भाई ल[illegible] साथ हो तेरे प्राणोंको हरेंगे। यदि मैं उनके सामने ही बलसे हरी [illegible] तो तू संग्राममें मरा हुआ सोता जैसे कि जनस्थानमें खर सो गया [illegible] ये जो घोररूपवाले महाबली राक्षस बतलाये हैं वे रामके होनेपर [illegible] (पराक्रमहीन) हैं, जैसे गरुडके होनेपर सर्प निर्विष हो जाते हैं। [illegible]

"उस रामकी प्रत्यञ्चा (धनुष्यकी डोरी) से छुटे सुवर्णकी [illegible] बाण तेरे शरीरको गिरा देंगे जैसे गंगाकी लहरियाँ किनारेको गिरा दे[illegible] हे रावण ! यद्यपि तू दैत्य तथा देवताओंसे अवध्य है, तथापि रामसे [illegible] वैरको बांधकर जीता नहीं रह सकेगा। बलवान् राम तेरे शेष [illegible] अन्त करनेवाले हैं। यज्ञके खम्भेसे बंधे हुए पशुके समान तेरा [illegible] दुर्लभ है। हे राक्षस ! वह यदि तुझे रोषयुक्त नेत्रोंसे देख लें तो [illegible]

सागरं शोषयेद्वापि स सीतां मोचयेदिह ११
गतासुस्त्वं गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः।
लंका वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति १२
न ते पापमिदं कर्म सुखोदर्कं भविष्यति।
याहं नीता विनाभावं पतिपार्श्वात्त्वया बलात् १३
स हि दैवरसंयुक्तो मम भर्ता महाद्युतिः।
निर्भयो वीर्यमाश्रित्य शून्ये वसति दण्डके १४
स ते वीर्यं बलं दर्पमुत्सेकं च यथाविधम्।
व्यपनेष्यति गात्रेभ्यः शरवर्षेण संयुगे १५
यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः।
तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः १६
मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम।
आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च १७
न शक्या यज्ञमध्यस्था वेदिः स्रुग्भाण्डमण्डिता।
द्विजातिमन्त्रसंपूता चण्डालेनावमर्दितुम् १८

रद्वारा दग्ध मदनके समान नष्ट हो जायगा। जो चन्द्रमाको शसे पृथिवीपर गिरा सकते हैं तथा नाश कर सकते हैं और द्रको भी सुखा सकते हैं वही राम यहांसे सीताको भी छुडा सकतें तू आयुरहित, लक्ष्मीरहित, बलहीन और इन्द्रियशून्य है और तेरेही र्यसे लंका विधवा होगी। (७-१२)

"तेरा यह पापकर्म सुखकर नहीं होगा, जो तूने वनमें मुझे पतिके पसे वियोगिनी कर दिया है। महातेजस्वी देवरसे युक्त मेरे पति के सहारे शून्य दण्डकारण्यमें निर्भय वसते हैं, वे तेरे अहंकार, बल, और विपरीत कर्म इन सबको संग्राममें बाणोंकी वर्षाद्वारा तेरे रसे निकाल देंगे। जब प्राणियोंका दैवकृत विनाश होना होता है, कालके वशमें हो मनुष्य विपरीत कर्म करने लगते हैं। हे नीच राक्षस! हरकर तूने अपने, राक्षसों और अपने अंतःपुरके नाशके लिये यह

तथाऽहं धर्मनित्यस्य धर्मपत्नी दृढव्रता ।
त्वया स्प्रष्टुं न शक्याऽहं राक्षसाधम पापिना १९
क्रीडन्ती राजहंसेन पद्मषण्डेषु नित्यशः ।
हंसी सा तृणमध्यस्थं कथं द्रक्ष्येत मद्गुकम् २०
इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा ।
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस २१
न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः ।
एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोधात्सुपरुषं वचः २२
रावणं जानकी तत्र पुनर्नोवाच किंचन ।
सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम् २३
प्रत्युवाच ततः सीतां भयसंदर्शनं वचः ।
शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान्द्वादश भामिनि २४
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि ।
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः २५

काल प्राप्त किया है। स्रुवा आदि यज्ञपात्रोंसे सुसज्जित, यज्ञके बीचमें ब्राह्मणोंके मंत्रोंसे पवित्र हुई वेदीको जैसे चाण्डाल नहीं छू सकता हे नीच! नित्य धर्मात्मा रामकी पतिव्रता धर्मपत्नी मुझे पापी छू सकता। कमलसमूहोंमें हंसोंके साथ नित्य खेलनेवाली हंसपत्नी नलादिकोंमें रहनेवाले जलमुर्गको कैसे देख सकती है? हे चेष्टारहित इस शरीरको चाहे बांध ले, नष्ट कर, इस शरी जीवनकी मैं रक्षा करना नहीं चाहती, मैं पृथ्वीपर अपनी निन्दा सहूंगी।" (१३–२२)

सीताने रावणसे क्रोधसे इस कठोर वचनको कहकर फि नहीं कहा अर्थात् चुप हो गई। कठोर तथा रोमांचकारी वचनको सुनकर रावणने सीतासे भयप्रद वाक्य कहा, "हे सीते! मेरे वाक्यको सुन, बारह मासका समय मैं तुझे देता सुन्दर हास्यवाली! यदि इतने दिनोंमें भी तू मेरे पास नहीं आवे

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः।
राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् २६
शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विरूपा घोरदर्शनाः।
दर्पमस्यापनेष्यन्तु मांसशोणितभोजनाः २७
वचनादेव तास्तस्य सुघोरा घोरदर्शनाः।
कृतप्राञ्जलयो भूत्वा मैथिलीं पर्यवारयन् २८
स ताः प्रोवाच राजाऽसौ रावणो घोरदर्शनाः।
प्रचल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम् २९
अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति।
तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ३०
तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम्।
आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव ३१
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः।
अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं परिगृह्य तु ३२
सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम्।

...होइये तुझे मेरे प्रातःकालीन भोजनके लिये टुकडे टुकडे करके काट ...लेंगे।" शत्रुओंको रुलानेवाला क्रोधी रावण इस वचनको कहकर ...क्षसियोंसे बोला– "बुरे रूपवाली, घोर दृष्टिवाली, मांस तथा रक्तका ...जन करनेवाली राक्षसियों! तुम शीघ्रही इसके अभिमानको दूर करो।" ...वणके वचनसे ही हाथ जोडे हुए अनेक राक्षसियोंने आकर सीताको घेर ...या। (२२–२८)

भयानक दृष्टिवाला रावण मानो पैरोंके धमाकेसे विदीर्ण करता ...आ पृथ्वीको कंपाकर इस तरह उन राक्षसियोंसे बोला– "इस सीताको ...शोकवाटिकामें ले जाओ, वहां चारों ओरसे घेरकर इसकी रखवाली ...रो। वहांपर इस सीताको डरपा कर अथवा समझा कर वनकी ...थिनीके समान मेरे वशमें लाओ।" इस तरहसे रावणसे आज्ञापित वे ...क्षसी सीताको लेकर अशोकवाटिकाको चली गईं, जो सब कालमें

सर्वकालमदैश्चापि द्विजैः समुपसेविताम्
सा तु शोकपरीताङ्गी मैथिली जनकात्मजा । ३१
राक्षसीवशमापन्ना व्याघ्रीणां हरिणी यथा
शोकेन महता त्रस्ता मैथिली जनकात्मजा । ३२
न शर्म लभते भीरुः पाशबद्धा मृगी यथा
न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली विरूपनेत्राभिरतीव तर्जिता। ३३
पतिं स्मरन्ती दयितं च देवरं विचेतनाभूद्भयशोकपीडिता ।
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥५६॥ [१८

सप्तपञ्चाशः सर्गः । ×

प्रवेशितायां सीतायां लङ्कां प्रति पितामहः ।
तदा प्रोवाच देवेन्द्रं परितुष्टं शतक्रतुम्
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय रक्षसामहिताय च ।
लङ्कां प्रवेशिता सीता रावणेन दुरात्मना
पतिव्रता महाभागा नित्यं चैव सुखैधिता ।

फलनेवाले वृक्षोंसे तथा अनेक प्रकारके फूल और फलोंसे युक्त और मदमत्त रहनेवाले पक्षियोंसे सेवित थी । शोकित जनकात्मजा राक्षसियोंके वशमें इस प्रकार हो गई जैसे व्याघ्रियोंके वशमें हरि जाती है । बडे भारी शोकमें डूबी हुई जनकपुत्री सीता वहांपर नहीं रही जैसे पाश (जाल) में बंधी हुई हरिणी । कुरूप, नेत्रोंवाली राक्षसियोंसे पीडित सीता सुख नहीं पा सकी और प्यारे पति तथा देवरकी याद करके भय तथा शोकसे पीडित हो हो गई । (२९–३६)

यहां ५६ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५६ ॥

सीताके लंकामें पहुंच जानेपर ब्रह्मा प्रसन्न हुए इन्द्रसे "दुरात्मा रावणने सीताको तीनों लोकोंके हितके लिये और रा अहितके लिये लंकामें प्रविष्ट किया है । पतिव्रता, महाभाग्य

× इस सर्गपर 'रामायणतिलक' टीका न होनेसे यह प्रक्षिप्त माना

अपश्यन्ती च भर्तारं पश्यन्ती राक्षसीजनम् ३
राक्षसीभिः परिवृता भर्तृदर्शनलालसा ।
निविष्टा हि पुरी लङ्का तीरे नदनदीपतेः ४
कथं ज्ञास्यति तां रामस्तत्रस्थां तामनिन्दिताम्
दुःखं संचिन्तयन्ती सा बहुशः परिदुर्लभा ५
प्राणयात्रामकुर्वाणा प्राणांस्त्यक्ष्यत्यसंशयम् ।
स भूयः संशयो जातः सीतायाः प्राणसंक्षये ६
स त्वं शीघ्रमितो गत्वा सीतां पश्य शुभाननाम् ।
प्रविश्य नगरीं लंकां प्रयच्छ हविरुत्तमम् ७
एवमुक्तोऽथ देवेन्द्रः पुरीं रावणपालिताम् ।
आगच्छन्निद्रया सार्धं भगवान्पाकशासनः ८
निद्रां चोवाच गच्छ त्वं राक्षसान्संप्रमोहय ।
सा तथोक्ता मघवता देवी परमहर्षिता ९
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं प्रामोहयत राक्षसान् ।
एतस्मिन्नन्तरे देवः सहस्राक्षः शचीपतिः १०
आससाद वनस्थां तां वचनं चेदमब्रवीत् ।

निरन्तर सुखोंसे बढी हुई, अपने पतिको न देखती हुई किन्तु राक्षसियोंको ही देखती हुई, राक्षसियोंसे घिरी और पतिकी इच्छावाली सीता समुद्रके किनारेपर वसी हुई जो लंका है, उसमें स्थित है। रामचन्द्र निन्दारहित लंकामें स्थित सीताको कैसे जानेंगे ? और बहुतसे दुःखोंको याद करती हुई, अतिशय दुर्लभ और जीवनयात्राको न करती हुई वह सीता निःसन्देह प्राणोंको त्याग देगी, तब सीताके प्राण नष्ट होनेपर फिर संशय उत्पन्न हो जायगा। अतः तुम यहांसे शीघ्र जाकर सुन्दर मुखवाली सीताको देखो और लंका नगरीमें जाकर उत्तम हवि सीताको दो।" (१-७)

इसके बाद ब्रह्माद्वारा इस प्रकार प्रेरित, ऐश्वर्यशाली देवेश इन्द्र निद्रादेवीके साथ रावणसे रक्षित लंकामें पहुँचा। इन्द्रने निद्रासे कहा, 'तू जा और राक्षसोंको मोहित कर।' इन्द्रसे इस प्रकार प्रेरित निद्रा-

देवराजोऽस्मि भद्रं ते इह चास्मि शुचिस्मिते ११
अहं त्वां कार्यसिद्ध्यर्थं राघवस्य महात्मनः ।
साहाय्यं कल्पयिष्यामि मा शुचो जनकात्मजे १२
मत्प्रसादात्समुद्रं स तरिष्यति बलैः सह ।
मयैवेह च राक्षस्यो मायया मोहिताः शुभे १३
तस्मादन्नमिदं सीते हविष्यान्नमहं स्वकम् ।
स त्वां संगृह्य वैदेहि आगतः सह निद्रया १४
एतदत्स्यासि मद्धस्तान्न त्वां बाधिष्यते शुभे ।
क्षुधा तृषा च रम्भोरु वर्षाणामयुतैरपि १५
एवमुक्ता तु देवेन्द्रमुवाच परिशंकिता ।
कथं जानामि देवेन्द्रं त्वामिहस्थं शचीपतिम् १६
देवलिङ्गानि दृष्टानि रामलक्ष्मणसंनिधौ ।
तानि दर्शय देवेन्द्र यदि त्वं देवराट् स्वयम् १७
सीताया वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे शचीपतिः ।

देवी बडी आनान्दित हुई और उसने इन्द्रके कार्य-सिद्धिके लिये राक्ष... मोहित (निद्रायुक्त) कर दिया। इसी बीचमें इन्द्राणीके पति... सीताके पास पहुंचे और यह वचन बोले– " हे शुचिस्मिते ! मैं दे... इन्द्र हूं और यहां मैं तेरे पास आया हूं। हे जनकात्मजे ! तू शोक... कर, मैं महात्मा रामकी कार्यसिद्धिके लिये सहायता करूंगा।... प्रसन्नतासे रामचन्द्र सेनासहित समुद्रको पार करेंगे। हे शुभे! मैंने... राक्षसी मायासे मोहित कर दी हैं और हे सीते ! इस कारणसे अपने... हविष्यान्नको लेकर निद्रासहित तुम्हारे पास आया हूं, जो तुम मेरे... लेकर इसे खाओगी तो तुम्हें दश हजार वर्षतक भूख तथा प्यास... सतावेगी। " (८–१५)

इन्द्रद्वारा इस प्रकार बोधित सीता शंकित हो बोली, " मैं... यहां आये तुम्हें इन्द्राणीपति इन्द्र समझूं? मैंने राम–लक्ष्मणके... देवताओंके चिह्न देखे हैं। हे देवेन्द्र ! यदि तुम स्वयं देवराज हो तो मेरे...

पृथिवीं नास्पृशत्पद्भ्यामानिमेषेक्षणानि च १८
अरजोऽम्बरधारी च न म्लानकुसुमस्तथा ।
तं ज्ञात्वा लक्षणैः सीता वासवं परिहर्षिता १९
उवाच वाक्यं रुदती भगवद्राघवं प्रति ।
सह भ्रात्रा महाबाहुर्दिष्ट्या मे श्रुतिमागतः २०
यथा मे श्वशुरो राजा यथा च मिथिलाधिपः ।
तथा त्वामद्य पश्यामि सनाथो मे पतिस्त्वया २१
तवाऽऽज्ञया च देवेन्द्र पयोभूतमिदं हविः ।
अशिष्यामि त्वया दत्तं रघूणां कुलवर्धनम् २२
इन्द्रहस्ताद्गृहीत्वा तत्पायसं सा शुचिस्मिता ।
न्यवेदयत भर्त्रे सा लक्ष्मणाय च मैथिली २३
यदि जीवति मे भर्ता सह भ्रात्रा महाबलः ।
इदमस्तु तयोर्भक्त्या तदाश्नात्पायसं स्वयम् २४
तीव तत्प्राश्य हविर्वरानना जहौ क्षुधादुःखसमुद्भवं च तम् ।

चिह्नोंको दिखलाओ ।" सीताका वचन सुन इन्द्रने वैसाही किया—पैरोंसे पृथ्वीको नहीं छुआ, दृष्टिका पलक लगना बन्द हो गया, दिव्य वस्त्र धारण कर लिये, कभी न मुर्झानेवाले फूलोंकी मालाको पहन लिया। इन चिह्नोंसे इन्द्रको जानकर सीता प्रसन्न हो गईं और रोती हुई ऐश्वर्यशाली राम-लक्ष्मणके प्रति ऐसा कहने लगी कि, "उनके भाई-सहित महाबाहु रामका नाम भाग्यसे आज मैंने सुना । जैसे मेरे ससुर राजा दशरथ थे तथा मेरे पिता जनक थे, हे इन्द्र ! उन्हींके समान आज मैं तुम्हें देखती हूं; क्योंकि मेरे पति आज तुमसे सनाथ हैं और हे देवेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञासे मैं रघुकुलको बढानेवाला, दूधरूप आपका दिया हुआ यह हवि खाऊंगी । " (१६–२२)

सुन्दर हास्यवाली वह सीता इन्द्रके हाथसे उस हविको लेकर पति और देवर लक्ष्मणके लिये निवेदन करने लगी– " यदि महाबली मेरे पति अपने भाईसहित जीते हैं, तो यह भक्तिपूर्वक उनके लिये

इन्द्रात्प्रवृत्तिमुपलभ्य जानकी काकुत्स्थयोः प्रीतमना बभूव
स चापि शक्रस्त्रिदिवालयं तदा प्रीतो ययौ राघवकार्यसिद्धये
आमंत्र्य सीतां स ततो महात्मा जगाम निद्रासहितः स्वमालयं
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्यऽरण्यकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः॥५७॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ।

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम् ।
निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत १
तस्य संत्वरमाणस्य द्रष्टुकामस्य मैथिलीम् ।
क्रूरस्वनोऽथ गोमायुर्विननादस्य पृष्ठतः २
स तस्य स्वरमाज्ञाय दारुणं रोमहर्षणम् ।
शङ्कयामास गोमायोः स्वरेण परिशङ्कितः ३
अशुभं बत मन्येऽहं गोमायुर्वाशते यथा ।
स्वस्ति स्यादपि वैदेह्या राक्षसैर्भक्षणं विना ४
मारीचेन तु विज्ञाय स्वरमालक्ष्य मामकम् ।

हो । " यह कह पश्चात् सीताने उसे भक्षण किया । सुन्दर मुख सीताने उस हविको खाकर भूखसे उत्पन्न हुए दुःखको त्याग दिया इन्द्रसे राम-लक्ष्मणका समाचार सुनकर आनन्दको प्राप्त किया। पश्चात् महात्मा इन्द्र भी प्रसन्न हो रामके कार्यकी सिद्धिके लिये पूछकर निद्राके साथ अपने स्थान स्वर्गको चले गये। (२३-२६)

॥ यहाँ ५७ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

रामचन्द्र इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले, मृगरूपसे विचरते राक्षस मारीचको मारकर शीघ्रही लौटे । जल्दी जल्दी चलते सीताके देखनेके अभिलाषी रामके पीछेसे दुष्ट शब्दवाला शृगाल श्रृगालके शब्दसे शंकित रामचन्द्र दारुण तथा रोमाञ्चकारी सुनकर चिन्ता करने लगे । वे कहने लगे– ' खेद है कि शृगाल शब्द कर रहा है, उसे मैं अशुभ समझता हूं । राक्षसोंके भक्षणसे सीताका कल्याण हो । मृगरूपी मारीचने मेरा स्वर जानकर

विक्रुष्टं मृगरूपेण लक्ष्मणः शृणुयाद्यदि ५
स सौमित्रिः स्वरं श्रुत्वा तां च हित्वाऽथ मैथिलीम् ।
तयैव प्रहितः क्षिप्रं मत्सकाशमिहैष्यति ६
राक्षसैः सहितैर्नूनं सीताया ईप्सितो वधः ७
काञ्चनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तु माम् ।
दूरं नीत्वाऽथ मारीचो राक्षसोऽभूच्छराहतः ८
हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार ह ।
अपि स्वस्ति भवेद् द्वाभ्यां रहिताभ्यां मया वने ९
जनस्थाननिमित्तं हि कृतवैरोऽस्मि राक्षसैः ।
निमित्तानि च घोराणि दृश्यन्तेऽद्य बहूनि च १०
इत्येवं चिन्तयन्रामः श्रुत्वा गोमायुनिःस्वनम् ।
निवर्तमानस्त्वरितो जगामाश्रममात्मवान् ११
आत्मनश्चापनयनं मृगरूपेण रक्षसा ।
आजगाम जनस्थानं राघवः परिशङ्कितः १२
तं दीनमानसं दीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ।
सव्यं कृत्वा महात्मानं घोरांश्च ससृजुः स्वरान् १३

अनुसार शब्द किया था, यदि उसे लक्ष्मण सुनेगा तो मेराही शब्द समझ कर उस शब्दको सुनती हुई सीतासे प्रेषित वह लक्ष्मण शीघ्रही मेरे पास आवेगा। (१-६)

" जिस हेतु मारीच स्वर्णका मृग बनकर, मुझे आश्रमसे दूर ले जाकर मेरे मारनेपर राक्षस हो गया था तथा "हा लक्ष्मण ! मैं मरा" इस वाक्यको कहने लगा था, इससे निश्चय होता है कि इकट्ठे हुए राक्षसोंको सीताका वध इच्छित है। महावनमें मुझसे रहित अकेले उन दोनोंका कल्याण हो । जनस्थानके कारण राक्षसोंने मुझसे वैर कर लिया है। आज बहुतसे घोर अपशकुन दिखाई देते हैं । " श्रृगालका शब्द सुनकर आत्मवान् राम इस प्रकार चिन्ता करते हुए लौट कर शीघ्र-ही आश्रमको चले। मृगरूपी राक्षसने अपनेको दूर कर देनेसे शंकित हुए राम जनस्थानको आये। दुःखी मनवाले मृग तथा पक्षी रामके

तानि दृष्ट्वा निमित्तानि महाघोराणि राघवः ।
ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम् १४
ततो विदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ।
विषण्णः सन्विषण्णेन दुःखितो दुःखभागिना १५
स जगर्हेऽथ तं भ्राता दृष्ट्वा लक्ष्मणमागतम् ।
विहाय सीतां विजने वने राक्षससेविते १६
गृहीत्वा च करं सव्यं लक्ष्मणं रघुनन्दनः ।
उवाच मधुरोदर्कमिदं परुषमार्तवत् १७
अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यत्त्वं विहाय ताम् ।
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित्स्वस्ति भवेदिति १८
न मेऽस्ति संशयो वीर सर्वथा जनकात्मजा ।
विनष्टा भक्षिता वापि राक्षसैर्वनचारिभिः १९
अशुभान्येव भूयिष्ठं यथा प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि लक्ष्मण सीतायाः सामग्र्यं प्राप्नुयामहे २०

पास आये और महात्मा रामकी बाईं तरफ होकर भयंकर शब्द क
लगे । (७–१३)

रामचन्द्रने उन भयानक अपशकुनोंको देखकर कान्तिहीन लक्ष्म
आते हुए देखा । तदनन्तर उद्विग्नमना तथा दुःखी लक्ष्मण उद्वि
चित्तवाले तथा दुःखी रामसे समीपमेंही मिले । इसके बाद बडा भाई
राक्षसोंसे सेवित, स्वजनरहित वनमें सीताको छोडकर आये हुए लक्ष्म
बुरा भला कहने लगे । उसके वामहस्तको पकडकर रामने मधु
(बादमें मीठा) तथा कठोर दुःखयुक्त यह वचन लक्ष्मणको क
(१४–१७)

" अहो ! लक्ष्मण ! तुमने निन्दनीय कर्म किया है, जो सीत
छोडकर यहां आगये। हे सौम्य ! वहां कुशल तो है ? हे वीर ! मुझे इ
किसी प्रकार भी सन्देह नहीं है कि जनकात्मजा किसी हेतुसे विनष्ट
वनचारी राक्षसोंने भक्षण कर ली है, क्योंकि बहुतसे अपशकुन

जीवन्त्याः पुरुषव्याघ्र सुताया जनकस्य वै ।
यथा वै मृगसङ्घाश्च गोमायुश्चैव भैरवम् २१
वाशन्ते शकुनाश्चापि प्रदीप्तामभितो दिशम् ।
अपि स्वस्ति भवेत्तस्या राजपुत्र्या महाबल २२
इदं हि रक्षो मृगसंनिकाशं प्रलोभ्य मां दूरमनुप्रयातम् ।
हतं कथंचिन्महता श्रमेण स राक्षसोऽभून्म्रियमाण एव २३
मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम् ।
असंशयं लक्ष्मण नास्ति सीता हृता मृता वा पथि वर्तते वा २४

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥[१८९९]

नवपञ्चाशः सर्गः ।

स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दीनं शून्यं दशरथात्मजः ।
पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना १
प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह ।
क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः २
राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान्परिधावतः ।

दिखलाई देते हैं । हे पुरुषश्रेष्ठ ! लक्ष्मण ! क्या हम जिती हुई जनकपुत्री सीताको सकुशल पावेंगे ? मृगोंके समूह, शृगाल और पक्षी प्रदीप्त पूर्व दिशामें चारों ओरसे भैरव शब्द करतें हैं । हे महाबलिन् ! क्या राजपुत्री उस सीताका कुशल होगा ? दूर आये हुए मुझे लुभाकर बडे परिश्रमसे मरा मृगरूपी यह मरते समय राक्षस हो गया । मेरा मन दीन तथा प्रसन्नताहीन है और वामनेत्र कुछ विकार करता है । हे लक्ष्मण ! सीताको किसीने हर लिया या वह मर गई अथवा रास्तेमें जा रही है, इसमें सन्देह नहीं है ।" (१८-२४)

॥ यहाँ ५८ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५८ ॥

दशरथपुत्र धर्मात्मा राम वनमें विना सीताके आये हुए लक्ष्मणको पूछने लगे, " हे लक्ष्मण ! दण्डकारण्यको आते हुए मेरे पीछे जो आई थी वह सीता कहां है, जिसे छोड कर तुम यहां आये हो ? राज्यहीन, दीन,

क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा
यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम् । ३
क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा
पतित्वममराणां हि पृथिव्याश्चापि लक्ष्मण । ४
विना तां तपनीयाभां नेच्छेयं जनकात्मजाम्
कच्चिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम । ५
कच्चित्प्रव्राजनं वीर न मे मिथ्या भविष्यति
सीतानिमित्तं सौमित्रे मृते मयि गते त्वयि । ६
कच्चित्सकामा कैकेयी सुखिता सा भविष्यति
सुपुत्रराज्यां सिद्धार्थां मृतपुत्रा तपस्विनी । ७
उपस्थास्यति कौसल्या कच्चित्सौम्येन कैकयीम्
यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं पुनः । ८
संवृत्ता यदि वृत्ता सा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण
यदि मामाश्रमगतं वैदेही नाभिभाषते । ९

दण्डकारण्यमें विचरते हुए मेरे दुःखमें जो सहायक थी, ऐसी सु- शरीरवाली सीता कहां है ? हे वीर ! जिसके विना मैं मुहूर्तमात्र जीना नहीं चाहता, मेरे प्राणोंकी सहायक तथा देवकन्याके समान वह सी- कहां है ? हे लक्ष्मण ! स्वर्णसमान कान्तिवाली जनकसुता सीताके वि- मैं देवताओं तथा समस्त पृथ्वीके आधिपत्यको भी नहीं चाहता। हे सौ- मेरे प्राणोंसे भी प्यारी सीता क्या जीती है ? कहीं मेरा यहां वनमें आ- असत्य तो न हो जायगा ? (१--६)

" हे लक्ष्मण ! क्या सीताके निमित्त मेरे मर जानेपर तथा तु- अयोध्यामें चले जानेपर पूर्णमनोरथा कैकेयी सुखवाली होगी? - हे सौम्य ! क्या शोचनीय कौशल्या मृतपुत्रा होकर पुत्र - राज्यवाली तथा पूर्णकामनावाली कैकेयीके पास रह सकेगी ? हे लक्ष्- यदि सीता जीती है तो मैं आश्रमको फिर जाऊंगा और यदि श्रेष्ठ आ- वाली वह मर गई है तो मैं प्राणोंको त्याग दूंगा । हे लक्ष्मण ! -

पुरः प्रहसिता सीता विनशिष्यामि लक्ष्मण १०
ब्रूहि लक्ष्मण वैदेही यदि जीवति वा न वा।
त्वयि प्रमत्ते रक्षोभिर्भक्षिता वा तपस्विनी ११
सुकुमारी च बाला च नित्यं चादुःखभागिनी।
मद्वियोगेन वैदेही व्यक्तं शोचति दुर्मनाः १२
सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना।
वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् १३
श्रुतश्च मन्ये वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम।
त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः १४
सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने।
प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् १५
दुःखिताः खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः।
तैः सीता निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः १६
अहोऽस्मि व्यसने मग्नः सर्वथा रिपुनाशन।
किं त्विदानीं करिष्यामि शङ्के प्राप्तव्यमीदृशम् १७

आश्रममें प्राप्त मुझसे हंसती हुई सीता सम्भाषण न करेगी तो मैं मर जाऊंगा। हे लक्ष्मण ! यह कहो कि सीता जीती है वा नहीं अथवा तेरे असावधान हो जानेपर राक्षसोंने खा ली ? सुकुमारी, बाला, नित्य सुखी रहनेवाली सीता वियोगसे चिन्ताकुल हो शोक करती थी ? (७-१२)

"सब प्रकारसे कुटिल, दुष्टात्मा और उच्च स्वरसे "हा लक्ष्मण !" कहते हुए राक्षस मारीचने तुम्हें भी भय उत्पन्न कर दिया। मेरे शब्दके तुल्य वह शब्द सीताने सुना है और डरी हुई उसने तुम्हें भेजा है तथा तुम मुझे देखनेके लिये शीघ्र आये हो, मुझे ऐसी शंका होती है। सीताको वनमें छोडते हुए तुमने बुरा किया जो दुष्ट राक्षसोंको बदला लेनेका अवसर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि मांसाहारी राक्षस खरके हननसे दुःखी हुए हैं, उन घोर राक्षसोंने सीता मार डाली होगी। हे शत्रुसूदन ! इस चिन्तामें डूबा हुआ मैं इस प्रकारके होनेवाले दुःखको

इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः ।
आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः १८
विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपं क्षुधाश्रमेणैव पिपासया च ।
विनिःश्वसञ्शुष्कमुखो विषण्णः प्रतिश्रयं प्राप्य समीक्ष्य शून्यं
स्वमाश्रमं स प्रविगाह्य वीरो विहारदेशाननुसृत्य कांश्चित् ।
एतत्तदित्येव निवासभूमौ प्रहृष्टरोमा व्यथितो बभूव २०
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे नवपञ्चाशः सर्गः ॥५९॥[१]

षष्टितमः सर्गः ।

अथाश्रमादुपावृत्तमन्तरा रघुनन्दनः ।
परिपप्रच्छ सौमित्रिं रामो दुःखादिदं वचः १
तमुवाच किमर्थं त्वमागतोऽपास्य मैथिलीम् ।
यदा सा तव विश्वासाद्वने विरहिता मया २
दृष्ट्वैवाभ्यागतं त्वां मे मैथिलीं त्यज्य लक्ष्मण ।
शङ्कमानं महत्पापं यत्सत्यं व्यथितं मनः ३

शंका करता हूं, अब मैं क्या करूंगा ?" (१३–१७)

रामचन्द्र इस प्रकार सीताका चिंतन करते हुए लक्ष्मणसहित शीघ्र जनस्थानमें आये । इस प्रकार लक्ष्मणको बुरा भला कहते हुए तथा भूख प्यास और श्रमसे सूखे मुखवाले, कान्तिरहित राम श्वास लेते हुए आश्रमप्रदेशमें प्राप्त होकर और उसे खाली पाकर, अपने आश्रममें जाकर उसे भी शून्य पाकर तथा सीताके विहारप्रदेशोंमें जाकर, उन्हें खाली पाकर और फिर क्रीडाभूमिमें जाकर, उसे भी शून्य पा रोमांचित हो शोकसे दुःखित हुए । (१८–२०)

॥ यहाँ ५९ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५९॥

इसके बाद मार्गके मध्यमें रघुनन्दन रामने लौटते हुए दुःखित लक्ष्मणसे पुनः पूछा । रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा, " जब कि तुम्हारे विश्वाससे सीताको वनमें छोडा था तो फिर तुम उसे छोड़ क्यों आगये ? हे लक्ष्मण ! सीताको छोडकर आये तुम्हें देखकर

स्फुरते नयनं सव्यं बाहुश्च हृदयं च मे।
दृष्ट्वा लक्ष्मण दूरे त्वां सीताविरहितं पथि ४
एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत् ५
न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाऽहमिहागतः।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः। ६
आर्येणेव परिक्रुष्टं लक्ष्मणेति सुविस्वरम्।
परित्राहीति यद्वाक्यं मैथिल्यास्तच्छ्रुतिं गतम् ७
सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली।
गच्छ गच्छेति मामाशु रुदती भयविक्लवा ८
प्रचोद्यमानेन मया गच्छेति बहुशस्तया।
प्रत्युक्ता मैथिली वाक्यमिदं तत्प्रत्ययान्वितम् ९
न तत्पश्याम्यहं रक्षो यदस्य भयमावहेत्।
निर्वृता भव नास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् १०

सीताके अनिष्टसे मेरा मन व्यथित हुआ था, सो सच हुआ। हे लक्ष्मण! दूरसेही तुम्हें विना सीताके आता देखकर मेरा वाम नेत्र, वाम बाहु तथा हृदय फडकने लगा है।" (१–४)

इस प्रकार बोधित, श्रेष्ठ स्वभाववाला तथा अत्यन्त दुःखमें मग्न हुआ लक्ष्मण दुःखी रामसे बोला, "मैं अपनी इच्छासे सीताको छोडकर नहीं आया हूं; किन्तु उनकेही तीव्र वाक्योंसे प्रेरित हो मैं आपके पास आया हूं। आपके तुल्यही किसीने "हा सीते! हा लक्ष्मण! मुझे बचाओ" इस प्रकार बुलानेका जो शब्द किया था, वह सीताके कानोंमें पहुंच गया। उस आर्त स्वरको सुनकर रोती हुई तथा व्याकुल सीताने आपके प्रेमसे "जाओ जाओ" इस प्रकार मुझे कहा। 'जाओ' इस प्रकार सीताद्वारा बहुत वार प्रेरित मैंने आपके विश्वाससे युक्त यह वाक्य सीताके प्रति कहा। 'मैं उस राक्षसको नहीं देखता जो रामको भय देवे। तुम सुखी होओ, यह उनका शब्द नहीं; किन्तु किसी अन्यने

विगर्हितं च नीचं च कथमार्योऽभिधास्यति।
त्राहीति वचनं सीते यस्त्रायेत्त्रिदशानपि
किंनिमित्तं तु केनापि भ्रातुरालम्ब्य मे स्वरम्। ११
विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण त्राहि मामिति
राक्षसेनेरितं वाक्यं त्रासात्त्राहीति शोभने। १२
न भवत्या व्यथा कार्या कुनारीजनसेविता
अलं विक्लवतां गन्तुं स्वस्था भव निरुत्सुका। १३
न चास्ति त्रिषु लोकेषु पुमान्यो राघवं रणे
जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत्। १४
अजेयो राघवो युद्धे देवैः शक्रपुरोगमैः
एवमुक्ता तु वैदेही परिमोहितचेतना। १५
उवाचाश्रूणि मुञ्चन्ती दारुणं मामिदं वचः
भावो मयि तवात्यर्थं पाप एव निवेशितः। १६
विनष्टे भ्रातरि प्राप्तुं न च त्वं मामवाप्स्यसे १७

इस प्रकार कहा है। जो देवताओंको बचानेवाले हों, वे आर्य 'हे सीते! बचाओ' ऐसे निन्दनीय कुत्सित वचनको क्यों क (५-११)

"हे शोभने! किसी राक्षसने किसी कारणसे 'बचाओ, ब ऐसा शब्द किया है। 'हे लक्ष्मण! मुझे बचाओ' यह वाक्य तु कहा गया है, अतः हे सीते! आपको दुष्ट स्त्रियोंसे सेवित व्य करनी चाहिये। अब व्याकुलता छोडो और मेरे कथनका अवलम्ब के मेरे भजनेमें उद्योगहीन हो। तीनों लोकोंमें उत्पन्न हुआ या होनेवाला ऐसा पुरुष नहीं है जो संग्राममें रामको जीत सके। इन्द्रादि देवताओंसे भी राम नहीं जीते जा सकते।' इस प्रकार कलुषित बुद्धिवाली तथा आंसुओंको बहाती हुई सीताने मुझसे दारुण वचन कहा था। 'भाईके मर जानेपर मुझे प्राप्त करनेके मेरे विषयमें कुत्सित भाव स्थापित किया है; किन्तु तू मुझे नहीं

संकेताद्भरतेन त्वं रामं समनुगच्छसि ।
क्रोशन्तं हि यथात्यर्थं नैनमभ्यवपद्यसे १८
रिपुः प्रच्छन्नचारी त्वं मदर्थमनुगच्छसि ।
राघवस्यान्तरं प्रेप्सुस्तथैनं नाभिपद्यसे १९
एवमुक्तस्तु वैदेह्या संरब्धो रक्तलोचनः ।
क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठ आश्रमादभिनिर्गतः २०
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं रामः संतापमोहितः ।
अब्रवीद्दुष्कृतं सौम्य तां विना त्वमिहागतः २१
जानन्नपि समर्थं मां रक्षसामपवारणे ।
अनेन क्रोधवाक्येन मैथिल्या निर्गतो भवान् २२
न हि ते परितुष्यामि त्यक्त्वा यदसि मैथिलीम् ।
क्रुद्धायाः परुषं श्रुत्वा स्त्रिया यत्त्वमिहागतः २३
सर्वथा त्वपनीतं ते सीतया यत्प्रचोदितः ।
क्रोधस्य वशमागम्य नाकरोः शासनं मम २४
असौ हि राक्षसः शेते शरेणाभिहतो मया ।

भरतके इशारेसे तू रामके पीछे फिरता है। इसलिये अतिशय चिल्लाते रामके पास नहीं जाता है। मौकेको चाहनेवाला तथा छिपा हुआ तू मेरे लियेही रामके पीछे फिरता है, किन्तु इस मनोरथको प्राप्त न ा।' तब सीतासे इस प्रकार प्रेरित हुआ, क्रोधित, लाल नेत्रोंवाला, धसे फडकते हुए ओष्ठोंवाला मैं आश्रमसे निकल दिया।" (१२-२०)
दुःखसे मोहित राम इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणको कहने लगे कि, हे सौम्य! तुमने बुरा किया जो बिना सीताके यहां आगये। राक्षसोंके ारणमें मुझे समर्थ जानते हुए भी मैथिलीके इस क्रोधवचनसे तुम आये। क्रुद्ध हुई स्त्रीके वचनको सुनकर जो तुम यहां आये हो और थलीको छोडकर मुझे प्राप्त हुए हो तो मैं तुम्हारे इस कर्मसे प्रसन्न नहीं सब प्रकार तुम्हारी यह अपनीति है, जो सीतासे प्रेरित तथा क्रोधके में प्राप्त तुमने मेरी आज्ञा पूर्ण नहीं की। मुझद्वारा तीरसे मरा हुआ

मृगरूपेण येनाहमाश्रमादपवाहितः
विकृष्य चापं परिधाय सायकं सलीलबाणेन च ताडितो मृ
मार्गीं तनुं त्यज्य च विक्लवस्वरो बभूव केयूरधरः स राक्षसः
शराहतेनैव तदार्तया गिरा स्वरं ममालम्ब्य सुदूरसुश्रवम्।
उपाहृतं तद्वचनं सुदारुणं त्वमागतो येन विहाय मैथिलीम्
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥६०॥ [१

एकषष्टितमः सर्गः।

भृशमाव्रजमानस्य तस्याधो वामलोचनम्।
प्रास्फुरच्चास्खलद्रामो वेपथुश्चास्य जायते १
उपालक्ष्य निमित्तानि सोऽशुभानि मुहुर्मुहुः।
अपि क्षेमं तु सीताया इति वै व्याजहार ह २
त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः।
शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः ३
उद्भ्रमन्निव वेगेन विक्षिपन् रघुनन्दनः।

यह राक्षस सोता है अर्थात् मरा पडा है जिसने मृगरूपसे मैं आश्रमसे
किया था। धनुष्यको तानकर तथा बाण चढा लीलायुक्त बाणसे मुझ
ताडित वह राक्षस मृगके शरीरको त्यागकर दीनस्वरयुक्त तथा केयूर
हो गया। शरसे पीडित उसीने दूरतक सुनाई देनेवाले मेरे शब्दके
शब्दका अवलम्बन करके दीन वाणीसे बडा कठोर वह वचन क
जिससे सीताको त्यागकर तुम यहां आगये।" (२१–२७)

॥ यहाँ ६० वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

आते हुए रामके वाम नेत्रका अधोभाग बार बार फडकने लगा,
राम स्वयं गिरने लगे और उन्हें कपकपी होने लगी। वे अशुभ नि
देखकर 'क्या सीताका क्षेम है?' इस प्रकार राम बार बार कहने
इसके बाद सीताके देखनेकी लालसावाले राम शीघ्रता करते हुए वहां
और स्थानको शून्य देखकर व्याकुलचित्त हो गये। तदनन्तर वेगसे

तत्र तत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्य समन्ततः ४
ददर्श पर्णशालां च सीतया रहितां तदा ।
श्रिया विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव ५
रुदन्तमिव वृक्षैश्च ग्लानपुष्पमृगद्विजम् ।
श्रिया विहीनं विध्वस्तं संत्यक्तं वनदैवतैः ६
विप्रकीर्णाजिनकुशं विप्रविद्धबृसीकटम् ।
दृष्ट्वा शून्योटजस्थानं विललाप पुनः पुनः ७
हृता मृता वा नष्टा वा भक्षिता वा भविष्यति ।
निलीनाप्यथवा भीरुरथवा वनमाश्रिता ८
गता विचेतुं पुष्पाणि फलान्यपि च वा पुनः ।
अथवा पद्मिनीं याता जलार्थं वा नदीं गता ९
यत्नान्मृगयमाणस्तु नाससाद वने प्रियाम् ।
शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुन्मत्त इव लक्ष्यते १०
वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन्स गिरींश्चापि नदीनदम् ।
बभ्राम विलपन्रामः शोकपङ्कार्णवप्लुतः ११

से तथा हस्तपादादिको इतस्ततः फैंकते हुए रामने चारों ओरसे पर्ण-
लाको देखकर हेमन्त ऋतुमें शोभाहीन कमलिनीके तुल्य शोभारहित
सीतासे रहित पर्णशालाको देखा। वृक्षोंके साथ रोता हुआसा,
लिन हैं पुष्प, मृग और पक्षी जिसमें ऐसे, शोभासे हीन, वनदेवताओंसे
गा हुआ, विध्वस्त, नहीं ठीक स्थानमें रखे हैं अजिन कुशादि जिसमें
, उलटे पडे हैं मुन्यासन जिसमें ऐसे जनस्थानको शून्य देखकर राम
र वार विलाप करने लगे। (१–७)

"सीताको किसीने हर लिया वा मर गई अथवा नष्ट हो गई किंवा
सीने खा ली अथवा कहीं छिप गई होगी वा वनमें गई होगी, अथवा
फलोंको लेनेको गई होगी या जल लेनेके लिये तालाबपर गई होगी
नदीपर।" शोकसे लाल नेत्रोंवाले तथा शोकसे पागलकी तुल्य रामने
लसे ढूंढते हुए भी वनमें सीताको न पाया। एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर,

अस्ति कच्चित्त्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया।
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम् १२
स्निग्धपल्लवसंकाशां पीतकौशेयवासिनीम्।
शंसस्व यदि सा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी १३
अथवाऽर्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम्।
जनकस्य सुता तन्वी यदि जीवति वा न वा १४
ककुभः ककुभोरूं तां व्यक्तं जानाति मैथिलीम्।
लतापल्लवपुष्पाढ्यो भाति ह्येष वनस्पतिः १५
भ्रमरैरुपगीतश्च यथा द्रुमवरो ह्यसि।
एष व्यक्तं विजानाति तिलकस्तिलकप्रियाम् १६
अशोक शोकापनुद शोकोपहतचेतनम्।
त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेन माम् १७
यदि ताल त्वया दृष्टा पक्वतालोपमस्तनी।

पर्वतसे पर्वतपर और नदीसे नदीपर दौडते हुए तथा विलाप करते हुए राम शोकरूपी कीचडके समुद्रमें डूब गये। "हे कदम्ब! क्या कदम्बके फूलोंको चाहनेवाली मेरी प्रिया सीता देखी है? यदि शुभा सीताको तुम जानते हो तो मुझे बताओ। हे विल्व! चिकने प समान कोमल, पीत रेशमी वस्त्रको पहिने हुई, विल्वके समान स्तन सीता यदि तुमने देखी है तो मुझसे कहो। अथवा हे अर्जुन! अ पुष्पोंको चाहनेवाली उस मेरी प्यारीको तूही बता कि भीरु जनक जीती है वा नहीं? (८–१४)

"पत्ते तथा फूलोंसे बढा हुआ वनस्पति ककुभ जो शोभित हो है इससे प्रतीत होता है कि यह ककुभ ककुभसमान जंघाओंवाली सीत जानता है, किन्तु बताता नहीं है। जिससे कि यह (तिलक) श्रे भ्रमरोंसे शब्दायमान है इससे स्पष्ट है कि तिलकप्रिया सीताको जानता है। हे शोकको दूर करनेवाले अशोक! तूही प्यारीके दर्श शीघ्रही शोकाकुल चित्तवाले मुझे अपने नामवाला अर्थात् अशोक (

कथयस्व वरारोहां कारुण्यं यदि ते मयि १८
यदि दृष्टा त्वया जम्बो जाम्बूनदसमप्रभा ।
प्रियां यदि विजानासि निःशङ्कं कथयस्व मे १९
अहो त्वं कर्णिकाराद्य पुष्पितः शोभसे भृशम् ।
कर्णिकारप्रियां साध्वीं शंस दृष्टा यदि प्रिया २०
चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा ।
दाडिमानपि तान्गत्वा दृष्ट्वा रामो महायशाः २१
बकुलानथ पुन्नागांश्चन्दनान्केतकांस्तथा ।
पृच्छन्रामो वने भ्रान्त उन्मत्त एव लक्ष्यते २२
अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम् ।
मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत् २३
गज सा गजनासोरूर्यदि दृष्टा त्वया भवेत् ।
तां मन्ये विदितां तुभ्यमाख्याहि वरवारण २४
शार्दूल यदि सा दृष्टा प्रिया चन्द्रनिभानना ।

...हित) कर दे। हे ताल ! यदि तूने पके हुए तालफलोंके समान स्तनोंवाली सीता देखी है और यदि मेरेपर तुझे दया हो तो उस वरारोहाको मुझसे कह। हे जम्बु ! यदि तूने जामुनके फलोंके समान स्निग्ध वर्णवाली सीता देखी अथवा यदि तू मेरी प्यारीको जानता है तो निर्भय मुझसे कह। अहा ! हे कर्णिकार ! आज तुम उत्तम पुष्पोंसे अतिशय शोभित हो। यदि तुमने कर्णिकारपुष्पोंको प्यार करनेवाली साध्वी सीता देखी है तो मुझे बताओ।" (१५-२०)

आम्र, कदम्ब, शाल, पनस, कुरवक, धव, अनार, असन, मल्लिका, माधवी, चम्पक और केतकी इत्यादिके पास जाकर, उनसे पूछकर और वहां देखकर वनमें भ्रमते हुए महायशस्वी राम उन्मत्तके समान हो गये। तदनन्तर "हे मृग ! मृगशावाक्षी मैथिलीको तू जानता है ? स्यात् कभी मृगके समान देखनेवाली मेरी प्यारी मृगियोंके साथही हो। हे गज ! हाथीकी सूंडके समान जंघावाली सीता यदि तूने देखी हो तो हे वारणेन्द्र !

मैथिलीं मम विस्रब्धः कथयस्व न ते भयम्
किं धावसि प्रिये नूनं दृष्टाऽसि कमलेक्षणे । २५
वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे
तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि । २६
नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं मामुपेक्षसे
पीतकौशेयकेनासि सूचिता वरवर्णिनि । २७
धावन्त्यपि मया दृष्टा तिष्ठ यद्यस्ति सौहृदम्
नैव सा नूनमथवा हिंसिता चारुहासिनी । २८
कृच्छ्रं प्राप्तं हि मां नूनं यथाऽपेक्षितुमर्हति
व्यक्तं सा भक्षिता बाला राक्षसैः पिशिताशनैः । २९
विभज्याङ्गानि सर्वाणि मया विरहिता प्रिया
नूनं तच्छुभदन्तोष्ठं सुनासं शुभकुण्डलम् । ३०
पूर्णचन्द्रनिभं ग्रस्तं मुखं निष्प्रभतां गतम्
सा हि चन्दनवर्णाभा ग्रीवा ग्रैवेयकोचिता । ३१

बता दे, मैं जानता हूं कि तूने अवश्य देखी होगी । हे शार्दूल! तु
तुमने चन्द्रमुखी मेरी प्रिया देखी हो तो निडर होकर कहो, भय न क
हे कमलेक्षणे प्रिये ! हमने तुम्हें देख लिया, अब क्यों दौडती हो, अपने
वृक्षोंमें छिपाकर मुझसे क्यों नहीं बोलती हो ? हे वरारोहे ! ठहरो, ठ
क्या तुमको मेरे ऊपर दया नहीं आती ? तुम तो अतिहास्य-स्वभावव
भी नहीं हो, फिर क्यों मुझे नहीं देखती हो ? (२१–२७)

"हे सुन्दर वर्णवाली ! मैंने पीत वस्त्रसे तुम्हें पहिचान लिया
दौडती हुईको देख लिया, यदि तुम्हें मेरेमें प्रीति है तो खडी र
अहो ! सुन्दर हास्यवाली सीता यहां नहीं है, निश्चय किसीने मार डा
क्योंकि दुःखमें प्राप्त हुए मुझे वह इस दशामें नहीं देख सकती । इ
प्रकट होता है कि मुझसे रहित प्रिया सीताको मांस खानेवाले राक्षसोंने
अङ्ग तोडकर खा लिया । निश्चयही सुन्दर दांत तथा ओष्ठोंवाला, सु
नासिका तथा कुण्डलवाला उसका मुँह राहुसे ग्रसे हुए पूर्णचन्द्रके स

कोमला विलपन्त्यास्तु कान्ताया भक्षिता शुभा ३२
नूनं विक्षिप्यमाणौ तौ बाहू पल्लवकोमलौ ।
भक्षितौ वेपमानाग्रौ सहस्ताभरणाङ्गदौ ३३
मया विरहिता बाला रक्षसां भक्षणाय वै ।
सार्थेनैव परित्यक्ता भक्षिता बहुबान्धवा ३४
हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसे त्वं प्रियां क्वचित् ।
हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः ३५
इत्येवं विलपन्रामः परिधावन्वनाद्वनम् ।
क्वचिदुद्भ्रमते योगात्क्वचिद्विभ्रमते बलात् ॥
क्वचिन्मत्त इवाभाति कान्तान्वेषणतत्परः ३६
स वनानि नदीः शैलान्गिरिप्रस्रवणानि च ।
काननानि च वेगेन भ्रमत्यपरिसंस्थितः ३७
तदा स गत्वा विपुलं महद्वनं परीत्य सर्वं त्वथ मैथिलीं प्रति ।
अनिष्ठिताशः स चकार मार्गणे पुनः प्रियायाः परमं परिश्रमम् ३८
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥ [१९८४]

कान्तिहीन हो गया होगा । विलाप करती हुई सीताकी चम्पाके समान रंगवाली, कंठियोंसे शोभित, कोमल और मनोहर ग्रीवा किसीने निश्चयही खा ली होगी । निश्चयही इधर उधरको फेंकी हुई, पत्तोंके समान कोमल, हाथ और गहने तथा बाजुओंसे युक्त, कांपती हुई भुजा किसीने खा ली होगी । (२८-३३)

"क्या बाला सीता राक्षसोंके भक्षणके लियेही मैंने छोडी थी ? बहुत बन्धुओंवाली, साथियोंसे अलग हुई स्त्रीके समान उसे किसीने भक्षण कर लिया । हा महाबाहो लक्ष्मण ! क्या तुम सीताको कहीं देखते हो ? हा प्रिये ! हा भद्रे ! हा सीते ! तुम कहां गई ?" इस प्रकार विलाप करते, एक वनसे दूसरे वनको दौडते हुए तथा सीताके अन्वेषणमें लगे हुए राम कहीं शोकवेगसे भ्रमको प्राप्त होते और कहीं सादृश्यबलसे लतादिमें उस सीताके प्रतीतिभ्रमको प्राप्त हो जाते और कहीं उन्मत्तकी न्याई दिखलाई देने लगते । अस्थिर हुए राम वन, नदी, पर्वत, झरनों

द्विषष्टितमः सर्गः।

दृष्ट्वाश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः।
रहितां पर्णशालां च प्रविद्धान्यासनानि च १
अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं संनिरीक्ष्य च सर्वशः।
उवाच रामः प्राक्रुश्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ २
क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता।
केनाहृता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया ३
वृक्षेणावार्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि।
अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम् ४
यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः।
एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्राविलेक्षणाः ५
सीतया रहितोऽहं वै नहि जीवामि लक्ष्मण।

और दुर्गम वनोंमें वेगसे घूमने लगे। इस प्रकार वह राम उस बड़े व
जाकर और सब वनको वार वार ढूंढकर सीताके मिलनेमें आशाहीन
हुए पुनः सीताके ढूंढनेमें परिश्रम करने लगे। (३४-३८)

॥ यहाँ ६१ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६१॥

दशरथपुत्र राम आश्रमको शून्य, पर्णशालाको सीतासे रहित
आसनोंको इधर उधर पड़े हुए देखकर और चारों ओर अच्छे प्र
देखकरके भी सीताको न देखकर, श्रेष्ठ भुजाओंको फेंककर उच्च स्व
सीताको पुकार कर कहने लगे, "हे लक्ष्मण! प्रिया सीता कहां है!
यहांसे कौनसे स्थानको चली गई है? हे सौमित्रे! अथवा किसीने हर
है या किसीने खा ली है? हे सीते! वृक्षोंमें छिपकर यदि मुझसे हँ
करना चाहती हो तो अब तुम इस हँसीसे रुको और दुःखी हुए मुझे प्र
होओ। हे सीते! जिन विश्वस्त मृगशावकोंके साथ तुम क्रीडा करती
तुमसे हीन हुए तथा आंसुओंसे मलिन मुखवाले वे अब तुम्हारा ध्य
करते हैं। (१-५)

"हे लक्ष्मण! मैं सीताके विना नहीं जीऊंगा। महाराजा मेरे पि

वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ६
परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता।
कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः ७
अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः।
कामवृत्तमनार्यं वा मृषावादिनमेव च ८
धिक्त्वामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता।
विवशं शोकसंतप्तं दीनं भग्नमनोरथम् ९
मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिर्नरमिवानृजुम्।
क्व गच्छसि वरारोहे मा मोत्सृज सुमध्यमे १०
त्वया विरहितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः।
इतीव विलपन्रामः सीतादर्शनलालसः ११
न ददर्श सदुःखार्तो राघवो जनकात्मजाम्।
अनासादयमानं तं सीतां शोकपरायणम् १२
पङ्कमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुञ्जरम्।
लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया १३
मा विषादं महाबुद्धे कुरु यत्नं मया सह।

निश्चयही सीताके हरणसे उत्पन्न हुए महान् शोकसे मरे हुए मुझे परलोकमें देखेंगे। 'मुझसे नियुक्त किये गये तुम प्रतिज्ञा करके भी इस समय १४ वर्षको पूरा न करके मेरे पास यहां क्यों आगये ? तुम्हें धिक्कार है' इस प्रकार मेरे पिता स्वर्गमें स्वेच्छाचारी, दुर्जन, झूंट बोलनेवाले मुझको कहेंगे। हे वरारोहे ! विवश, शोकसन्तप्त, दीन, नष्ट मनोरथवाले मुझको, जैसे कपटी मनुष्यको कीर्ति छोड जाती है, इस तरह छोडकर तुम कहां चली गई हो ? हे सुमध्यमे ! मुझे न छोडो, तुमसे रहित मैं अपने जीवनको त्याग दूंगा।" (६–११)

सीताके देखनेकी लालसावाले, इस प्रकार विलाप करते हुए तथा दुःखसे पीडित हुए भी रामने सीताको न देखा। सीताको नहीं प्राप्त हुए, बडी कीचडमें प्राप्त होकर अति दुःखी होते हुए हाथीके समान स्थित रामसे

इदं गिरिवरं वीर बहुकन्दरशोभितम्
प्रियकाननसंचारा वनोन्मत्ता च मैथिली। १४
सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम् १५
सरितं वापि संप्राप्ता मीनवञ्जुलसेविताम् ।
वित्रासयितुकामा वा लीना स्यात्कानने क्वचित् १६
जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ ।
तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन्क्षिप्रमेव यतावहे १७
वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा।
मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनः कृथाः १८
एवमुक्तः स सौहार्दाल्लक्ष्मणेन समाहितः ।
सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे १९
तौ वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च।
निखिलेन विचिन्वन्तौ सीतां दशरथात्मजौ २०
तस्य शैलस्य सानूनि शिलाश्च शिखराणि च।

अत्यन्त हितकी इच्छासे लक्ष्मण बोले–"हे महाबाहो! खेद न करो और ... साथ यत्न करो। हे शूर! यह वन बहुतसी गुफाओंसे शोभित है। प्यारा ... वनोंमें घूमना जिसको ऐसी तथा नवीन जलके देखनेसे उन्मत्त हुई ... वनमें चली गई होगी, या कमलोंसे पूर्ण तलैयाको गई होगी। अथवा ... मछली और बेतोंसे संयुक्त नदीको गई होगी या हँसीकी इच्छासे ... वनमें चली गई होगी, अथवा हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको या मुझको जानने... इच्छावाली या डरपानेकी इच्छावाली वह वैसेही कहीं वनमें छिप ... होगी। हे श्रीमन्! हम उसके ढूंढनेमें शीघ्रही यत्न करते हैं। जहां ... पर वह सीता होगी वह सब वन ढूंढेंगे। हे राम! इस प्रकारको मानो ... शोकमें मन न लगाओ।" (११–१८)

स्नेहसे लक्ष्मणद्वारा इस प्रकार समझाये, सावधान हुए ... लक्ष्मणके साथ सीताको ढूंढनेको उद्यत हुए। वन, पर्वत, नदी, ताल... आदिमें सीताको ढूंढते और पर्वतके सानु, गुहा, शिखरोंको अच्छी ...

निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः २१
विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
नेह पश्यामि सौमित्रे वैदेहीं पर्वते शुभाम् २२
ततो दुःखाभिसंतप्तो लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
विचरन्दण्डकारण्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् २३
प्राप्स्यसे त्वं महाप्राज्ञ मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलीं बद्ध्वा महीमिमाम् २४
एवमुक्तस्तु वीरेण लक्ष्मणेन स राघवः ।
उवाच दीनया वाचा दुःखाभिहतचेतनः २५
वनं सुविचितं सर्वं पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः ।
गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दरनिर्झरः २६
न हि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् २७
एवं स विलपन्रामः सीताहरणकर्शितः ।
दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत् २८

देखते हुए उन दोनों राम-लक्ष्मणने सीताको नहीं पाया। राम चारों ओरसे पर्वतको देखकर लक्ष्मणसे बोले कि, “ हे लक्ष्मण! मैं यहां पर्वतपर सीताको नहीं देखता हूं।” तदनन्तर दुःखसे पीडित हुए, दण्डकारण्यमें घूमते हुए लक्ष्मण अति तेजस्वी भाई रामसे बोले- “ हे महाप्राज्ञ! तुम जनककी कन्या सीताको पाओगे जैसे महाबाहु विष्णुने बलिको बांधकर इस पृथिवीको पाया। ” (१९–२४)

स्नेहसे लक्ष्मणद्वारा इस प्रकार बोधित तथा दुःखसे हतबुद्धि रामने दीन वाणीसे कहा– “ हे महाप्राज्ञ ! सब वन ढूंढ लिया, फूले हुए कमलोंवाली तलैयां खोज डालीं और बहुतसी कन्दरा तथा झरनोंवाला पर्वत भी ढूंढ लिया, किन्तु प्राणोंसे प्यारी सीताको नहीं देखता हूं।” इस प्रकार विलाप करते और सीताहरणसे दुःखी हुए, दीन, शोकयुक्त राम थोडी देरके लिये व्याकुल हो गये। दुःखी, कृश अङ्गोंवाले, निःसंज्ञ तथा चेष्टारहित राम आतुर हो बडा उष्ण श्वास लेकर बैठ गये। कमल-

स विह्वलितसर्वाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतनः ।
विषसादातुरो दीनो निःश्वस्याशीतमायतम् २९
बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः ।
हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ३०
तं सान्त्वयामास ततो लक्ष्मणः प्रियबान्धवम् ।
बहुप्रकारं शोकार्तः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः ३१
अनादृत्य तु तद्वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपटच्युतम् ।
अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत्स पुनः पुनः ३२

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः॥६२॥[२०१

त्रिषष्टितमः सर्गः ।

सीतामपश्यन्धर्मात्मा शोकोपहतचेतनः ।
विललाप महाबाहू रामः कमललोचनः १
पश्यन्निव च तां सीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ।
उवाच राघवो वाक्यं विलापाश्रयदुर्वचम् २
त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतरा प्रिये ।
आवृणोषि शरीरं ते मम शोकविवर्धनी ३
कदलीकाण्डसदृशौ कदल्या संवृतावुभौ ।

नेत्र और आंसुओंसे गद्गद हुए राम बहुत बहुत श्वास लेकर 'हा प्रिये प्रिये' यह कहकर वार वार रोने लगे । तदनन्तर धर्मके जाननेवाले, हाथ जोड़े हुए प्यारे भाई लक्ष्मण रामको विनयपूर्वक बहुत प्रकार समझाने लगे। लक्ष्मणके ओष्ठोंके सम्पुटसे निकले उस वाक्यका अनादर करके प्रिय सीताको न देखते हुए राम वार वार रोने लगे । (२५-३२)

॥ यहाँ ६२ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥

शोकसे हतबुद्धि, कमलनेत्र, बडी बाहुओंवाले धर्मात्मा राम सीताको न देखकर विलाप करने लगे । सीताको न देखते हुए भी राम कामार्त हो सीताको देखते हुएके तुल्य हो विलापके कारण गद्गद कण्ठसे यह वाक्य बोले- " हे प्रिये ! मेरे शोकको बढानेवाली तुम अशोककी शाखाओंसे पुष्पोंके प्यारे होनेके कारण अपने शरीरको ढांकती हो । कदलीकाण्ड

ऊरू पश्यामि ते देवी नासि शक्ता निगूहितुम् ४
कर्णिकारवनं भद्रे हसन्ती देवि सेवसे ।
अलं ते परिहासेन मम बाधावहेन वै ५
विशेषेणाश्रमस्थाने हासोऽयं न प्रशस्यते ।
अवगच्छामि ते शीलं परिहासप्रियं प्रिये ६
आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव ।
सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृतापि वा ७
न हि सा विलपन्तं मामुपसंप्रैति लक्ष्मण ।
एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण ८
शंसन्तीव हि मे देवीं भक्षितां रजनीचरैः ।
हा ममार्ये क्व यातासि हा साध्वि वरवर्णिनि ९
हा सकामाद्य कैकेयी देवि मेऽद्य भविष्यति ।
सीतया सह निर्यातो विना सीतामुपागतः १०
कथं नाम प्रवेक्ष्यामि शून्यमन्तःपुरं मम ।

समान, केलेके वृक्षसे ढकी हुई तेरी दोनों जङ्घाओंको मैं देखता हूं, देवि ! अब तू उन्हें नहीं छिपा सकती । हे भद्रे ! हँसती हुई तू कन्हेरके वनको सेवती है, मुझको बाधा देनेवाले हास्यसे अब तू उपरत हो । हे प्रिये सीते ! थके हुए मुझसे हास्य करनेसे क्या लाभ है ? आश्रमस्थानमें तो वह हास्य विशेषकर अच्छाही नहीं । हे प्रिये ! हास्यप्रिय तुम्हारे स्वभावको मैं जानता हूं । (१–६)

"हे बडे नेत्रोंवाली तुम आओ, यह तुम्हारी पर्णशाला सूनी पडी है। हे लक्ष्मण ! राक्षसोंने सीताको भक्षण कर लिया या हर लिया, ऐसा प्रकट होता है, क्योंकि विलाप करते हुए मुझे वह प्राप्त नहीं होती। हे लक्ष्मण! अश्रुपूर्ण नेत्रोंवाले मृगोंके झुण्ड राक्षसोंसे भक्षित सीताको कहतेसे हैं । हा लोकपूज्ये ! हा पतिव्रते ! हे सुन्दर वर्णवाली ! तुम कहां गई ? हा ! अब देवी कैकेयी मुझसे कृतकृत्य हो जायगी ! सीताके साथ आया हुआ और विना सीताके अयोध्यामें प्राप्त हुआ मैं शून्य अन्तःपुरमें कैसे प्रवेश

निर्वीर्य इति लोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति
कातरत्वं प्रकाशं हि सीतापनयेन मे । ११
निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम्
कुशलं परिपृच्छन्तं कथं शक्ष्ये निरीक्षितुम् । १२
विदेहराजो नूनं मां दृष्ट्वा विरहितं तया
सुताविनाशसंतप्तो मोहस्य वशमेष्यति । १३
अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम्
स्वर्गोऽपि हि तया हीनः शून्य एव मतो मम । १४
तन्मामुत्सृज्य हि वने गच्छायोध्यापुरीं शुभाम्
न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथंचन । १५
गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्वचनात्त्वया
अनुज्ञातोऽसि रामेण पालयेति वसुंधराम् । १६
अम्बा च मम कैकेयी सुमित्रा च त्वया विभो
कौसल्या च यथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया । १७
रक्षणीया प्रयत्नेन भवता सूक्तचारिणा
सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चामित्रसूदन । १८

करूंगा ? संसार मुझे निर्वीर्य तथा निर्दय कहेगा । सीताके हरे... मेरी कायरता प्रकट कर दी । मैं वनवासके समाप्त होनेपर कुशल... हुए मिथिलेश जनकको कैसे देखूंगा ? सीतासे रहित मुझे देखकर ... स्नेहसे सन्तप्त राजा जनक निश्चयही मोहके वशमें हो जायँगे।"(...

" अथवा मैं भरतसे पालित अयोध्यापुरीको नहीं जाऊंगा, ... सीताके विना मुझे स्वर्ग भी शून्य है । हे लक्ष्मण ! तुम मुझे इस ... छोडकर अयोध्यापुरीको जाओ, मैं उस सीताके विना किसी प्रकार ... जीऊंगा । अच्छी तरह मिलकर मेरे वचनोंसे तुम भरतको कहना कि ... आज्ञा दे दी है कि तुम पृथ्वीका पालन करो । हे विभो ! मेरी ... कैकेयी, सुमित्रा तथा कौशल्याको मेरी ओरसे यथायोग्य अभि... करना । आज्ञामें रहनेवाले तुम उस कौशल्याकी प्रयत्नसे रक्षा क...

विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वया भवेत् १९
इति विलपति राघवे तु दीने वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या।
भयविकलमुखस्तु लक्ष्मणोऽपि व्यथितमना भृशमातुरो बभूव २०
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः। ६३[२०३४]

चतुःषष्टितमः सर्गः।

स राजपुत्रः प्रियया विहीनः शोकेन मोहेन च पीड्यमानः।
विषादयन्भ्रातरमार्तरूपो भूयो विषादं प्रविवेश तीव्रम् १
स लक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नं शोके निमग्नो विपुले तु रामः।
उवाच वाक्यं व्यसनानुरूपमुष्णं विनिःश्वस्य रुदन्सशोकम् २
न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुंधरायाम्।
शोकानुशोको हि परंपराया मामेति भिन्दन्हृदयं मनश्च ३
पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि।
तत्रायमद्यापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि ४

हे शत्रुओंके नाश करनेवाले लक्ष्मण ! सीता का तथा मेरा नाश विस्तार-पूर्वक मेरी माता से कह देना" सुन्दर केशवाली सीताके बिना वनमें प्राप्त, दीन हुए, रामके ऐसा विलाप करनेपर भयसे व्याकुल मनवाले तथा दुःखित मनवाले लक्ष्मण भी अत्यन्त आतुर हो गये। (१४-२०)

यहाँ ६३ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६३॥

प्रियाविहीन तथा काम व मोहसे पीडित, दुःखित रूपवाले राजपुत्र राम अपने भाई लक्ष्मण को भी दुःखी करते हुए पुनः तीव्र दुःखमें मग्न हो गये। महान् शोकमें मग्न तथा विलाप करते हुए राम गर्म श्वास लेकर शोकयुक्त लक्ष्मण को दुःखपूर्ण, शोकयुक्त वाक्य कहने लगे "मैं यह जानता हूं कि पृथ्वीपर मेरे समान अशुभ कर्म करनेवाला दूसरा नहीं है, हृदय तथा मन को बींधता हुआ एक शोकसे दूसरा शोक परम्परासे मुझे प्राप्त होता है। निश्चय ही मैंने अनेक वार मन-चाहे पाप किये हैं, उन्हींका फल यह आज मुझे प्राप्त हुआ है, जिससे कि मैं एक दुःखसे दूसरे दुःखको प्राप्त होता हूँ। हे लक्ष्मण! राज्यका

राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननीवियोगः।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगमापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि
सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम्।
सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्तः
सा नूनमार्या मम राक्षसेन ह्यभ्याहृता खं समुपेत्य भीरुः।
अपस्वरं सुस्वरविप्रलापा भयेन विक्रन्दितवत्यभीक्ष्णम्
तौ लोहितस्य प्रियदर्शनस्य सदोचितावुत्तमचन्दनस्य।
वृत्तौ स्तनौ शोणितपङ्कदिग्धौ नूनं प्रियाया मम नाभिपातः
तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापं तस्या मुखं कुञ्चितकेशभारम्।
रक्षोवशं नूनमुपागताया न भ्राजते राहुमुखे यथेन्दुः
तां हारपाशस्य सदोचितान्तां ग्रीवां प्रियाया मम सुव्रतायाः।
रक्षांसि नूनं परिपीतवन्ति शून्ये हि भित्त्वा रुधिराशनानि
शय्याविहीना विजने वने सा रक्षोभिराहृत्य विकृष्यमाणा।

नाश, घरवालोंका छूटना, पिताका मरण, माता का वियोग स्मरण ये सब मेरे शोकके वेगको बढाते हैं (१-५)

हे लक्ष्मण ! शून्य वनमें आकर मेरा यह सब दुःख शरीरमें शान्त गया था, सो अब सीताके वियोगसे फिर उत्पन्न हो आया जैसे काष्ठ एकदम अग्नि जल उठता है। डरनेवाली, उच्चस्वरसे विलाप करती और भयसे अतिशय चिल्लाती हुई मेरी प्यारी सीता निश्चय ही राक्षस आकाशको प्राप्त होकर बलसे हर ली। मेरी प्यारी सीताके देखने प्रिय, उत्तम, लाल चन्दनके सदा योग्य, गोल स्तन निश्चय ही रुधिर की कीचडसे सने हुए होंगे तथापि मैं नहीं मरा। राक्षसोंके वशमें हुई उस सीताका मधुर, स्पष्ट कोमल शब्दवाला तथा गुञ्जरवाले केशोंके भारवाला मुख राहुके मुखमें घुसे हुए चन्द्रमाके समान नहीं देता होगा। हारमाला के सदा योग्य, पतिव्रता मेरी प्रीवा को मांसभोजी राक्षस अकेले में भेदन करके निश्चय ही रुधिर पीते होंगे। (६-१०)

विनादं कुररीव दीना सा मुक्तवत्यायतकान्तनेत्रा ११
स्मिन्मया सार्धमुदारशीला शिलातले पूर्वमुपोपविष्टा ।
न्तस्मिता लक्ष्मण जातहासा त्वामाह सीता बहुवाक्यजातम् १२
दावरीयं सरितां वरिष्ठा प्रिया प्रियाया मम नित्यकालम् ।
प्यत्र गच्छेदिति चिन्तयामि नैकाकिनी याति हि सा कदाचित् १३
ानना पद्मपलाशनेत्रा पद्मानि वानेतुमभिप्रयाता ।
प्ययुक्तं न हि सा कदाचिन्मया विना गच्छति पङ्कजानि १४
मं त्विदं पुष्पितवृक्षषण्डं नानाविधैः पक्षिगणैरुपेतम् ।
ं प्रयाता नु तदप्ययुक्तमेकाकिनी साति बिभेति भीरुः १५
दित्य भो लोककृताकृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन् ।
प्रिया सा क्व गता हृता वा शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम् १६
केषु सर्वेषु न नास्ति किंचिद्यत्ते न नित्यं विदितं भवेत्तत् ।
सस्व वायो कुलपालिनीं तां मृता हृता वा पथि वर्तते वा १७

बड़े हैं सुन्दर नेत्र जिसके ऐसी तथा मुझसे हीन और निर्जन वनमें क्षसोंने पकड़कर खींची यह सीता निश्चय ही कुरर पक्षी (टटिहरी) समान चिल्लाती होगी । हे लक्ष्मण ! उदारस्वभाववाली, इस शिला-पर मेरे साथ पहिले बैठी, मन्दमुस्कानवाली सीता हँसकर तुमसे हुतसी बातें कहती थी । नदियोंमें श्रेष्ठ यह गोदावरी है, मेरी प्रिया को दा प्यारी है, स्यात् यहां पर गई हो, मैं यह चिन्ता करता हूं. सो ठीक नहीं; क्योंकि अकेली वह कभी न जाती अथवा कमलके मान मुखवाली, पद्माक्षी सीता कमल लेनेको गई है, यह भी ठीक हीं. क्योंकि वह मेरे बिना कदापि कमल लेनेको नहीं जाती । फूले हुए वृक्षोंके झुंडवाले और अनेक प्रकारके पक्षियोंसे युक्त कमनीय वनमें गई हो, यह भी ठीक नहीं; क्योंकि अकेली वह अत्यन्त डरती है (११-१५)

हे संसारके किये और न कियेको जाननेवाले तथा संसारके सच और झूंठे कर्मोंके साक्षी सूर्य ! शोकके वशमें प्राप्त हुए मुझसे कहो

*

इतीव तं शोकविधेयदेहं रामं विसंज्ञं विलपन्तमेव।
उवाच सौमित्रिरदीनसत्त्वो न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम्॥
शोकं विसृज्याद्य धृतिं भजस्व सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः।
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु॥
इतीव सौमित्रिमुदग्रपौरुषं ब्रुवन्तमार्तो रघुवंशसत्तमः।
न चिन्तयामास धृतिं विमुक्तवान्पुनश्च दुःखं महदभ्युपागमत्॥
इत्यार्षे श्रीमद्वा॰वाल्मी॰ आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः॥६४॥[२०..]

पञ्चःषष्टितमः सर्गः।

स दीनो दीनया वाचा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्।
शीघ्रं लक्ष्मण जानीहि गत्वा गोदावरीं नदीम्॥
अपि गोदावरीं सीता पद्मान्यानयितुं गता।
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः पुनरेव हि

मेरी वह प्रिया कहां गई ? क्या किसीने हर ली ! हे वायो ! ... ऐसा कुछ नहीं है जो तुमको हमेशा विदित न हो, अतः कुल... उस सीताको बताओ, वह किसीने हर ली या मरगई या रास्ते... शोकसे परवश है देह जिनकी, ज्ञानरहित हुए, इस प्रकार वि... करते हुए उन रामसे पराक्रमी तथा न्यायमें स्थित लक्ष्मण स... योग्य वचन बोले– हे आर्य ! शोकको छोडो, धीरज धरो और सी... तालाश करनेमें उत्साह करो, उत्साहवाले मनुष्य संसारमें ... कठिन कर्मोंमें भी दुःखी नहीं होते हैं। रघुवंशको बढानेवाले ... रामने अतिशय पराक्रमी तथा इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणको ... समझा अर्थात् उसके वचनका अनादर किया और धैर्यको त्याग ... अतः पुनः बडे भारी दुःखको प्राप्त होगये। (१६-२०)

यहाँ ६४ वाँ सर्ग समाप्त हुआ॥६४॥

दीन राम लक्ष्मण से दीनवाणीसे बोले हे लक्ष्मण ! शीघ्र ही गो... नदीपर जाकर ज्ञात करो, स्यात् सीता कमल लेनेको गोदावरी ... गई हो। इस प्रकार रामसे प्रेरित, शत्रुओंका नाश करनेवाले, ...

नदीं गोदावरीं रम्यां जगाम लघुविक्रमः ।
तां लक्ष्मणस्तीर्थवतीं विचित्वा राममब्रवीत् ३
नैनां पश्यामि तीर्थेषु क्रोशतो न शृणोति मे ।
कं नु सा देशमापन्ना वैदेही क्लेशनाशिनी ४
न हि तं वेद्मि वै राम यत्र सा तनुमध्यमा ।
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दीनः संतापमोहितः ५
रामः समभिचक्राम स्वयं गोदावरीं नदीम् ।
स तामुपस्थितो रामः क्व सीतेत्येवमब्रवीत् ६
भूतानि राक्षसेन्द्रेण वधार्हेण हृतामपि ।
न तां शशंसू रामाय तथा गोदावरी नदी ७
ततः प्रचोदिता भूतैः शंस चास्मै प्रियामिति ।
न च सा ह्यवदत्सीतां पृष्टा रामेण शोचता ८
रावणस्य च तद्रूपं कर्माणि च दुरात्मनः ।
ध्यात्वा भयात्तु वैदेहीं सा नदी न शशंस ह ९

...नेवाले लक्ष्मण रमणीय गोदावरी नदीको गये और उतारवाली ... नदीको ढूंढकर रामसे कहने लगे– मैं नदीपर सीताको नहीं ...ता हूं, बुलाते हुए मेरा शब्द वह नहीं सुनती । न जाने क्लेश– ...शिनी वह सीता कौन देशको चली गई ? मैं उस देशको नहीं ...न सका जहांपर सीता है । (१-५)

...दुःखसे मोहित दीन राम लक्ष्मण का बचन सुनकर स्वयं गोदावरी ...को चल दिये । नदीपर पहुंचे हुए राम 'सीता कहां है ?' इस प्रकार ...ने लगे । वनके जीवोंने वधके योग्य राक्षसराज रावण द्वारा हरी हुई ...को रामको नहीं बताया तथा गोदावरी नदीने भी नहीं बताया । ...कित रामसे 'हमें उस प्यारीको बताओ' इस प्रकार पूछी हुई तथा ...वासी जीवों द्वारा प्रेरित उस गोदावरीने सीताको नहीं बताया; उस ...दावरी नदीने दुरात्मा रावणका वह रूप तथा उसके कर्मोंका ध्यान ...के भयसे उस सीताको नहीं बताया । (६-९)

निराशस्तु तया नद्या सीताया दर्शने कृतः।
उवाच रामः सौमित्रिं सीतादर्शनकर्शितः
एषा गोदावरी सौम्य किंचिन्न प्रतिभाषते।
किं तु लक्ष्मण वक्ष्यामि समेत्य जनकं वचः
मातरं चैव वैदेह्या विना तामहमप्रियम्।
या मे राज्यविहीनस्य वने वन्येन जीवतः
सर्वं व्यपनयच्छोकं वैदेही क्व नु सा गता।
ज्ञातिवर्गविहीनस्य वैदेहीमप्यपश्यतः
मन्ये दीर्घा भविष्यन्ति रात्रयो मम जाग्रतः।
मन्दाकिनीं जनस्थानमिमं प्रस्रवणं गिरिम्
सर्वाण्यनुचरिष्यामि यदि सीता हि लभ्यते।
एते महामृगा वीरा मामीक्षन्ते पुनः पुनः
वक्तुकामा इह हि मे इङ्गितान्युपलक्षये।
तांस्तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो राघवः प्रत्युवाच ह

उस नदीने सीताके देखनेमें आशाहीन किये हुए तथा सीताके देखनेसे कर्शित राम लक्ष्मण से बोले हे सौम्य ! यह गोदावरी कुछ भी नहीं कहती । हे लक्ष्मण ! सीता रहित मैं जनकको तथा उसकी (सीता की) माता को प्राप्त होकर अप्रिय वचन कैसे कहूंगा ? राज्यसे हीन हुए तथा वनमें वनकी वस्तुओंसे जीते हुए मेरे समस्त शोकको दूर करदेती थी वह सीता कहां गई ? कुटुम्बरूपी सहायसे हीन और राजपुत्री सीताको न देखते तथा जागते हुए मेरी रात्रियां बडी होंगी यह मैं जानता हूं मैं मन्दाकिनी, जनस्थान और प्रस्रवणगिरि इन सबमें विचरूंगा, जिससे कि सीता दिखलाई दे । (१०-१५)

महाबली ये मृग बारबार मुझे देखते हैं, मुझसे कहनेकी इच्छा वालेसे हैं, यह मैं चेष्टासे जानता हूं । उन्हें देखकर नरव्याघ्र आंसुओंसे रुकी हुई दृष्टिसे देखते हुए " सीता कहां है ? " यह कहा इस प्रकार राजा रामके पोछेत वे मृग एकदम आकाशको दिखाते हुए

क्व सीतेति निरीक्षन्वै बाष्पसंरुद्धया गिरा ।
एवमुक्ता नरेन्द्रेण ते मृगा सहसोत्थिताः १७
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे दर्शयन्तो नभःस्थलम् ।
मैथिली ह्रियमाणा सा दिशं यामभ्यपद्यत १८
तेन मार्गेण गच्छन्तो निरीक्षन्ते नराधिपम् ।
येन मार्गं च भूमिं च निरीक्षन्ते स्म ते मृगाः १९
पुनर्नदन्तो गच्छन्ति लक्ष्मणेनोपलक्षिताः ।
तेषां वचनसर्वस्वं लक्षयामास चेङ्गितम् २०
उवाच लक्ष्मणो धीमाञ्ज्येष्ठं भ्रातरमार्तवत् ।
क्व सीतेति त्वया पृष्टा यदि मे सहसोत्थिताः २१
दर्शयन्ति क्षितिं चैव दक्षिणां च दिशं मृगाः ।
साधु गच्छावहे देव दिशमेतां च नैर्ऋतीम् २२
यदि तस्यागमः कश्चिदार्या वा साथ लक्ष्यते ।
वाढमित्येव काकुत्स्थः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् २३
लक्ष्मणानुगतः श्रीमान्वीक्षमाणो वसुंधराम् ।

दक्षिण की ओर चलदिये । हरी हुई सीता जिस दिशाको गई थी, उस मार्गसे दौडते हुए वे रामको देखते हैं; वे हिरण जिस कारणसे मार्ग और पृथ्वीको देखते हैं और फिर चलनेके लिये मार्ग की इच्छा करते हैं, जिससे लक्ष्मणने उन्हें जान लिया। (१६ २०)

बुद्धिमान् लक्ष्मणने इन मृगोंकी वचनके समान चेष्टाको जान लिया और जेठे भाईसे पीडितके समान बोले " सीता कहां है " इस प्रकार तुम्हारे पूछनेपर जिससे ये मृग एकदम उठ पृथ्वी और दक्षिण दिशाको दिखलाते हैं हे देव ! इससे इस नैर्ऋत दिशाको चलेंगे, स्यात् कोई उपाय मालूम पडजाय वा आर्या सीता दीख जाय ' अङ्गीकार है ' यह कहकर लक्ष्मण हैं पीछे जिनके ऐसे राम पृथ्वीको देखते दक्षिण दिशा को चल दिये । इस प्रकार आपसमें वार्तालाप करते दोनों भाइयोंने पृथ्वीपर गिरे हुए पुष्पोंको देखा । (२१-२५)

एवं संभाषमाणौ तावन्योन्यं भ्रातरावुभौ
वसुंधरायां पतितं पुष्पमार्गमपश्यताम् ।
पुष्पवृष्टिं निपतितां दृष्ट्वा रामो महीतले
उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः ।
अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण
अपि नद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने ।
मन्ये सूर्यश्च वायुश्च मेदिनी च यशस्विनी
अभिरक्षन्ति पुष्पाणि प्रकुर्वन्तो मम प्रियम् ।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्लक्ष्मणं पुरुषर्षभम्
उवाच रामो धर्मात्मा गिरिं प्रस्रवणाकुलम् ।
कच्चित्क्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी
रामा रम्ये वनोद्देशे मया विरहिता त्वया ।
क्रुद्धोऽब्रवीद्गिरिं तत्र सिंहः क्षुद्रमृगं यथा
तां हेमवर्णां हेमाङ्गीं सीतां दर्शय पर्वत ।
यावत्सानूनि सर्वाणि न ते विध्वंसयाम्यहम्
एवमुक्तस्तु रामेण पर्वतो मैथिलीं प्रति ।

दुःखी हुए वीर राम पृथ्वीपर गिरी हुई फूलोंकी वर्षाको देख लक्ष्मणसे दुःखयुक्त वचन बोले- हे लक्ष्मण ! मैं जानता हूं कि ये वही फूल हैं जो वनमें मैंने दिये थे और सीताने अपने केशोंमें बांधे थे मैं जानता हूं कि (न सुखा देनेसे) सूर्य, (न उडा देनेसे) वायु और (धारण करनेसे) पृथ्वी ये तीनों मेरे प्रियको करते हुए इन फूलोंकी रक्षा कर रहे हैं पुरुषोंमें श्रेष्ठ, धर्मात्मा राम महाबाहु लक्ष्मणसे ऐसा कहकर झरनोंसे व्याप्त गिरिसे बोले हे पर्वतोंके स्वामिन् ! क्या मुझसे रहित सब अङ्गोंसे सुन्दर प्रिया तुमने रमणीक वनोंमें देखी है ? (२६-३०)

क्रोधित हुए राम वहां पर्वतसे इस प्रकार बोले जैसे सिंह क्षुद्रमृगसे कहे, हे पर्वत ! सुवर्णप्रतिमा के समान तथा स्वर्णके समान कान्तिवाली उस सीताको तबतक दिखाओ, जब तक मैं तुम्हारे सर्व शिखर न तोडूं

दर्शयन्निव तां सीतां नादर्शयत राघवे ३१
ततो दाशरथी राम उवाच च शिलोच्चयम्।
मम बाणाग्निनिर्दग्धो भस्मीभूतो भविष्यसि ३२
असेव्यः सर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः।
इमां वा सरितं चाद्य शोषयिष्यामि लक्ष्मण।
यदि नाख्याति मे सीतां मध्यचन्द्रनिभाननाम् ३४
एवं प्ररुषितो रामो दिधक्षन्निव चक्षुषा ३५
ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत्।
त्रस्ताया रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्य इतस्ततः ३६
राक्षसेनानुसृप्ताया वैदेह्याश्च पदानि तु।
स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च ३७
भग्नं धनुश्च तूणी च विकीर्णं बहुधा रथम्।
संभ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम् ३८
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या कीर्णाः कनकबिन्दवः।
भूषणानां हि सौमित्रे माल्यानि विविधानि च ३९

[सी]ताके बारेमें रामने पर्वतसे ऐसा कहा तब पर्वत सीताको कहता [हु]आसा रामको सीता न दिखा सका। तदनन्तर दशरथके पुत्र राम पर्वतसे [बो]ले मेरे बाणोंकी अग्निसे जले हुए तुम भस्म तथा निरन्तर न [रह]ने योग्य और नहीं रहे हैं वृक्ष, पत्ते जिसपर ऐसे हो जाओगे। (३१-३४)

हे लक्ष्मण! चन्द्रसमान मुखवाली, संसारको पूजनीय सीताको न [ब]तायेगी तो इस नदीको सुखा डालूगा इस तरह क्रोधित हुए नेत्रोंसे [मा]नो जलाये देते हैं ऐसे रामने भूमिपर प्रादुर्भूत हुए राक्षसके पडे [प]दचिन्हको देखा तथा डरी हुई, रामको इच्छा करती, इधर उधर दौडती [औ]र राक्षससे घेरी सीताके पदोंको भी देखा व्याकुलमना राम सीताके [घू]मे हुए पदोंका रखना देखकर तथा राक्षसके पद देखकर और टूटा [हु]आ धनुष, तरकस और रथ देखकर प्यारे भाई लक्ष्मणसे बोले हे लक्ष्मण!

तप्ताबिन्दुनिकाशैश्च चित्रैः क्षतजबिन्दुभिः।
आवृतं पश्य सौमित्रे सर्वतोधरणीतलम्
मन्ये लक्ष्मण वैदेही राक्षसैः कामरूपिभिः।
भित्त्वा भित्त्वा विभक्ता वा भक्षिता वा भविष्यति
तस्या निमित्तं सीताया द्वयोर्विवदमानयोः।
बभूव युद्धं सौमित्रे घोरं राक्षसयोरिह
मुक्तामणिचितं चेदं रमणीयं विभूषितम्।
धरण्यां पतितं सौम्य कस्य भग्नं महद्धनुः
राक्षसानामिदं वत्स सुराणामथवापि वा।
तरुणादित्यसंकाशं वैदूर्यगुलिकाचितम्
विशीर्णं पतितं भूमौ कवचं कस्य काञ्चनम्।
छत्रं शतशलाकं च दिव्यमाल्योपशोभितम्
भग्नदण्डमिदं सौम्य भूमौ कस्य निपातितम्।
काञ्चनोरश्छदाश्चेमे पिशाचवदनाः खराः

—टूटी हुई सीताकी सुवर्णकी बूंदे देखो, हे लक्ष्मण! आभूषणों के अनेक प्रकारके फूल देखो। (३५-४०)

हे लक्ष्मण! स्वर्णकी बिन्दुओंके समान चित्रित रक्त बिन्दुओं से चारों ओर से व्याप्त हुए पृथ्वी तल को देखो. हे लक्ष्मण! मैं समझता हूं कि इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले राक्षसोंने सीताको काटकाटकर विभक्त की होगी या खा ली होगी। हे लक्ष्मण! इस सीताके निमित्त विवाद करते हुए दो राक्षसोंका घोर युद्ध यहां हुआ था (ऐसा जाना जाता है) मोती और मणिवाला, सुवर्णसे भूषित, टूटा हुआ, किसका बड़ा धनुष भूमिपर पड़ा है? हे वत्स! यह राक्षसोंका है या देवोंका? तरुण सूर्य के समान वैदूर्य मणिसे जड़ा हुआ, टूटा यह किसका सुवर्णका कवच भूमिपर पड़ा है? (४१-४५)

किसका सोंतानावाला दिव्य फूलोंसे शोभित, टूटे डंडेवाला यह छत्र पृथ्वीपर (किसने) डाल दिया है सुवर्णके कवचोंवाले, पिशाचों

भीमरूपा महाकायाः कस्य वा निहता रणे।
दीप्तपावकसंकाशो द्युतिमान् समरध्वजः ४७
अपविद्धश्च भग्नश्च कस्य सांग्रामिको रथः।
रथाक्षमात्रा विशिखास्तपनीयविभूषणाः ४८
कस्येमे निहता बाणाः प्रकीर्णा घोरदर्शनाः।
शरावरौ शरैः पूर्णौ विध्वस्तौ पश्य लक्ष्मण ४९
प्रतोदाभीषुहस्तोऽयं कस्य वा सारथिर्हतः।
पदवी पुरुषस्यैषा व्यक्तं कस्यापि रक्षसः ५०
वैरं शतगुणं पश्य मम तैर्जीवितान्तकम्।
सुघोरहृदयैः सौम्य राक्षसैः कामरूपिभिः ५१
हृता मृता वा वैदेही भक्षिता वा तपस्विनी।
न धर्मस्त्रायते सीतां ह्रियमाणां महावने ५२
भक्षितायां हि वैदेह्यां हृतायामपि लक्ष्मण।
के हि लोके प्रियं कर्तुं शक्ताः सौम्य ममेश्वराः ५३
कर्तारमपि लोकानां शूरं करुणवेदिनम्।

के समान मुखवाले, भयानक रूपधारी, बृहत् शरीरवाले ये पिशाच संग्राममें किसके मरे हैं और किसकी जलता हुई अग्निके समान प्रकाशमान संग्रामकी ध्वजा गिरी है और यह किसका संग्रामका रथ टूटा है? रथके अक्षके समान बड़े, भाल रहित, सुवर्णके भूषणवाले ये बाण किस घोरकर्मके टूटे हुए पड़े हैं? हे लक्ष्मण! बाणोंसे भरे हुए, टूटे हुए तरकस देखो, कोड़ा तथा रस्सी हाथमें लिये यह किसका सारथि मरा है, अत्यन्त बल तथा पराक्रमवाले किसने सारथिको मार दिया?(४९-५०)

हे पुरुषव्याघ्र! युद्धमें मारे गये पगड़ी, मणि, कुण्डलसे युक्त चामरोंके पकड़नेवाले किसके सो रहे हैं? प्रकट होता है कि यह मार्ग किसी राक्षसका है, इन राक्षसोंके सौगुनें जीवनका अन्त करनेवाले मेरे इस वरको देखो। हे सौम्य! घोर हैं हृदय जिनके ऐसे कामरूपी राक्षसों ने सीता हर की या खा ली या मर गई। महावन में हरी गई सीता

अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानि लक्ष्मण
मृदुं लोकहिते युक्तं दान्तं करुणवेदिनम् ।
निर्वीर्यं इति मन्यन्ते नूनं मां त्रिदशेश्वराः
मां प्राप्य हि गुणो दोषः संवृत्तः पश्य लक्ष्मण ।
अद्यैव सर्वभूतानां रक्षसामभवाय च
संहृत्यैव शशिज्योत्स्नां महान्सूर्य इवोदितः ।
संहृत्यैव गुणान्सर्वान्मम तेजः प्रकाशते
नैव यक्षा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
किंनरा वा मनुष्या वा सुखं प्राप्स्यन्ति लक्ष्मण
ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशं पश्य लक्ष्मण ।
असंपातं करिष्यामि ह्यद्य त्रैलोक्यचारिणाम्
संनिरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् ।
विप्रनष्टानलमरुद्भास्करद्युतिसंवृतम्
विनिर्मथितशैलाग्रं शुष्यमाणजलाशयम् ।
ध्वस्तद्रुमलतागुल्मं विप्रणाशितसागरम् ॥
त्रैलोक्यं तु करिष्यामि संयुक्तं कालकर्मणा

को धमने नहीं बचाया, हे सौम्य लक्ष्मण ! सीताके खा लेने या हर ले जाने पर संसारमें कौनसे ईश्वर (देव) मेरा अप्रिय करनेको समर्थ है ? (५१-५५)

हे लक्ष्मण ! सर्व प्राणी–लोकोंके उत्पन्न करनेवाले, शूर, करुणामें तत्पर मेरा अज्ञानसे आदर नहीं करते हैं। कोमल, संसारके हितमें दत्तचित्त, प्रवीण, करुणामें तत्पर मुझे देवता निश्चय निर्वीर्य (बलहीन) जानते हैं। हे लक्ष्मण ! देखो, राक्षस तथा अन्य समस्त प्राणियोंके नाश के लिये गुण मुझे पाकर दोष होगया, चन्द्रमा की उजालीको हरकर उदय हुए सूर्यके समान मेरा बड़ा तेज सब गुणोंको हरकर प्रकाशित हो रहा है, हे लक्ष्मण ! न यक्ष, न गन्धर्व, न पिशाच, न राक्षस, न किन्नर, न मनुष्य सुख पावेंगे। (५६–६०)

हे लक्ष्मण ! मेरे (ब्रह्मास्त्रादिक) अस्त्र तथा बाणोंसे व्याप्त आकाश

न ते कुशलिनीं सीतां प्रदास्यन्ति ममेश्वराः ।
अस्मिन्मुहूर्ते सौमित्रे मम द्रक्ष्यन्ति विक्रमम् ६१
नाकाशमुत्पतिष्यन्ति सर्वभूतानि लक्ष्मण ।
समाकुलममर्यादं जगत्पश्याद्य लक्ष्मण ६३
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ।
करिष्ये मैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ६४
मम रोषप्रयुक्तानां विशिखानां बलं सुराः ।
द्रक्ष्यन्त्यद्य विमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ६५
नैव देवा न दैतया न पिशाचा न राक्षसाः ।
भविष्यन्ति मम क्रोधात्त्रैलोक्येऽपि प्रणाशिते ६६
देवदानवयक्षाणां लोका ये राक्षसामपि ।
बहुधा निपतिष्यन्ति बाणौघैः शकलीकृताः ६७
निर्मर्यादानिमाँल्लोकान्करिष्याम्यद्य सायकैः ।
हृतां मृतां वा सौमित्रे न दास्यन्ति ममेश्वराः ६८

क्षां (अभी) देखो, आज ही तीनों लोकोंमें विचरनेवालोंका चलना बन्द कर दूंगा; रुक गया है ग्रहगणोंका चलना जिसमें, ढक गया है चंद्र जिसमें, नष्ट होगया है अग्नि तथा वायु जिसमें, छिप गई है सूर्यकी कान्ति जिसमें, फूट गये हैं पर्वतोंके अग्रभाग जिसमें, सूख गये हैं जलाशय जिसमें, टूट गये हैं वृक्ष, बेलें और गठीले वृक्ष जिसके और नष्ट होगये हैं सागर जिसमें ऐसे तीनों लोकोंको कालधर्मसे संयुक्तकर दूंगा यदि देवता क्षेमयुक्त सीताको मुझे न देंगे तो हे लक्ष्मण ! इस समयमें पराक्रमको देखेंगे, हे लक्ष्मण ! सब प्राणी मेरे धनुषकी प्रत्यञ्चासे छूटे हुए बाणजालोंसे आकाशमें न उड सकेंगे । (६१-६५)

हे आर्य लक्ष्मण ! मेरे बाणोंसे पीडित, नष्ट हुए और भागे हैं हिरण तथा पक्षी जिसके ऐसे. घबडाहट युक्त, मर्यादारहित जगत्को देखो, सीताके कारण कर्ण तक खींचे दुःसहनीय बाणोंसे संसारको पिशाच और राक्षस रहित कर दूंगा आज देवता रोषसे छोडे, अत्यन्त दूरतक जानेवाले मुझसे

तथारूपां हि वैदेहीं न दास्यन्ति यदि प्रियाम् ।
नाशयामि जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्
यावद्दर्शनमस्या वै तापयामि च सायकैः ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षः स्फुरमाणोष्ठसंपुटः
वल्कलाजिनमाबध्य जटाभारमबन्धयत् ।
तस्य क्रुद्धस्य रामस्य तथाभूतस्य धीमतः
त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं रुद्रस्येव बभौ तनुः ।
लक्ष्मणादथ चादाय रामो निष्पीड्य कार्मुकम्
शरमादाय संदीप्तं घोरमाशीविषोपमम् ।
संदधे धनुषि श्रीमान्रामः परपुरञ्जयः
युगान्ताग्निरिव क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ।
यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधिः
नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्ष्मण ।
तथाऽहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम्

चलाये बाणोंके बलको देखेंगे मेरे क्रोधसे तीनों लोकोंके नष्ट होनेपर देवता, न दैत्य, न पिशाच और न राक्षस रहेंगे। देव, दानव, यक्ष राक्षसोंके सब लोक मेरे बाणों द्वारा खण्ड खण्ड हुए नष्ट हो जायेंगे (६६-७०)

हे सौमित्रे! देवता हरी या मरी हुई सीताको मुझे न देंगे तो लोकोंको आज मर्यादारहित कर दूंगा यदि उसी तरहकी प्रिया सीता न देंगे तो मैं चराचरसहित तीनों लोकोंका नाश कर दूंगा। क्रोधसे लाल नेत्रवाले तथा शत्रुओंके नगरोंको नष्ट कर देनेवाले शोभायमान राम ऐसा कर, धनुषको उठाकर, सर्पके समान घोर प्रदीप्त बाण लेकर तथा धनुषपर चढाकर युगान्त अग्निके समान क्रोधित हो यह वचन बोले- लक्ष्मण! जैसे सम्पूर्ण प्राणियोंमें बुढापा, मृत्यु, समय और विधि अनिवार्य होते हैं उसी प्रकार क्रोधित हुआ सर्वथा मैं अनिवार्य हूं। पहिलेके समान यदि (देवता) सुन्दर दाँतोंवाली, निन्दारहित जनकपुत्री सीताको

देवं मे चारुदतीमनिन्दितां दिशन्ति सीतां यदि नाद्य मैथिलीम्।
सदेवगन्धर्वमनुष्यपन्नगं जगत्सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ७६

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिका० ऽरण्यकाण्डे पञ्च षष्टितमः सर्गः ॥६५॥[२१३२]

षष्ठःषष्टितमः सर्गः।

तप्यमानं तदा रामं सीताहरणकार्शितम्।
लोकानामभवे युक्तं सांवर्तकमिवानलम् १
वीक्षमाणं धनुः सज्यं निःश्वसन्तं पुनः पुनः।
दग्धुकामं जगत्सर्वं युगान्ते च यथा हरम् २
अदृष्टपूर्वं संक्रुद्धं दृष्ट्वा रामं स लक्ष्मणः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ३
पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः।
न क्रोधवशमापन्नः प्रकृतिं हातुमर्हसि ४
चन्द्रे लक्ष्मीः प्रभा सूर्ये गतिर्वायौ भुवि क्षमा।
एतच्च नियतं नित्यं त्वयि चानुत्तमं यशः ५
एकस्य नापराधेन लोकान्हन्तुं त्वमर्हसि ६
ननु जानामि कस्यायं भग्नः साङ्ग्रामिको रथः।

देंगे तो मैं देव, गन्धर्व, मनुष्य और सर्पों समेत तथा पर्वतोंसहित संसारको पलट दूंगा ॥ (७१-७६)

यहाँ ६५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६५॥

पूर्वोक्त प्रकारसे दुःखित, सीताके हरे जानेसे कृश, संसारके नाशमें उद्यत, संहार करनेवाले अग्निके समान, चढे हुए धनुषको देखते हुए, बार बार श्वास लेते हुए, युगान्तमें महादेवके समान सब जगत्को जलानेकी इच्छा करते, अतिशय क्रोधित रामको देखकर हाथ जोडे हुए लक्ष्मण, सूखे हुए मुंहसे बोले– आप कोमल, विचारवान् सब प्राणियोंके हितमें रत होकर क्रोधके वशमें प्राप्त होकर स्वभावको छोडने योग्य नहीं हो, चन्द्रमें शोभा, सूर्यमें कान्ति, वायुमें गति, भूमिमें क्षमा नियत है और यह सब तथा यश आप अकेलेमें हैं (१-५)

एकके अपराधसे सब लोकोंका नाश करना उचित नहीं है। यह किस-

केन वा कस्य वा हेतोःसंयुगः सपरिच्छदः
खुरनेमिक्षतश्चायं सिक्तो रुधिरबिन्दुभिः।
देशो निर्वृत्तसङ्ग्रामः सुघोरः पार्थिवात्मज
एकस्य तु विमर्दोयं न द्वयोर्वदतां वर।
न हि वृत्तं हि पश्यामि बलस्य महतः पदम्
नैकस्य तु कृते लोकान्विनाशयितुमर्हसि।
युक्तदण्डा हि मृदवः प्रशान्ता वसुधाधिपाः
सदा त्वं सर्वभूतानां शरण्यः परमा गतिः।
को नु दारप्रणाशं ते साधु मन्येत राघव
सरितः सागराः शैला देवगन्धर्वदानवाः।
नालं ते विप्रियं कर्तुं दीक्षितस्येव साधवः
येन राजन्हृता सीता तमन्वेषितुमर्हसि।
मद्द्वितीयो धनुष्पाणिः सहायैः परमर्षिभिः
समुद्रं वा विचेष्यामः पर्वतांश्च वनानि च।

का युद्धसामग्री तथा शस्त्रोंसे युक्त सांग्रामिक रथ टूटा है? किसने ... है? तथा किसलिये? यह मैं नहीं जानता। हे राजपुत्र! खुर तथा पहि... से खुदा हुआ रक्तकी बूँदोंसे सिक्त, घोर, यह देश निवृत्त संग्रामवा... हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ! यह युद्ध एकका है, दो का नहीं क्योंकि ... सेनाके धरे हुए पैर मुझे दिखलाई नहीं पडते एकके कर्तव्यसे सब लोको... का नाश करनेको योग्य नहीं है; क्योंकि राजा उचित दण्ड देने... शान्तस्वभाववाले तथा कोमलचित्तवाले होते हैं। आप सम्पूर्ण प्राणि... की गति हो तथा हमेशा उनके रक्षक हो। हे राघव! फिर भला ... आपकी भार्याका अदर्शन उचित समझेगा। (६-१०)

नदी, समुद्र, पर्वत तथा देव, गन्धर्व, दानव तुम्हारा अप्रिय करने... समर्थ नहीं हैं जैसे ऋत्विज दीक्षितका; हे राजन्! जिसने सीता हर... सहायक परमर्षियोंके साथ मेरे द्वितीय तुम्हें उसे ढूंढना उचित है। ... वन, पर्वत और अनेक गुफाओं, नदियों, कमलके वनोंको, देव तथा गन्ध...

गुहाश्च विविधा घोराः पद्मिन्यो विविधास्तथा १४
देवगन्धर्वलोकांश्च विचेष्यामः समाहिताः ।
यावन्नाधिगमिष्यामस्तव भार्यापहारिणम् १५
न चेत्साम्ना प्रदास्यन्ति पत्नीं ते त्रिदशेश्वराः ।
कोशलेन्द्र ततः पश्चात्प्राप्तकालं करिष्यसि १६
शीलेन साम्ना विनयेन सीतां नयेन न प्राप्स्यसि चेन्नरेन्द्र ।
ततः समुत्सादय हेमपुङ्खैर्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः शरौघैः १७

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥६५॥[२१४७]

षट्षष्टितमः सर्गः

तं तथा शोकसंतप्तं विलपन्तमनाथवत् ।
मोहेन महता युक्तं परिद्यूनमचेतसम् १
ततः सौमित्रिराश्वास्य मुहूर्तादिव लक्ष्मणः ।
रामं संबोधयामास चरणौ चाभिपीडयन् २
महता तपसा चापि महता चापि कर्मणा ।
राज्ञा दशरथेनासील्लब्धोऽमृतमिवामरैः ३

...लोकों सावधान हुए हम तबतक ढूढगे जबतक आपकी भार्याके ...नेवालेको न पावेंगे, हे कोसलेन्द्र ! यदि देवता समझानेसे आपकी भार्याको ...देंगे तो उसके बाद आप समयानुसार (कार्य) करें, हे राजन् ! शील ..., समझानेसे, विनयसे, नीतिसे सीताको न पावो तो सुवर्णकी पुंखवाले, ...न्द्रके वज्रके तुल्य बाणोंके समूहसे (संसारको) नष्ट करना। (११-१६)

यहाँ ६६ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६६॥

तदनन्तर सुमित्रापुत्र लक्ष्मण शोकसे दुःखित, अनाथके समान विलाप ...रते हुए, बडे मोहसे युक्त, असावधान चित्तवाले शोकित रामको ...सान्त्वना देकर और उनके चरण छूकर समझाने लगे, हे राम ! महान् तप ...तथा महान् कर्मसे राजा दशरथने तुम्हें पाया था जैसे देवताओंने अमृतको ...प्राप्त किया था । तुम्हारे गुणोंसे मोहित पृथ्वीपति राजा दशरथ तुम्हारे वियोगसे अमरत्वको प्राप्त हो गये जैसा कि भरतसे सुना था हे ककुत्स्थ

तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः।
राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथाश्रुतम्
यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे। ४
प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यति
आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः। ५
संस्पृशन्त्यग्निवद्राजन्क्षणेन व्यपयान्ति च
लोकस्वभाव एवैष ययातिर्नहुषात्मजः। ६
गतः शक्रेण सालोक्यमनयस्तं समस्पृशत्
महर्षियों वासिष्ठस्तु यः पितुर्नः पुरोहितः। ७
अह्ना पुत्रशतं जज्ञे तथैवास्य पुनर्हतम्
या चेयं जगतो माता सर्वलोकनमस्कृता। ८
अस्याश्च चलनं भूमेर्दृश्यते कोसलेश्वर
यौ धर्मौ जगतो नेत्रौ यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। ९
आदित्यचन्द्रौ ग्रहणमभ्युपेतौ महाबलौ १०

वंशी राम! यदि इस प्राप्त हुए दुःखको न सहोगे तो अल्पसत्त्वा... कौन संसारी जीव सहेगा? (१-५)

हे नरव्याघ्र! दुःखित हुए आप यदि तेजसे लोगोंको भ... कर देंगे तो पीडित हुई प्रजा कहां सुख पावेगी? हे नरश्रे... आप सावधान हूजिये। किस प्राणीको आपत्ति नहीं आती... हे राजन्! अग्निके समान आपत्ति (पुरुषको) स्पर्श करती हैं और क्ष... छोड देती हैं यह लोगस्वभाव ही है। देखो, अनीतिवाला, इन्द्रत्वको प्रा... हुआ भी नहुषका पुत्र ययाति अज्ञानके कारण स्वर्गसे च्युत हो गया... हमारे पिताके पुरोहित महर्षि वसिष्ठ थे, उनके सौ पुत्र हुए और एक दि... मर गये। हे सत्यप्रतिज्ञावाले! यह जो संसारको नमस्करणीय जगन्मा... भूमि देवी है, इसका भी चलना दिखलाई देता है। (६-१०)

जो धर्मके प्रवर्त्तक संसारके नेत्र सूर्य तथा चन्द्रमा हैं और जिनमें स... स्थित हैं, वे भी ग्रहणको प्राप्त हो जाते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! (मान्धातादि)...

सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ।
न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ११
शक्रादिष्वपि देवेषु वर्तमानौ नयानयौ।
श्रूयेते नरशार्दूल न त्वं व्यथितुमर्हसि १२
मृतायामपि वैदेह्यां नष्टायामपि राघव।
शोचितुं नार्हसे वीर यथाऽन्यः प्राकृतस्तथा १३
त्वद्विधा न हि शोचन्ति सततं सर्वदर्शनाः।
सुमहत्स्वपि कृच्छ्रेषु रामानिर्विण्णदर्शनाः १४
तत्त्वतो हि नरश्रेष्ठ बुद्ध्या समनुचिन्तय।
बुद्ध्या युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे १५
अदृष्टगुणदोषाणामधृतानां तु कर्मणाम्।
नान्तरेण क्रियां तेषां फलमिष्टं च वर्तते १६
मामेवं हि पुरा वीर त्वमेव बहुशोऽन्वशाः।
अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद्बृहस्पतिः १७

पुरुष तथा देवता भी सब प्राणियोंके आदि देह दैवसे नहीं छूट सकते। हे नरशार्दूल! इन्द्रादिक देवताओंमें भी नीति तथा अनीतिके मूलरूप सुख दुःख सुने जाते हैं, अतः आप शोक न करें। हे पापरहित वीर! सीताके नाश हो जाने या हरे जानेसे आप समाशो मनुष्यके समान शोक न करें नहीं नाश होनेवाला है कृत्य तथा अकृत्यका विचार जिनका ऐसे आपके सदृश सत्यदर्शी (पुरुष) बडे कष्टोंमें भी शोक नहीं करते (११–१५)

हे नरश्रेष्ठ! तत्त्व तथा बुद्धिसे शुभ और अशुभका विचार करो; क्योंकि महाप्राज्ञ (पुरुष) शुभ तथा अशुभको बुद्धिद्वारा जानते हैं। प्रत्यक्षमें नहीं देखे जा सकते गुण दोष जिनके तथा 'पहिले ऐसा कर्म किया था' जिनका इस प्रकार निश्चय नहीं हो सकता ऐसे पूर्वकृत कर्मोंका इच्छित फल अनुष्ठानके विना प्रवृत्त नहीं होता। हे राम! पहिले आपने ही मुझे इस प्रकार बहुत बार बार समझाया था, फिर आपको कौन शिक्षा करे, तुम्हें तो साक्षात् बृहस्पति भी नहीं समझा सकते। हे महाप्राज्ञ! तुम्हारी सी बुद्धि देवताओं

बुद्धिश्च ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्वया।
शोकेनाभिप्रसुप्तं ते ज्ञानं संबोधयाम्यहम् १८
दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम्।
इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्य यतस्व द्विषतां वधे १९
किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषर्षभ।
तमेव तु रिपुं पापं विज्ञायोद्धर्तुमर्हसि २०

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः॥६७॥[२६१५]

अष्टषष्टितमः सर्गः।

पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम्।
सारग्राही महासारं प्रतिजग्राह राघवः १
स निगृह्य महाबाहुः प्रवृद्धं रोषमात्मनः।
अवष्टभ्य धनुश्चित्रं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् २
किं करिष्यावहे वत्स क्व वा गच्छाव लक्ष्मण।
केनोपायेन पश्यावः सीतामिह विचिन्तय ३
तं तथा परितापार्तं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।

को भी दुर्लभ है, मैं शोकसे सोते हुए (आपके) ज्ञानको जगाता हूं। इक्ष्वाकुओंमें श्रेष्ठ! देवगन्धर्वादि तथा मनुष्यादिकोंको देखकर तथा अपने पराक्रमको देखकर वैरियोंके मारनेमें यत्न करो। हे पुरुषश्रेष्ठ! सबका विनाश करनेसे आपको क्या (प्रयोजन)? किन्तु उसी पापी वैरीको जानकर नष्ट करो। (१६--२०)

यहां ६७ वां सर्ग समाप्त हुआ ॥६७॥

लक्ष्मणद्वारा मधुरभाषणपूर्वक बोधित पूर्वज, सारग्राही रामने तत्त्वं ग्रहण कर लिया। महाबाहु राम-प्रवृत्त हुए- अपने कोपको रोककर तथा चित्र धनुषको थाम कर लक्ष्मणसे बोले, हे वत्स लक्ष्मण! क्या करें! कहां जावें? और किस उपायसे सीताको देखें-यह विचारो इस प्रकार परितप्त रामसे लक्ष्मण कहने लगे, आप बहुतसे राक्षसोंसे व्याप्त, अनेक वृक्ष और लताओंसे युक्त इस ही जनस्थानको ढूंढिये। (१-५)

इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ४
राक्षसैर्बहुभिः कीर्णं नानाद्रुमलतायुतम्।
सन्तीह गिरिदुर्गाणि निर्दराः कन्दराणि च ५
गुहाश्च विविधा घोरा नानामृगगणाकुलाः।
आवासाः किंनराणां च गन्धर्वभवनानि च ६
तानि युक्तो मया सार्धं समन्वेषितुमर्हसि।
त्वद्विधा बुद्धिसंपन्ना महात्मानो नरर्षभाः ७
आपत्सु न प्रकम्पन्ते वायुवेगैरिवाचलाः।
इत्युक्तस्तद्वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः ८
क्रुद्धो रामः शरं घोरं संधाय धनुषि क्षुरम्।
ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम् ९
ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्।
तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् १०
अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः।
गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षो भ्रमति काननम् ११

इसमें पर्वतोंके दुर्ग हैं, टूटे पत्थरोंवाले स्थान हैं, कन्दरा हैं और अनेक मृगगणोंसे व्याप्त, भयङ्कर, अनेक गुफा हैं, किन्नरोंके वासस्थान, गन्धर्वोंके भवन-ये सब मेरे साथ सावधान हो आपको ढूंढने चाहियें। हे नरश्रेष्ठ! आप सदृश बुद्धिमान् महात्मा पुरुष आपत्तिमें विचलित नहीं होते जैसे वायुवेगसे पर्वत। इस प्रकार बोधित, लक्ष्मणसहित राम क्रुद्ध हो क्षुर नामक घोर बाणको धनुषपर चढाकर उस वनमें विचरने लगे, तदनन्तर उन्होंने पर्वतकूटके सदृश कान्तिवाले, पक्षिश्रेष्ठ, रुधिरसे क्लिन्न, पृथिवीपर पडे हुए महाभाग जटायुको देखा। पर्वतशिखरके समान उसको देखकर राम लक्ष्मणसे बोले कि — (६-१०)

इसने सीताको खा लिया है, इसमें सन्देह नहीं है। वनमें गृध्रके समान रूपवाला यह राक्षस प्रकट होता है, विशालाक्षी सीताको भक्षण करके यह सुखपूर्वक बैठा है, मैं दीप्तमुखवाले अकुण्ठित घोर बाणोंसे

भक्षयित्वा विशालाक्षीमास्ते सीतां यथासुखम्।
एनं वधिष्ये दीप्ताग्रैः शरैर्घोरैरजिह्मगैः ११
इत्युक्त्वाऽभ्युत्पतद्द्रष्टुं संधाय धनुषि क्षुरम्।
क्रुद्धो रामः समुद्रान्तां चालयन्निव मेदिनीम् १२
तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन्।
अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् १३
यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने। १४
सा देवी मम च प्राणा रावणेनाभयं हृतम् १५
त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा १६
सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे प्रभो।
विध्वंसितरथच्छत्रः पातितो धरणीतले १७
एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा।
अयमस्य रणे राम भग्नः साङ्ग्रामिको रथः १८
अयं तु सारथिस्तस्य मत्पक्षनिहतो भुवि।
परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः १९

इसको मारूंगा। ऐसा कहकर क्षुर नामक बाणको धनुषपर चढ़ा
समुद्रपर्यन्त पृथिवीको कँपाते हुएसे क्रोधित हुए राम गृध्रके समीपको च
झागयुक्त रुधिरको उगलता हुआ वह दीन पक्षी दीनवाणीसे दशरथ
रामसे बोला. हे आयुष्मन्! इस महावनमें जिसको औषधिकी भाँति ढूं
हो वह देवी और मेरे प्राण ये दोनों रावणने हर लिये। (११-१५)

हे राघव! लक्ष्मण तथा आपसे अलग हुई, बली रावणसे हरी हुई दे
सीता मैंने देखा है, हरी हुई सीताको देखकर मैं रणमें रावणके सन्मु
गया और मैंने भग्नरथवाला वह पृथ्वीपर गिरा दिया। हे राघव!
उसका टूटा धनुष तथा तरकस है और यह उसका संग्रामका रथ मैंने तो
दिया है, मेरे पंखोंसे निहत यह उसका सारथि है। रावण थके हुए मेरे पंखों
तलवारसे काटकर वैदेहीको लेकर आकाशको उड़ गया। (१६-२०)

सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् ।
रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि २०
रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तां प्रियां कथाम् ।
गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः २१
निपपातावशो भूमौ रुरोद सह लक्ष्मणः ।
द्विगुणीकृततापार्तो रामो धीरतरोऽपि सन् २२
एकमेकायने कृच्छ्रे निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ।
समीक्ष्य दुःखितो रामः सौमित्रिमिदमब्रवीत् २३
राज्यं भ्रष्टं वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः ।
ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्दहेदपि हि पावकम् २४
संपूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम् ।
सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत्सरितां पतिः २५
नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन्सचराचरे ।
येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा २६
अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्रराजो महाबलः ।
शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात् २७

राक्षस द्वारा प्रथमही निहत मुझे आपको न मारना चाहिये। तदनन्तर आंसुओंसे पूर्ण मुखवाले राम सीता सम्बन्धी प्रिय कथाको सुनकर दूने ताप (दुःख) वाले हो गये, अतिधीरजवाले भी राम दूने दुःखसे परितप्त हुए बडे भारी धनुषको त्यागकर, गृध्रराजको आलिङ्गन करके मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पडे और लक्ष्मणसहित रोने लगे। अतिशय दुःखी राम एकान्त मार्गमें श्वास लेते हुए असहाय गृध्रको देखकर लक्ष्मणसे बोले, राज्यसे पतन, वनमें रहना, सीताका हरा जाना और पक्षीका मरना-इस प्रकारकी मेरी यह अलक्ष्मी (दौर्भाग्य) अग्निको भी जला देगी। (२१-२५)

यदि मैं सम्पूर्ण समुद्रको भी तरूं अर्थात् तापशान्त्यर्थ गोता लगाऊं तो निश्चय ही मेरे दौर्भाग्यसे समुद्र शुष्क हो जावेगा। इस चराचर लोकमें मुझसे अन्य दुर्भागी कोई भी नहीं है, जिससे मुझे यह बडा भारी व्यसन-

इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः ।
जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं निदर्शयन् २८
निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं तं गृध्रराजं परिगृह्य राघवः ।
क्व मैथिली प्राणसमा गतेति विमुच्य वाचं निपपात भूमौ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८ [२९,

एकोनसप्ततितमः सर्गः ।

रामः प्रेक्ष्य तु तं गृध्रं भुवि रौद्रेण पातितम् ।
सौमित्रिं मित्रसंपन्नामिदं वचनमब्रवीत् १
ममायं नूनमर्थेषु यतमानो विहङ्गमः ।
राक्षसेन हतः सङ्ख्ये प्राणांस्त्यजति मत्कृते २
अतिखिन्नः शरीरेऽस्मिन्प्राणो लक्ष्मण विद्यते ।
तथा स्वरविहीनोऽयं विक्लवं समुदीक्षते ३
जटायो यदि शक्नोषि वाक्यं व्याहरितुं पुनः ।
सीतामाख्याहि भद्रं ते वधमाख्याहि चात्मनः ४

रूपी बन्धन प्राप्त हुआ है। यह मेरे पिताका सखा, बुढापेसे युक्त गृध्र मेरे भाग्यकी प्रतिकूलतासेही मरा हुआ पृथिवीपर सोता है, लक्ष्मण रामने बहुत वार इस प्रकार कहकर पिताके स्नेहको दिखलाते हुए जटायु का स्पर्श किया। वह राम कटे हुए पक्षोंवाले, रुधिरसे सने हुए गृध्र जटायुको आलिंगन करके 'मेरे प्राणोंके समान सीता कहां है?' इस प्र कहकर पृथिवीपर गिर पडे ॥ (२६-३०)

॥ यहाँ ६८ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६८॥

रामचन्द्र राक्षसने पृथिवीपर गिराये हुए गृध्रको देखकर परम सुमित्रापुत्रसे यह (वक्ष्यमाण) वचन बोले। निश्चय ही अब मेरे प्रयो लिये यत्न करता हुआ, युद्धमें राक्षससे निहत यह पक्षी दुःखसे त्या योग्य प्राणोंको त्यागता है। हे लक्ष्मण! इसके शरीरमें सूक्ष्मप्राण विद्य हैं तथा यह हीन स्वरवाला और विह्वल हो देखता है, हे जटायो! फिर एकवार बोलनेकी समर्थ है तो सीताको कह अर्थात् बता

किंनिमित्तां जहारार्यां रावणस्तस्य किं मया।
अपराधं तु यं दृष्ट्वा रावणेन हृता प्रिया ५
कथं तच्चन्द्रसंकाशं मुखमासीन्मनोहरम्।
सीतया कानि चोक्तानि तस्मिन्काले द्विजोत्तम ६
कथंवीर्यः कथंरूपः किंकर्मा स च राक्षसः।
क चास्य भवनं तात ब्रूहि मे परिपृच्छतः ७
तमुद्वीक्ष्य स धर्मात्मा विलपन्तमनाथवत्।
वाचा विक्लवया राममिदं वचनमब्रवीत् ८
सा हृता राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।
मायामास्थाय विपुलां वातदुर्दिनसंकुलाम् ९
परिक्लान्तस्य मे तात पक्षौ छित्त्वा निशाचरः।
सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणामुखः १०
उपरुध्यन्ति मे प्राणा दृष्टिर्भ्रमति राघव।
पश्यामि वृक्षान्सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ११

अपने वधकर्त्ताको कह, तेरा कल्याण हो, रावणने सीताको किस कारण हर लिया ? मैंने उसका क्या अपराध किया है जिसको देखकर उस रावणने मेरी प्यारीको हर लिया। (१-५)

हे पक्षियोंमें श्रेष्ठ ! उस समय उसका चन्द्र समान मुख कैसा हो गया था और सीताने क्या कहा था ? हे तात ! वह राक्षस कैसे पराक्रम-वाला, कैसे रूपवाला और कैसे कर्मवाला है तथा उसका स्थान कहां है ? यह सब पूछते हुए मुझसे कहो। इसके बाद दीन पक्षी उन्हें देखकर अति दीन वाणीसे रामसे बोला। राक्षसेन्द्र रावणने आकाशमार्गसे वायु और दुर्दिनसे पूर्ण बडी भारी माया रचकर सीताको हर लिया। हे तात ! वह राक्षस थके हुए मेरे पंखोंको काटकर और सीताको लेकर दक्षिणदिशाको चला गया। (६-१०)

हे राघव ! मेरे प्राण पीडित हैं, दृष्टिभ्रम रही है और मैं समस्त वृक्ष सुवर्णके से तथा खससे कल्पित बालोंवालेसे देखता हूं। जिस मुहूर्त्तसे

येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः ।
विप्रणष्टं धनं क्षिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते ॥ ११
विन्दो नाम मुहूर्तोऽसौ न च काकुत्स्थ सोऽबुधत् ।
झषवद्बडिशं गृह्य क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ १२
न च त्वया व्यथा कार्या जनकस्य सुतां प्रति ।
वैदेह्यां रंस्यसे क्षिप्रं हत्वा तं रणमूर्धनि ॥ १३
असंमूढस्य गृध्रस्य रामं प्रत्यनुभाषतः ।
आस्यात्सुस्राव रुधिरं म्रियमाणस्य सामिषम् ॥ १४
पुत्रो विश्रवसः साक्षाद्भ्राता वैश्रवणस्य च ।
इत्युक्त्वा दुर्लभान्प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ॥ १५
ब्रूहि ब्रूहीति रामस्य ब्रुवाणस्य कृताञ्जलेः ।
त्यक्त्वा शरीरं गृध्रस्य प्राणा जग्मुर्विहायसम् ॥ १६
स निक्षिप्य शिरो भूमौ प्रसार्य चरणौ तथा ।
विक्षिप्य च शरीरं स्वं पपात धरणीतले ॥ १७

रावण सीताको लेकर गया है, उस मुहूर्तबलसे उसका स्वामी नष्ट धन शीघ्र प्राप्त होता है। हे काकुत्स्थ ! यह मुहूर्त विन्द नामक है, उस रावणने आपकी प्यारी जानकीको हर कर उस (मुहूर्त) को नहीं जाना बडिश (कांटे) को ग्रहण करके मछलीकी भांति शीघ्रही नष्ट होगा आपको सीताके प्रति कुछ क्लेश न करना चाहिये, आप शीघ्र ही उस रावणको मार वैदेहीके साथ रमण करेंगे। रामसे ऐसे कहते असावधान चित्तवाले, मरते हुए उस गृध्रके मुखसे मांससहित रुधिर बहने लगा। (११–१५)

वह विश्रवाका साक्षात्पुत्र है और कुबेरका भाई है — ऐसा कह पक्षीने दुर्लभ प्राणोंको छोड दिया। हाथ जोडे हुए रामके 'कहो, कहो' ऐसे कहते कहते गृध्रके प्राण शरीरको त्यागकर आकाशको चले गये। वह शिर पृथ्वीपर पटककर और पावोंको फैलाकर तथा अपने देहको कं... पृथ्वीतलपर गिर पडा। बहुत क्लेशोंसे दुःखित राम लालनेत्रवाले, ...

तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम्।
रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् १९
बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम्।
अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा २०
अनेकवार्षिको यस्तु चिरकालसमुत्थितः।
सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः २१
पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे।
सीतामभ्यवपन्नो हि रावणेन बलीयसा २२
गृध्रराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत्।
मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः २३
सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः।
शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि २४
सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम्।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परन्तप २५

...मान हुए और गतासु गृध्रको देखकर लक्ष्मणसे बोले। राक्षसोंके निवास-स्थानमें बहुत वर्षतक सुखपूर्वक बसते हुए, हमारे पिताके मित्र, पक्षियोंके अधिपति, वृद्ध इस जटायुने दण्डकारण्यमें ही देहकी शीर्णताको प्राप्त किया अर्थात् मृत्यु प्राप्त की। (१९-२०)

बहुत आयुको और बहुत कालतक अभ्युदयको प्राप्त हुआ था सो यह गृध्र मरा हुआ सोता है। काल निश्चय ही दुरतिक्रम है अर्थात् टाला नहीं जा सकता, हे लक्ष्मण! देखो, सीताकी रक्षाके लिये गया, मेरा उपकार करनेवाला यह गृध्र बलवान् रावणने मार डाला। पक्षियोंके राजा इसने पिता बाबासे आये हुए बड़े गृध्रराजको छोड मेरे लिये प्राणोंको छोड दिया। हे लक्ष्मण! सब जगह धर्मचारी साधु दिखाई पडते हैं। तिर्यग्योनि अर्थात् पक्षी, पशु आदिकोंमें भी शूर और शरण देनेवाले होते हैं। हे सौम्य! हे परमतपस्वी! सीताके हरनेका दुःख मुझे वैसा नहीं जैसा कि मेरे कर्तव्यमें रक्षित गृध्रराजके विनाशका दुःख है। (२१-२५)

राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम महायशाः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथाऽयं पतगेश्वरः
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् । २६
गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम्
नाथं पतगलोकस्य चितिमारोपयाम्यहम् । २७
इम धक्ष्यामि सौमित्रे हतं रौद्रेण रक्षसा
या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः । २८
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम्
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् । २९
गृध्रराज महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज
एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् । ३०
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ३१
रामोऽपि सह सौमित्रिर्वनं यात्वा स वीर्यवान् ।
स्थूलान्हत्वा महारोहीननु तस्तार तं द्विजम् ३२

महायशस्वी राजा दशरथ जैसे मुझको पूजनीय और मान्य थे यह पक्षीराज है। हे लक्ष्मण! काष्ठोंको लाओ, मैं अग्निको मथकर नि... और मेरे लिये मरे हुए गृध्रराजको मैं जलानेकी क्रिया करता हूं। हे ... भयानक राक्षससे मारे गये पक्षियोंके राजा इस गृध्रको चितामें ... जलाऊंगा। हे महाबली गृध्रराज! यज्ञ करनेवालोंकी जो गति है, पञ्चाग्नि तपनेवालों (वानप्रस्थों) की जो गति होती है ... गति संन्यासियोंकी होती है और भूमि देनेवाले तथा भूमिसुख... वालोंकी जो गति होती है, मुझसे संस्कृत किये गये तुम उसी ... प्राप्त होओ और मेरी आज्ञासे श्रेष्ठ लोकोंको जाओ। (२६-३०)

दुःखित हुए धर्मात्मा रामने ऐसा कहकर प्रकाशित चितापर प... आरोपित कर अपने बन्धुके समान उस पक्षीको जलाया। इसके बाद ... समेत, पराक्रमी रामने वनमें जाकर स्थूल महारोहियोंको मारकर ... पिण्डदानादिके उद्देश्यसे पृथ्वीपर कुशाओंको बिछाया, रोहियों...

रोहिमांसानि चोद्धृत्य पेशीकृत्वा महायशाः ।
शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाद्वले ३३
यत्तत्प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः ।
तत्स्वर्गगमनं क्षिप्रं तस्य रामो जजाप ह ३४
ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ ।
उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ ३५
शास्त्रदृष्टेन विधिना जलं गृध्राय राघवौ ।
स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदकं चक्रतुस्तदा ३६
गृध्रराजः कृतवान्यशस्करं सुदुष्करं कर्म रणे निपातितः ।
महर्षिकल्पेन च संस्कृतस्तदा जगाम पुण्यां गतिमात्मनः शुभाम् ३७
उदकौ तावपि पक्षिसत्तमे स्थिरां च बुद्धिं प्रणिधाय जग्मतुः ।
प्रवेश्य सीताधिगमे ततो मनो वनं सुरेन्द्राविव विष्णुवासवौ ३८

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥६९॥ [२२३६

...र पिण्ड बनाकर यशस्वी रामने रमणीक हरी घासपर पक्षिके लिये ..., ब्राह्मण लोग जिस मरे हुए मनुष्यको स्वर्गको प्राप्त करनेवाला कहते ... रामचन्द्रजी जटायुके अर्थ उसी पितृदेवताओंके सूक्तको जपने लगे, ...न्तर राजपुत्र रामलक्ष्मण गोदावरी नदीपर जाकर उस गृध्रराजके ...ये दोनों जल देने अर्थात् तर्पण करने लगे । रामलक्ष्मण गृध्रके उद्देश्यसे ...में स्नानकर शास्त्रोक्तविधिसे गृध्रराजको जल देने लगे, यशकारी ...कर्मको करनेवाला, संग्राममें मारा गया, महर्षितुल्य रामने संस्कार ...या गृध्रराज अपनेको शुभ करनेवाली पवित्र गतिको उसी समय प्राप्त ...गया । तदनन्तर जलांजलिद्वारा तर्पण करनेवाले रामलक्ष्मण पक्षिराजमें ...र बुद्धिको (सीता अवश्य मिलेगी, इस वाक्यसे) धारण कर सीताके, ...प्त होनेमें मन लगाकर वनमें गये । जैसे देवताओंके स्वामी विष्णु और ...न्द्र जावें । (३१-३८)

॥ यहाँ ६९ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६९॥

सप्ततितमः सर्गः ।

कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ राघवौ तदा ।
अवेक्षन्तौ वने सीतां जग्मतुः पश्चिमां दिशम् १
तां दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ ।
अविप्रहतमैक्ष्वाकौ पन्थानं प्रतिपेदतुः २
गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम् ।
आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोरदर्शनम् ३
व्यतिक्रम्य तु वेगेन गृहीत्वा दक्षिणां दिशम् ।
सुभीमं तन्महारण्यं व्यतियातौ महाबलौ ४
ततः परं जनस्थानात्त्रिक्रोशं गम्य राघवौ ।
क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ५
नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः ।
नानावर्णैः शुभैः पुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ६
दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिक्यतुः ।
तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणदुःखितौ ७
ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा ।

इस प्रकार उसके लिये जल देकर रामलक्ष्मण वनमें सीताको देख पश्चिम दिशाको गये धनुषबाणको धारण किये । वे दोनों इक्ष्वाकुवंशी दक्षिण दिशाको जाकर जिसपर कोई न गया हो ऐसे मार्गको प्राप्त हुए, बहुत बांस आदिके वृक्ष और लता (बेलों) से घिरे हुए, चारों ओरसे विषम, घोरदर्शनवाले, सर्प और सिंहोंसे सेवित और भयानक उस दण्डकारण्य निकलकर वेगसे चले । महाबली वे रामलक्ष्मण जनस्थानसे तीन कोस जाकर क्रौञ्चारण्य नामक वनमें प्रविष्ट हुए । (१-५)

सीताके हरनेसे दुबले हुए और जहां तहां बैठते वे रामलक्ष्मण सीताको देखनेकी इच्छा करते अनेक प्रकारके मेघोंके समूहके तुल्य, चारों ओर फूले हुए, अनेक पक्षिगणोंसे सेवित, नाना प्रकारके सर्प और मृगोंसे युक्त उस क्रौञ्चारण्य वनको ढूंढने लगे । तदनन्तर दशरथके पुत्र (परस्पर)

क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे ८
दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम् ।
नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम् ९
ददृशाते गिरौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ ।
पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम् १०
आसाद्य च नरव्याघ्रौ दर्यास्तस्याविदूरतः ।
ददर्शतुर्महारूपां राक्षसीं विकृताननाम् ११
भयदामल्पसत्त्वानां बीभत्सां रौद्रदर्शनाम् ।
लम्बोदरीं तीक्ष्णदंष्ट्रां करालीं परुषत्वचम् १२
भक्षयन्तीं मृगान्भीमान्विकटां मुक्तमूर्धजाम् ।
अवैक्षतां तु तौ तत्र भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ १३
सा समासाद्य तौ वीरौ व्रजन्तं भ्रातुरग्रतः ।
एहि रंस्यावहेत्युक्त्वा समालम्भत लक्ष्मणम् । १४
उवाच चैनं वचनं सौमित्रिमुपगुह्य च ।
अहं त्वयोमुखी नाम लाभस्ते त्वमसि प्रियः १५

लक्ष्मणने (क्रौञ्चारण्यसे निकलकर) मतङ्गाश्रमके पूर्वभागमें तीन कोस कर (क्रौञ्चारण्य और मतङ्गाश्रमके) बीचमें घोर, बहुत हैं भयानक और हरिण जिसमें, अनेक जीवोंसे व्याप्त, घने वृक्षवाले उस वनको कर पातालके समान गम्भीर, हमेशा अन्धकारसे संयुक्त दरी (गुफा) पर्वतपर देखा । (८–१०)

नरव्याघ्र उन रामलक्ष्मणने उस गुफाके पास पहुंचकर बडे रूपवाली, बुरे वाली, छोटे जीवोंको भय देनेवाली, भयानक, घोररूपवाली, लम्बे वाली, पैनी दाढवाली, काली, कडी खालवाली, भयानक, मृगोंको ती हुई, विकट, खुले केशोंवाली राक्षसीको देखा । तदनन्तर वे राम-लक्ष्मण वहां (सीताको) ढूंढने लगे । उसने उन वीरोंके पास जाकर चलते लक्ष्मणको "आओ रमण करें" ऐसा कह भाईके सामने ही पकड लिया, और लक्ष्मणको लिपटकर वचन बोली । (११–१५)

नाथ पर्वतदुर्गेषु नदीनां पुलिनेषु च।
आयुश्चिरमिदं वीर त्वं मया सह रंस्यसे १६
एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः।
कर्णनासस्तनं तस्या निचकर्तारिसूदनः १७
कर्णनासे निकृत्ते तु विस्वरं विननाद सा।
यथागतं प्रदुद्राव राक्षसी घोरदर्शना १८
तस्यां गतायां गहनं व्रजन्तौ वनमोजसा।
आसेदतुरमित्रघ्नौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ १९
लक्ष्मणस्तु महातेजाः सत्त्ववाञ्छीलवाञ्छुचिः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् २०
स्पन्दते मे दृढं बाहुरुद्विग्नमिव मे मनः।
प्रायशश्चाप्यनिष्टानि निमित्तान्युपलक्षये २१
तस्मात्सज्जीभवार्य त्वं कुरुष्व वचनं मम।
ममैव हि निमित्तानि सद्यः शंसन्ति संभ्रमम् २२
एष वञ्चुलको नाम पक्षी परमदारुणः।

मैं अयोमुखी नामवाली हूं, तुमको लाभभूत हूं, तुम मेरे प्रिय हो। हे वीर! पर्वतके शिखर और नदियोंके किनारों पर इस शेष आयु (अवस्था) को ... साथ रमण करोगे। इस प्रकार बोधित वैरियोंके नाश करनेवाले लक्ष्मण क्रोधित हो तलवार निकालकर उसके कान, नाक, स्तन काट दिये। भयानक दर्शनवाली वह राक्षसी कान नाक कट जानेपर बुरे स्वरका शब्द कर ... आई वैसे ही भागी। वैरियोंका नाश करनेवाले भाई रामलक्ष्मण ... राक्षसीके चले जानेपर अपने बलसे घने वनमें प्रवेश करते हुए (आगे ... हुए) निमित्तोंको प्राप्त हुए, महातेजस्वी, सत्य बोलनेवाले, शीलयुक्त, पवित्र, हाथ जोडे लक्ष्मण प्रकाशित तेजवाले भाईसे बोले। (१६-२०)

मेरा दृढ वामबाहु फडकता है और मेरा मन दुःखीसा हो रहा है ... प्रायः अशुभ निमित्त देखता हूं। हे आर्य! इसलिये आप सावधान हो... और मेरा हित वचन करें क्योंकि अपशकुन शीघ्र ही भयको जताते ... बडा दारुण यह वञ्चुलक नामक पक्षी युद्धमें हम दोनोंके विजयको ...

आवयोर्विजयं युद्धे शंसन्निव विनर्दति २३
तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा।
संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम् २४
संवेष्टितमिवात्यर्थं गहनं मातरिश्वना।
वनस्य तस्य शब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव २५
तं शब्दं काङ्क्षमाणस्तु रामः खड्गी सहानुजः।
ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् २६
आसेदतुश्च तद्रक्षस्तावुभौ प्रमुखे स्थितम्।
विवृद्धमशिरोग्रीवं कबन्धमुदरे मुखम् २७
रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम्।
नीलमेघनिभं रौद्रं मेघस्तनितनिःस्वनम् २८
अग्निज्वालानिकाशेन ललाटस्थेन दीप्यता।
महापक्ष्मेण पिङ्गेन विपुलेनायतेन च २९
एकेनोरसि घोरेण नयनेन सुदर्शिना।
महादंष्ट्रोपपन्नं तं लेलिहानं महामुखम् ३०

...ता शब्द करता है, उस समस्त वनको अपने बलसे इस प्रकार राम ...णके ढूंढते हुए उस वनको तोडता हुआसा बडा शब्द उत्पन्न हुआ, ...ने आकाशको अत्यन्त पूर्णसा कर दिया, उस वनके आकाशको पूर्ण ...ता हुआसा शब्द हुआ। (२१-२५)

उस शब्दको जाननेकी इच्छा करते भाई समेत रामने बडे हृदयवाले, ... शरीरवाले राक्षसको गुल्ममें (वायुके बगूलेमें) दूरसे देखा। तदनन्तर ...नों राम लक्ष्मणने सामने पडे हुए, शिर और ग्रीवारहित, बडे ऊंचे और ...में मुखवाले कबन्ध नाम राक्षसको देखा, वह घने तथा तीक्ष्ण रोमोंसे ...लक्षित, महान् पर्वतके तुल्य उन्नत, नीले मेघके सदृश, रौद्र और मेघके ...दके समान आवाजवाला था और अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाश-...न, बडे पक्ष्मों (पलक) वाले पीले वर्णवाले, बडे लम्बे चौडे, ललाटमें ...त एक नेत्रसे तथा छातीमें स्थित, घोर, दीर्घदर्शी दूसरे नेत्रसे युक्त था,

भक्षयन्तं महाघोरानृक्षसिंहमृगाद्विजान् ।
घोरौ भुजौ विकुर्वाणमुभौ योजनमायतौ ३१
कराभ्यां विविधान्गृह्य ऋक्षान्पक्षिगणान्मृगान् ।
आकर्षन्तं विकर्षन्तमनेकान्मृगयूथपान् ३१
स्थितमावृत्य पन्थानं तयोर्भ्रात्रोः प्रपन्नयोः ।
अथ तौ समतिक्रम्य क्रोशमात्रे ददर्शतुः ३३
महान्तं दारुणं भीमं कबन्धं भुजसंवृतम् ।
कबन्धमिव संस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ३४
स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ ।
जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन्बलात् ३५
खड्गिनौ दृढधन्वानौ तिग्मतेजौ वपुर्धरौ ।
भ्रातरौ विवशं प्राप्तौ कृष्यमाणौ महाबलौ ३६
तत्र धैर्येण शूरस्तु राघवो नैव विव्यथे ।

बडी दाढोंवाले महामुखको चाटता था (२६--३०)

बडे घोर रीछ, सिंह, हरिण, चीते आदिको खाता था, दो योजन ल घोर दोनों बाहुओंको फैलाये हुए था, दोनों हाथोंसे अनेक रीछ और प समूहों तथा मृगोंको खींचता था अनेक मृगयूथ पतियोंका आ करता था और उन दोनों भाइयोंका मार्ग रोककर स्थित था, अनन्तर सम्मुख जाकर एक कोशकी दूरीसे महान् दारुण, भयंकर भुज युक्त, देहस्थितिसे कबन्धके तुल्य, अतिघोर दर्शनवाला कबन्ध बडी बाहुवाले उसने बडी भुजाओंको अत्यन्त पसार कर दोनों लक्ष्मणको बलसे पीडा पहुंचाते हुएने पकड लिया, तलवार बांधे, दृढ लिये, प्रचंड तेजयुक्त शरीरधारी, महाबली लक्ष्मण विवश हो (३१--३५)

उस समय धीरताकेकारण शूर रामचन्द्रजी तो दुःखी न हुए, बालक तथा धैर्यरहित होनेके कारण लक्ष्मण अतिखिन्न हो गये और होकर लक्ष्मण रामसे बोले, हे वीर राक्षसके वशमें प्राप्त हुए विवश

बाल्यादनाश्रयत्वाच्च लक्ष्मणस्त्वतिविव्यथे ३७
उवाच च विषण्णः सन्राघवं राघवानुजः ।
पश्य मां विवशं वीर राक्षसस्य वशं गतम् ३८
मयैकेन विनिर्मुक्तः परिमुञ्चस्व राघव ।
मां हि भूतबलिं दत्त्वा पलायस्व यथासुखम् ३९
अधिगन्तासि वैदेहीमचिरेणेति मे मतिः ।
प्रतिलभ्य च काकुत्स्थ पितृपैतामहीं महीम् ४०
तत्र मां राम राज्यस्थः स्मर्तुमर्हसि सर्वदा ।
लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिमब्रवीत् ४१
मा स्म त्रासं वृथा वीर न हि त्वादृग्विषीदति ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रूरो भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ४२
पप्रच्छ घननिर्घोषः कबन्धो दानवोत्तमः ।
कौ युवां वृषभस्कन्धौ महाखड्गधनुर्धरौ ४३
घोरं देशमिमं प्राप्तौ मम भक्षावुपस्थितौ ।
वदतं कार्यमिह वां किमर्थं चागतौ युवाम् ४४

...ो, हे राम ! मुझ एकसे वियुक्त होकर छूट जाओ । कबन्धको मेरी ...ि देकर यथासुख तुम भाग जाओ; तुम सीताको जल्दी ही पाओगे यह ...ा विचार है । हे राम ! पिता और बाबाकी पृथ्वीको पाकर राज्यपर स्थित ...मेरा सदा स्मरण रखना । लक्ष्मणद्वारा इस प्रकार बोधित राम लक्ष्मणसे ...े, हे वीर, डर न करो तुम सदृश पुरुष दुःखी नहीं होते । (३६-४०) इसी अवसरमें दुष्ट, मेघसमान शब्दवाला, दानवोंमें श्रेष्ठ कबन्ध राम ...ष्मणसे पूछने लगा, बैलके समान कंधोंवाले, बडे खड्ग और धनुष्धारी, ...े इस देशको प्राप्त हुए, मेरे आहाररूप, तुम दोनों कौन हो ! अपना ...र्य बताओ, तुम दोनों किसलिये यहां आये हो ? क्यों भूखसे पीडित, ...ांपर स्थित मेरे इस देशको प्राप्त हुए हो ? बाण धनुष् खड्ग युक्त, ...े सींगवाले बैलके सदृश तुम मेरे मुखको प्राप्त हुए हो, अब जीना कठिन

*

इमं देशमनुप्राप्तौ क्षुधार्तस्येह तिष्ठतः ।
सबाणचापखड्गौ च तीक्ष्णशृङ्गाविवर्षभौ ४१
ममास्यमनुसंप्राप्तौ दुर्लभं जीवितं पुनः ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कबन्धस्य दुरात्मनः ४२
उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ।
कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरं प्राप्य दारुणं सत्यविक्रम ४३
व्यसनं जीवितान्ताय प्राप्तमप्राप्य तां प्रियाम् ।
कालस्य सुमहद्वीर्यं सर्वभूतेषु लक्ष्मण ४४
त्वां च मां च नरव्याघ्र व्यसनैः पश्य मोहितौ ।
नातिभारोऽस्ति दैवस्य सर्वभूतेषु लक्ष्मण ४५
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे ।
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ५०

इति ब्रुवाणो दृढसत्यविक्रमो महायशा दाशरथिः प्रतापवान् ।
अवेक्ष्य सौमित्रिमुदग्रपौरुषं स्थिरां तदा स्वां मतिमात्मनाकरोत्

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकांडे सप्ततितमः सर्गः ॥७०॥ [...]

है दुरात्मा कबन्धका वह वचन सुनकर राम सूखे हुए मुखसे ... बोले । (४१-४५)

हे सत्यविक्रमवाले ! कष्टसे फिर कष्ट पाकर स्थित हम दोनों ... सीताको न पाकर जीवनके लिये फिर दारुण दुःख प्राप्त हुआ । हे ... सब प्राणियोंमें कालका पराक्रम बडा है । हे नरव्याघ्र ! अपनेको और ... दुःखोंसे मोहित हुए देखो । हे लक्ष्मण ! सम्पूर्ण प्राणियोंके विषयमें ... कुछ भार नहीं है । शूरवीर, बलवान्, अस्त्र चलानेवाले, कालके ... होकर वालूके किनारेकी तरह युद्धमें नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार ... दृढ और सत्यविक्रमवाले, महायशस्वी, प्रतापी, रामने अत्यन्त पा... वाले लक्ष्मणको दीन देखकर उस समय अपनी बुद्धिको स्वयं ही ... कर लिया । (४६-५१)

यहाँ ७० वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥७०॥

एकसप्ततितमः सर्गः

तौ तु तत्र स्थितौ दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
बाहुपाशपरिक्षिप्तौ कबन्धो वाक्यमब्रवीत् १
तिष्ठतः किं नु मां दृष्ट्वा क्षुधार्तं क्षत्रियर्षभौ ।
आहारार्थं तु संदिष्टौ दैवेन गतचेतसौ २
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणो वाक्यं प्राप्तकालं हितं तदा ।
उवाचार्तिं समापन्नो विक्रमे कृतनिश्चयः ३
त्वां च मां च पुरा तूर्णमादत्ते राक्षसाधमः ।
तस्मादसिभ्यामस्याशु बाहू छिन्दावहे गुरू ४
भीषणोऽयं महाकायो राक्षसो भुजविक्रमः ।
लोकं ह्यतिजितं कृत्वा ह्यावां हन्तुमिहेच्छति ५
निश्चेष्टानां वधो राजन्कुत्सितो जगतीपते ।
क्रतुमध्योपनीतानां पशूनामिव राघव ६
एतत्संजल्पितं श्रुत्वा तयोः क्रुद्धस्तु राक्षसः ।
विदार्यास्यं तदा रौद्रस्तौ भक्षयितुमारभत् ७

भुजारूपी पाशसे बंधे हुए, वहांपर खडे भाई रामलक्ष्मणसे कबन्ध बोला; हे क्षत्रियो ! मुझे क्षुधित देखकर दैवने बुद्धिहीन तुम दोनोंको आहारके लिये भेजा है, अतः तुम किसलिये ठहर रहे हो ? दुःखको प्राप्त और विक्रमसे कृतोद्योग लक्ष्मण उस वाक्यको सुनकर समयानुकूल हित वचन बोले ,राक्षसोंमें नीच यह तुम्हें तथा मुझको शीघ्र ही खा जायगा, इससे पहिले इसकी बडी लम्बी बाहुओंको तलवारसे काट डालें, भयानक, बडे शरीरवाला, भुजबली यह राक्षस लोकको अतिजय करके हम दोनोंको मारना चाहता है। (१-५)

हे राजन् राघव ! क्षत्रियोंको चेष्टारहितोंका वध करना यज्ञस्थलमें लाये गये पशुओंके समान अनुचित है। भयानक, क्रोधी वह राक्षस उन दोनोंका यह वार्तालाप सुनकर मुँह फैला उन दोनोंको खानेको उद्यत हुआ।

ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ ।
अच्छिन्दन्तां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशतः ८
दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः ।
चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः ९
स पपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ।
खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा १०
स निकृत्तौ भुजौ दृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः ।
दीनः पप्रच्छ तौ वीरौ कौ युवामिति दानवः ११
इति तस्य ब्रुवाणस्य लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
शशंस राघवं तस्य कबन्धस्य महाबलः १२
अयमिक्ष्वाकुदायादो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
अस्यैवावरजं विद्धि भ्रातरं मां च लक्ष्मणम् १३
मात्रा प्रतिहते राज्ये रामः प्रव्राजितो वनम् ।
मया सह चरत्येष भार्यया च महद्वनम् १४
अस्य देवप्रभावस्य वसतो विजने वने ।

तब देशकालके जाननेवाले प्रसन्न राम-लक्ष्मणने खड्गोंसे ही कन्धों[illegible] उसकी भुजाओंको काट दिया, प्रतिबन्धरहित दक्षिण भुजाको रा[illegible] तथा वामबाहुको वीर लक्ष्मणने शीघ्र ही तलवारसे काट डाला । महा[illegible] और महाशब्दवाला वह भुजाओंके कट जानेसे मेघके समान आका[illegible] पृथ्वी दिशाओंको शब्दयुक्त करता गिर पडा । (८-१०)

रक्तौघसें डूबा, दीन वह दानव भुजाओंको कटी हुई देखकर "[illegible] कौन हो ? " इस प्रकार पुनः उन दोनों वीरोंसे पूंछने लगा, इस प्र[illegible] कहते हुए महात्मा कबन्धसे शुभलक्षणवाले लक्ष्मणने रामचन्द्रजीको [illegible] दिया अर्थात् रामका परिचय दिया, ये इक्ष्वाकुवंशी मनुष्योंमें प्रसिद्ध [illegible] हैं, इन्हींके छोटे भाई मुझको लक्ष्मण जानो, माताद्वारा राज्य हरे जा[illegible] वनको प्रेषित यह राम मेरे साथ तथा स्त्री के साथ विजन वनमें घूमते [illegible] देवके समान प्रभाववाले और विजन वनमें वसते हुए इन रामकी [illegible]

राक्षसापहृता भार्या यामिच्छन्ताविहागतौ १५
त्वं तु को वा किमर्थं वा कबन्धसदृशो वने ।
आस्यनोरसि दीप्तेन भग्नजङ्घो विचेष्टसे १६
एवमुक्तः कबन्धस्तु लक्ष्मणेनोत्तरं वचः ।
उवाच परम प्रीतस्तदिन्द्रवचनं स्मरन् १७
स्वागतं वां नरव्याघ्रौ दिष्ट्या पश्यामि चाप्यहम् ।
दिष्ट्या चेमौ निकृत्तौ मे युवाभ्यां बाहुबन्धनौ १८
विरूपं यच्च मे रूपं प्राप्तं ह्यविनयाद्यथा ।
तन्मे शृणु नरव्याघ्र तत्त्वतः शंसतस्तव १९

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ७१॥[२३०६]

द्विसप्ततितमः सर्गः ।

पुरा राम महाबाहो महाबलपराक्रमम् ।
रूपमासीन्ममाचिन्त्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥
यथा सूर्यस्य सोमस्य शक्रस्य च यथा वपुः १

(किसी) राक्षसने हर ली जिसे देखते हुए हम यहां आये हैं। (११-१५) कटी जांघवाले तथा कबन्धके समान और छातीमें दीप्त मुखसे युक्त तुम कौन हो और किसलिये वनमें लोटते हो? लक्ष्मणद्वारा इस प्रकार ...षित तथा अतिप्रसन्न हुआ कबन्ध इन्द्रके उस वचनका स्मरण करता ...आ उत्तरमें वचन बोला, हे नरव्याघ्र! तुम दोनोंका आना अच्छा है, प्रारब्धसे ही मैंने आपको देखा और प्रारब्धसे ही तुम दोनोंने मेरे बाहु-...की बन्धनको काट दिया है। हे नरव्याघ्र! अविनयसे जैसे मैंने यह ...विषमरूप प्राप्त किया है सो तुम कहते हुए मुझसे यथार्थतया सुनो। (१६-१९)

यहाँ ७१ वाँ सर्ग समाप्त हुआ। ॥७१॥

... हे महाबली, पराक्रमी महाबाहो राम! मेरा रूप तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध ...था अचिन्तनीय था जैसा कि सूर्य, चन्द्र और इन्द्रका शरीर है। हे राम! ...सो ऐसे रूपवाला मैं संसारको त्रास देनेवाले क्रूर रूपको धारण कर जहां

सोऽहं रूपमिदं कृत्वा लोकवित्रासनं महत्।
ऋषीन्वनगतान्राम त्रासयामि ततस्ततः १
ततः स्थूलशिरा नाम महर्षिः कोपितो मया।
स चिन्वन्विविधं वन्यं रूपेणानेन धर्षितः २
तेनाहमुक्तः प्रेक्ष्यैवं घोरशापाभिधायिना।
एतदेवं नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम् ३
स मया याचितः क्रुद्धः शापस्यान्तो भवेदिति।
अभिशापकृतस्येति तेनेदं भाषितं वचः ४
यदा छित्त्वा भुजौ रामस्त्वां दहेद्विजने वने।
तदा त्वं प्राप्स्यसे रूपं स्वमेव विपुलं शुभम् ५
श्रिया विराजितं पुत्रं दनोस्त्वं विद्धि लक्ष्मण।
इन्द्रकोपादिदं रूपं प्राप्तमेवं रणाजिरे ६
अहं हि तपसोग्रेण पितामहमतोषयम्।
दीर्घमायुः स मे प्रादात्ततो मां विभ्रमोऽस्पृशत् ७
दीर्घमायुर्मया प्राप्तं किं मे शक्रः करिष्यति।
इत्येवं बुद्धिमास्थाय रणे शक्रमधर्षयम् ८

वहां वनगत ऋषियोंको दुःख देने लगा। इसके अनन्तर स्थूलशिरा नाम महर्षिको मैंने कोपित किया और अनेक प्रकारके अन्य (जीवों) को ढूंढते हुए मैंने उसे इस रूपसे डरपाया। ऐसा मेरा रूप देखकर कठिन शाप देनेवाले उन ऋषिने कहा कि 'तेरा रूप विगर्हित तथा बुरा हो जावे' तब 'मेरे धर्षणके हेतु दिये शापका नाश हो जाय, इस विषयमें मैंने उनसे याचना की तब उन्होंने यह (वक्ष्यमाण) वचन कहा। (१-५)

जब निर्जन वनमें राम तेरी भुजाओंको काट कर तुझे जलावेंगे तब तू अपने बड़े सुन्दर रूपको प्राप्त होगा। हे लक्ष्मण! कान्तिसे शोभित दनुका पुत्र जानो। (मैंने) युद्धमें इन्द्रके कोपसे यह रूप पाया था, ऋषिसे दिये हुए शापके अनन्तर मैंने उग्र तपस्यासे ब्रह्माको प्रसन्न किया, ब्रह्माने मुझे दीर्घायु दी, तभीसे मुझे अज्ञानने घेर लिया। दीर्घायु मैंने प्राप्त कर ली इन्द्र मेरा क्या करेगा, ऐसी बुद्धि कर मैंने संग्राममें इन्द्रका तिरस्कार

तस्य बाहुप्रमुक्तेन वज्रेण शतपर्वणा ।
सक्थिनी च शिरश्चैव शरीरे संप्रवेशितम् १०
स मया याच्यमानः सन्नानयद्यमसादनम् ।
पितामहवचः सत्यं तदस्त्विति समाब्रवीत् ११
अनाहारः कथं शक्तो भग्नसक्थिशिरोमुखः ।
वज्रेणाभिहतः कालं सुदीर्घमपि जीवितुम् १२
एवमुक्तस्तु मे शक्रो बाहू योजनमायतौ ।
प्रादादास्यं च मे कुक्षौ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् १३
सोऽहं भुजाभ्यां दीर्घाभ्यां संकृष्यास्मिन्वने चरान् ।
सिंहद्वीपमृगव्याघ्रान्भक्षयामि समन्ततः १४
स तु मामब्रवीदिन्द्रो यदा रामः सलक्ष्मणः ।
छेत्स्यते समरे बाहू तदा स्वर्गं गमिष्यसि १५
अनेन वपुषा राम वनेऽस्मिन्राजसत्तम ।
यद्यत्पश्यामि सर्वस्य ग्रहणं साधु रोचये १६

किया उसकी बाहुसे छूट सौ धारवाले वज्रने जांघोके नीचेका हिस्सा और शिर शरीरमें घुसा दिया (९–१०)

मुझसे प्रार्थित इन्द्रने मुझे यमलोकको तो न पहुंचाया किन्तु "ब्रह्माका वचन सत्य हो" यह कहा। भग्नसक्थि तथा भग्नशिरवाला, वज्रसे अभिहत तथा भोजनरहित मैं बहुत कालतक कैसे जी सकूंगा। इस प्रकार मुझसे याचित इन्द्रने मुझे चार कोशतक फैली हुई भुजा दीं और कुक्षिमें तीव्र दाढोंवाला मुख दिया सो मैं इस वनमें दीर्घ भुजाओंसे वनचारी सिंह, हाथी, मृग, व्याघ्रोंको खींचकर खाता हूं । इन्द्रने मुझसे कहा कि लक्ष्मणसमेत राम जब युद्धमें तेरी बाहु काटेंगे तब तू स्वर्गको प्राप्त होगा ।(११–१५)

हे राजसत्तम राम ! इस वनमें इस शरीरसे जो जो देखता हूं उस सबका ग्रहण करना मुझे अच्छा लगता है। इस प्रकार अवश्य ही राम

अवश्यं ग्रहणं रामो मन्येऽहं समुपैष्यति ।
इमां बुद्धिं पुरस्कृत्य देहन्यासकृतश्रमः १७
स त्वं रामोऽसि भद्रं ते नाहमन्येन राघव ।
शक्यो हन्तुं यथातत्त्वमेवमुक्तं महर्षिणा। १८
अहं हि मतिसाचिव्यं करिष्यामि नरर्षभ ।
मित्रं चैवोपदेक्ष्यामि युवाभ्यां संस्कृतोऽग्निना। १९
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दनुना तेन राघवः ।
इदं जगाद वचनं लक्ष्मणस्योपशृण्वतः २०
रावणेन हृता भार्या मम सीता यशस्विनी ।
निष्क्रान्तस्य जनस्थानात्सह भ्रात्रा यथासुखम् २१
नाममात्रं तु जानामि न रूपं तस्य रक्षसः ।
निवासं वा प्रभावं वा वयं तस्य न विद्महे २२
शोकार्तानामनाथानामेवं विपरिधावताम् ।
कारुण्यं सदृशं कर्तुमुपकारे च वर्तताम् २३

ग्रहण को प्राप्त होंगे, यह मैं जानता हूं, इस बुद्धिको लक्ष्यमें धर विरा[म] देहके त्यागनेमें उद्योग कर रहा हूं । हे राघव ! तुम्हारा कल्याण हो, तु[म] राम हो, मैं और से नहीं मारा जा सकता हूं, यह सच ही महर्षिने कहा था। हे नरश्रेष्ठ ! तुम दोनों द्वारा यदि मैं संस्कृत होऊं तो मैं बुद्धिसे सहाय[ता] करूंगा और उस विषयमें मित्रोंको भी उपदेश करूंगा। दनुवंशी कबन्धसे इस प्रकार बोधित धर्मात्मा राम लक्ष्मणके सामने ही यह वचन बोले। (१९–२०)

भाईके साथ जनस्थानसे निकले हुए मेरी यशस्विनी स्त्री रावणने सुखपूर्वक हर ली । उस राक्षसका नाम मात्र जानते हैं और उसका रू[प], निवास, और प्रभाव नहीं जानते, सो तुम शोकसे पीडित, अनाथ, इ[स] तरह दौडते तथा परोपकारमें वर्तमान हमारे विषयमें दयाभाव कर[ने] योग्य हो । हे वीर ! हम समय पर हाथियों द्वारा टूटे हुए सूखे काष्ठों[को] लाकर सज्जित किये हुए बडे गर्त (गढे) में तुम्हें जलावेंगे । तुम सीताको

काष्ठान्यादाय शुष्काणि काले भग्नानि कुञ्जरैः ।
धक्ष्यामस्त्वां वयं वीर श्वभ्रे महति कल्पिते २४
स त्वं सीतां समाचक्ष्व येन वा यत्र वा हृता ।
कुरु कल्याणमत्यर्थं यदि जानासि तत्त्वतः २५
एवमुक्तस्तु रामेण वाक्यं दनुरनुत्तमम् ।
प्रोवाच कुशलो वक्तुं वक्तारमपि राघवम् २६
दिव्यमस्ति न मे ज्ञानं नाभिजानामि मैथिलीम् ।
यस्तां वक्ष्यति तं वक्ष्ये दग्धः स्वं रूपमास्थितः २७
योऽभिजानाति तद्रक्षस्तं वक्ष्ये राम तत्परम् २८
अदग्धस्य हि विज्ञातुं शक्तिरस्ति न मे प्रभो ।
राक्षसं तं महावीर्यं सीता येन हृता तव २९
विज्ञानं हि मम भ्रष्टं शापदोषेण राघव ।
स्वकृतेन मया प्राप्तं रूपं लोकविगर्हितम् ३०
किं तु यावन्न यात्यस्तं सविता श्रान्तवाहनः ।
तावन्मामवटे क्षिप्त्वा दह राम यथाविधि ३१

बताओ, जिसने हरी है और जहां ले गया है। यदि ठीक तौरसे जानते हो तो अत्यन्त कृपा करो। (२१-२५)

रामद्वारा बोधित दनुवंशी कहनेवाले रामको भी कहनेमें चतुर कबन्ध उत्तम वाक्य बोला, मुझे दिव्यज्ञान नहीं है और न मैं सीताको जानता हूं; किन्तु जला हुआ मैं अपने रूपको पाकर जो उस सीताको बतावेगा, उसे बताऊंगा। हे राम! जो जानता है वह उस राक्षसको बतावेगा। हे प्रभो! विना जले हुए मेरी शक्ति उस महाबली राक्षसको जाननेकी नहीं है, जिसने तुम्हारी सीता हरी है। हे राम! अपने दोषसे मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है और मैंने अपने कर्मोंसे संसारमें निन्दित रूप पाया है, किन्तु हे राम! जबतक थके हुए वाहनवाले सूर्य अस्त न हो जावें तबतक मुझे गढेमें डाल विधिपूर्वक जला दो। (२६-३०)

हे वीर राम! तुम मुझे न्यायसे गढेमें जला दोगे तब मैं उसको बताऊंगा

दग्धस्त्वयाहमवटे न्यायेन रघुनन्दन ।
वक्ष्यामि तमहं वीर यस्तं ज्ञास्यति राक्षसम् ३१
तेन सख्यं च कर्तव्यं न्याय्यवृत्तेन राघव ।
कल्पयिष्यति ते प्रीतः साहाय्यं लघुविक्रमः ३३
न हि तस्यास्त्यविज्ञातं त्रिषु लोकेषु राघव ।
सर्वान्परिसृतो लोकान्पुरासौ वै कारणान्तरे ३४

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ७२[२३४०]

त्रिसप्ततितमः सर्गः ।

एवमुक्तौ तु तौ वीरौ कबन्धेन नरेश्वरौ ।
गिरिप्रदरमासाद्य पावकं विससर्जतुः १
लक्ष्मणस्तु महोल्काभिर्ज्वलिताभिः समन्ततः ।
चितामादीपयामास सा प्रजज्वाल सर्वतः २
तच्छरीरं कबन्धस्य घृतपिण्डोपमं महत् ।
मेदसा पच्यमानस्य मन्दं दहति पावकः ३
स विधूय चितामाशु विधूमोऽग्निरिवोत्थितः ।
अरजे वाससी बिभ्रन्माल्यां दिव्यां महाबलः ४

जो उसे जानता है। हे राम ! न्यायपूर्वक उससे मित्रता करना, शीघ्रता युक्त पराक्रमवाला वह प्रसन्न हो तुम्हारी सहाय्य करेगा। हे राम ! तीनों लोकोंमें उसको कुछ भी अविज्ञात (न जाना हुआ) नहीं है; क्योंकि पहिले वह किसी कारणसे सब लोकोंमें घूमा था। (३१-३३)

यहाँ ७२ वाँ सर्ग समाप्त हुआ। ॥७२॥

कबन्धद्वारा इस प्रकार बोधित नरेश्वर रामलक्ष्मणने उसे पर्वतके गढ़ेमें ले जाकर अग्निको लगा दिया, लक्ष्मण जलती हुई महोल्का (बड़ी बड़ी लपटों) से चिताको प्रदीप्त करने लगे, वह चारों ओरसे जलने लगी और मांससे बढे हुए कबन्धके घीके पिण्डके समान शरीरको मन्द मन्द जलाने लगा, वह (कबन्ध) चिताको इधर उधर हटाकर निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआंरहित अग्निके समान दीप्तसा निकला, तदनन्तर

ततश्चिताया वेगेन भास्वरो विमलाम्बरः ।
उत्पपाताशु संहृष्टः सर्वप्रत्यङ्गभूषणः ५
विमाने भास्वरे तिष्ठन्हंसयुक्ते यशस्करे ।
प्रभया च महातेजा दिशो दश विराजयन् ६
सोऽन्तरिक्षगतो वाक्यं कबन्धो राममब्रवीत् ।
शृणु राघव तत्त्वेन यथा सीतामवाप्स्यसि ७
राम षड्युक्तयो लोके याभिः सर्वं विमृश्यते ।
परिमृष्टो दशान्तेन दशाभागेन सेव्यते ८
दशाभागगतो हीनस्त्वं हि राम सलक्ष्मणः ।
यत्कृते व्यसनं प्राप्तं त्वया दारप्रधर्षणम् ९
तदवश्यं त्वया कार्यः स सुहृत्सुहृदां वर ।
अकृत्वा हि न ते सिद्धिमहं पश्यामि चिन्तयन् १०
श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः ।

प्रकाशमान, उज्ज्वल वस्त्रधारी, प्रसन्नचित्त, सब अङ्गोंमें भूषण धारण किये वेगसे चितासे ऊपरको निकला । (१-५)

महातेजस्वी कबन्ध प्रकाशमान, यशको देनेवाले, हंसयुक्त विमानमें बैठा और अपनी कान्तिसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान करता आकाशमें पहुंचकर रामसे वाक्य बोला, कि हे राम! ध्यानसे सुनो जिस प्रकार सीताको पाओगे, हे राम ! संसार में छः (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, समाश्रय नामक) युक्ति हैं जिनसे सब कार्य (राजाओंके) विचारे जाते हैं, दौस्थ्यरूपावस्था अर्थात् दुर्दशाके फलसे युक्त पुरुष दशाके अंशसे उसको (युक्तिको) सेवन करता है। सो इस समय आप भी लक्ष्मण सहित उस दशाभागसे युक्त हैं इसीसे राज्यभ्रष्टत्व, सीतावियोग-त्वादि दुःखको प्राप्त हुए हैं, हे मित्रोंमें श्रेष्ठ ! इससे आपको अवश्य वह मित्र बनाना चाहिये; क्योंकि विचार करता हुआ मैं विना मित्र बनाये तुम्हारी सिद्धि नहीं देखता । (६-१०)

हे राम ! मैं कहता हूं, सुनिये, इन्द्रके पुत्र, क्रोधी, वालि नामक

भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन वालिना शक्रसूनुना
ऋष्यमूके गिरिवरे पम्पापर्यन्तशोभिते। ११
निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः
वानरेन्द्रो महावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः। १२
सत्यसंधो विनीतश्च धृतिमान्मतिमान्महान्
दक्षः प्रगल्भो द्युतिमान्महाबलपराक्रमः। १३
भ्रात्रा विवासितो राम राज्यहेतोर्महाबल
स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे। १४
भविष्यति हि ते राम मा च शोके मनः कृथाः
भवितव्यं हि यच्चापि न तच्छक्यमिहान्यथा। १५
कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूल कालो हि दुरतिक्रमः
गच्छ शीघ्रमितो राम सुग्रीवं तं महाबलम्। १६
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाऽद्य राघव
अद्रोहाय समागम्य दीप्यमाने विभावसौ। १७
स च ते नावमन्तव्यः सुग्रीवो वानराधिपः १८

भाईसे निकाला हुआ सुग्रीव नामक वानर है। वह पम्पापर्यन्त शोभि- ऋष्यमूक नामक पर्वतपर चार वानरोंके साथ बसता है। हे राम! वानरों स्वामी, अत्यन्त पराक्रमी, तेजयुक्त अतुल प्रभाववाला, सत्यप्रतिज्ञावाला, नम्र, धृतियुक्त, बडा बुद्धिमान्, प्रवीण, सीधा, कान्तिमान्, अत्यन्त ब- तथा पराक्रमवाला, वह वानरराज्यके कारण भाईने निकाल दि- है। हे राम! वह तुम्हारा मित्र और सीताके ढूंढनेमें सहायक होगा, तु- शोकमें मन न करो। (११-१५)

हे इक्ष्वाकुवंशी! जो होना है, वह अन्यथा नहीं किया जा सक- क्योंकि काल दुरतिक्रम है। हे रघुवंशी राम! यहांसे शीघ्र जाइये और जाकर आज ही महाबली सुग्रीवको अग्नि प्रदीप्त कर परस्पर द्रोह- नाशके लिये शीघ्र मित्र बनाओ, तुम उन वानरेश्वर सुग्रीवका अपमान मत करना, क्योंकि वह कृतज्ञ, इच्छानुकूल रूपधारी, सहायार्थी, ब-

कृतज्ञः कामरूपी च सहायार्थी च वीर्यवान् ।
शक्तौ ह्यद्य युवां कर्तुं कार्यं तस्य चिकीर्षितम् १९
कृतार्थो वाऽकृतार्थो वा कृत्यं तव करिष्यति ।
स ऋक्षरजसः पुत्रः पम्पामटति शङ्कितः २०
भास्करस्यौरसः पुत्रो वालिना कृतकिल्बिषः ।
संनिधायायुधं क्षिप्रमृष्यमूकालयं कपिम् । २१
कुरु राघव सत्येन वयस्यं वनचारिणम् ।
स हि स्थानानि सर्वाणि कार्त्स्न्येन कपिकुञ्जरः २२
नरमांसाशिनां लोके नैपुण्यादधिगच्छति ।
न तस्याविदितं लोके किञ्चिदस्ति हि राघव २३
यावत्सूर्यः प्रतपति सहस्रांशुररिन्दम ।
स नदीर्विपुलाञ्छैलान्गिरिदुर्गाणि कन्दरान् २४
अन्वीक्ष्य वानरैः सार्धं पत्नीं तेऽधिगमिष्यति ।
वानरांश्च महाकायान्प्रेषयिष्यति राघव २५
दिशो विचेतुं तां सीतां त्वद्वियोगेन शोचतीम् ।
स यास्यति वरारोहां निर्मलां रावणालये २६

वान् वानर है, उसके इच्छितकार्यके करनेको आज आप भी समर्थ हैं कृतार्थ वा अकृतार्थ वह तुम्हारे कार्यको करेगा । वह ऋक्षरजाका पुत्र शङ्कित हो पम्पाके किनारे पर घूमता है, सूर्यका औरस पुत्र है और वालीने उससे वैर बांधा है । (१९–२०)

हे राम ! शीघ्र ही सौगन्धसे हथियारको ग्रहण कर ऋष्यमूकपर बसनेवाले वनचारी वानरको मित्र बनाओ, वानरोंमें हाथीके समान वह सुग्रीव राक्षसोंके सब स्थान अच्छी तरह निपुणतासे जानता है । हे वैरियोंका नाश करनेवाले राम ! जहांतक हजारों किरणवाला सूर्य तपता है, वहांतक उसे लोकोंमें अज्ञात कुछ भी नहीं है, वह बन्दरोंके साथ नदी, बडे पर्वत, पर्वतोंके दुर्ग, गुहा, इन सबको देखकर आपकी पत्नीको ला देगा । हे राम ! निर्मल, श्रेष्ठ रूपवाली तथा तुम्हारे वियोगसे शोक करती हुई सीताको ढूंढनेके वास्ते सब दिशाओंमें बडे बडे वानरोंको भेजेगा और रावणके स्थानपर

स मेरुशृङ्गाग्रगतामनिन्दितां प्रविश्य पातालतलेऽपि वाश्रिताम्।
प्लवङ्गमानां प्रवरस्तव प्रियां निहत्य रक्षांसि पुनः प्रदास्यति२७
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३॥[२३६

चतुः सप्ततितमः सर्गः।

दर्शयित्वा तु रामाय सीतायाः प्रतिपादने।
वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञः कबन्धः पुनरब्रवीत्। १
एष राम शिवः पन्थाः यत्रैते पुष्पिता द्रुमाः।
प्रतीचीं दिशमाश्रित्य प्रकाशन्त मनोरमाः २
जम्बूप्रियालपनसाप्लक्षन्यग्रोधतिन्दुकाः।
अश्वत्थाः कर्णिकाराश्च चूताश्चान्ये च पादपाः ३
धन्वना नागवृक्षाश्च तिलका नक्तमालकाः।
नीलाशोकाः कदम्बाश्च करवीराश्च पुष्पिताः॥
अग्निमुख्या अशोकाश्च सुरक्ताः पारिभद्रकाः ४
तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वा च तान्बलात्।
फलान्यमृतकल्पानि भक्षयन्तौ गमिष्यथः ५

स्वयं जायगा, वानरोंमें श्रेष्ठ वह सुग्रीव सुमेरुके शिखरके ऊपर पहुंची वा पातालतलमें गई हुई श्रेष्ठ सीताको वहीं जाकर राक्षसोंको मारकर आपको ला देगा॥ (२१-२६)

यहाँ ७३ वाँ सर्ग समाप्त हुआ।

उपायका जाननेवाला कबन्ध सीताके प्राप्त होनेका उपाय रामको दि कर फिर उसीके सदृश वाक्य बोला, हे राम! यह कल्याणकारी मार्ग है जहां ये मनोरम, फूले हुए वृक्ष पश्चिम दिशाके सहारे शोभित हैं, जो जामुन, प्रियाल, पनस, प्लक्ष, बडी तिन्दुक, पीपल, कन्हेर, आम, नागकेशर, तिलक, कंजुआ, काले अशोक, कदम्ब, करवीर, भल्लातक अशोक, रक्तचन्दन, पारिभद्रक नामक हैं, उनपर चढकर अथवा उन्हें नमाकर या पृथ्वीपर गिरा उनके फलोंको खाते हुए जाओगे। (१-५)

तदतिक्रम्य काकुत्स्थ वनं पुष्पतपादपम् ।
नन्दनप्रतिमं त्वन्यत्कुरवो ह्युत्तरा इव ६
सर्वकामफला वृक्षाः पादपास्तु मधुस्रवाः ।
सर्वे च ऋतवस्तत्र वने चैत्ररथे यथा ७
फलभारनतास्तत्र महाविटपधारिणः ।
शोभन्ते सर्वतस्तत्र मेघपर्वतसंनिभाः ८
तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वा यथासुखम् ।
फलान्यमृतकल्पानि लक्ष्मणस्ते प्रदास्यति ९
चङ्क्रमन्तौ वरान्देशाञ्छैलाच्छैलं वनाद्वनम् ।
ततः पुष्करिणीं वीरौ पम्पां नाम गमिष्यथः १०
अशर्करामविभ्रंशां समतीर्थमशैवलाम् ।
राम सञ्जातवालूकां कमलोत्पलशालिनीम् ११
तत्र हंसाः प्लवाः क्रौञ्चाः कुरराश्चैव राघव ।
वल्गुस्वना निकूजन्ति पम्पासलिलगोचराः १२

हे काकुत्स्थ ! फूले हुए वृक्षोंवाले उस वनको अतिक्रमण करके नन्दन-के तुल्य अन्य वनको देखोगे जैसे कि उत्तर कुरु । उसमें सबोंको इच्छित फल जिनके तथा फूलोंके रसको टपकानेवाले वृक्ष हैं और सब ऋतुएं जैसे कि चैत्ररथ वनमें, फलोंके भारसे नमे, बडी शाखाओंके धारण करनेवाले और मेघ तथा पर्वतके समान वृक्ष सुशोभित हैं, लक्ष्मण उन-पर चढकर या सुखपूर्वक फलोंको नीचे गिराकर अमृततुल्य फलोंको तुमको देंगे । श्रेष्ठ स्थलोंमें घूमते हुए वीर तुम एक पर्वतसे दूसरे पर्वतको और एक वनसे दूसरे वनको जाते हुए कंकडीरहित, बिना टूटे किनारे-वाली, एकसे जलवाली, शैवालहीन, वालुयुक्त, कमलोंके उत्पन्न करने-वाली पम्पा नामक पुष्करिणीपर जाओगे । (६-११)

हे राम ! वहां मधुर शब्दवाले और पम्पाके जलमें विचरनेवाले हंस, प्लवक, क्रौंच और कुरर शब्द करते हैं । वधके न जाननेवाले वे श्रेष्ठ पक्षी

नोद्विजन्ते नरान्दृष्ट्वा वधस्याकोविदाः शुभाः।
घृतपिण्डोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथः
रोहितान्वक्रतुण्डांश्च नडमीनांश्च राघव। १३
पम्पायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्र राम वरान्हतान्
निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककण्टकान्। १४
तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदास्यति
भृशं ते खादतो मत्स्यान्पम्पायाः पुष्पसंचये। १५
पद्मगन्धि शिवं वारि सुखशीतमनामयम्
उद्धृत्य सतताक्लिष्टं रौप्यस्फाटिकसंनिभम्। १६
असौ पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः पाययिष्यति
स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वराहान्वनचारिणः। १७
अपां लोभादुपावृत्तान्वृषभानिव नर्दतः।
रूपान्वितांश्च पम्पायां द्रक्ष्यसि त्वं नरोत्तम १८
सायाह्ने विचरन्राम विटपीन्माल्यधारिणः।
शीतोदकं च पम्पाया दृष्ट्वा शोकं विहास्यसि १९

मनुष्योंको देखकर नहीं डरते, घी के पिण्डेके समान मोटे उन पक्षियोंको खावोगे। हे रघुवंशी राम! तुम्हारी भक्तिसे युक्त लक्ष्मण रोहित, टेढे मुखकी मछली, नडमीन–इनको पम्पाके बीचमें बाणोंसे मार खाल व पंखहीन कर लोहपर पका, कांटरहित कर तुमको देंगे। (१२-१५)

यह लक्ष्मण पम्पाके पुष्पोंके ढेरमें (स्थित) अच्छी तरह मछलियां खाते हुए आपको कमलकी सुगन्धियुक्त, कल्याणकारी, शीतल, व्याधिनाश करनेवाले, चांदी तथा स्फटिकके समान जलको कमलके पत्तेसे लेकर पिलावेंगे। हे नरश्रेष्ठ! मोटे पर्वतकी गुफाओंमें सोनेवाले, वनचारी जलके लोभसे इकट्ठे हुए शब्द करते बैलोंके समान, रूपयुक्त, वराहोंको आप पम्पा पर देखोगे। हे राम! सायंकालमें घूमते हुए तुम फूलवाले वृक्षोंको देखकर और पम्पाका शीतल जल देखकर शोक छोड दोगे। हे राम

सुमनोभिश्चितांस्तत्र तिलकान्नक्तमालकान्।
उत्पलानि च फुल्लानि पङ्कजानि च राघव ॥ २० ॥
न तानि कश्चिन्माल्यानि तत्रारोपयिता नरः।
न च वै म्लानतां यान्ति न च शीर्यन्ति राघव ॥ २१ ॥
मतङ्गशिष्यास्तत्रासन्नृषयः सुसमाहिताः।
तेषां भाराभितप्तानां वन्यमाहरतां गुरोः ॥ २२ ॥
ये प्रपेतुर्महीं तूर्णं शरीरात्स्वेदबिन्दवः।
तानि माल्यानि जातानि मुनीनां तपसा तदा।
स्वेदबिन्दुसमुत्थानि न विनश्यन्ति राघव ॥ २३ ॥
तेषामद्यापि तत्रैव दृश्यते परिचारिणी।
श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी ॥ २४ ॥
त्वां तु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृतम्।
दृष्ट्वा देवोपमं राम स्वर्गलोकं गमिष्यति ॥ २५ ॥
ततस्तद्राम पम्पायास्तीरमाश्रित्य पश्चिमम्।
आश्रमस्थानमतुलं गुह्यं काकुत्स्थ पश्यसि ॥ २६ ॥

वहां फूलोंसे युक्त तिलक और नक्तमालोंको देख तथा फूले हुए उत्पल और कमलोंको देखकर शोक छोड दोगे। (१६-२०)

हे राम! वहां कोई मनुष्य उन फूलोंको गूंदनेवाला नहीं है और वे न मुरझाते हैं, न उनके पत्ते टूटते हैं. वहां मतङ्ग ऋषिके शिष्य एकत्रित हुए रहते थे, भारसे पीडित और गुरुके लिये वनकी सामग्री ले जाते हुए उनके शरीरसे जो पसीनेकी बूंदें झट झट भूमिपर गिरीं वे उन मुनियोंकी तपस्या के प्रभावसे फूल हो गये। हे राम! अतः पसीनेकी बूंदोंसे उत्पन्न हुए वे नाशको प्राप्त नहीं होते। हे राम! वहांपर उन मुनियोंकी सेवा करनेवाली, चिरजीविनी, शबरी नामवाली बुढिया सन्यासिनी अब भी हैं। हे राम! धर्ममें स्थित वह शबरी सब प्राणियोंसे नमस्कार किये गये तथा देवोंके समान आपको देखकर स्वर्गलोकको चली जायगी। (२१-२५)

तदनन्तर हे ककुत्स्थवंशी राम! पम्पाके पश्चिम किनारे पर पहुंच कर

*

न तत्राक्रमितुं नागाः शक्नुवन्ति तमाश्रमम्।
विविधास्तत्र वै नागा वने तस्मिंश्च पर्वते २७
ऋषेस्तस्य मतङ्गस्य विधानात्तच्च काननम्।
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन २८
तस्मिन्नन्दनसंकाशे देवारण्योपमे वने।
नानाविहगसंकीर्णे रंस्यसे राम निर्वृतः २९
ऋष्यमूकस्तु पम्पायाः पुरस्तात्पुष्पितद्रुमः।
सुदुःखारोहणो नाम शिशुनागाभिरक्षितः ३०
महात्माभिर्महायज्ञैः स्तोत्रमन्त्रैर्द्विजातिभिः।
उदारो ब्रह्मणा चैव पूर्वकाले विनिर्मितः ३१
शयानः पुरुषो राम तस्य शैलस्य मूर्धनि।
यः स्वप्ने लभते वित्तं तत्प्रबुद्धोऽधिगच्छति ३२
न त्वेनं विषमाचारः पापकर्माधिरोहति ३३
यस्तु तं विषमाचारः पापकर्माधिरोहति।
तत्रैव प्रहरन्त्येनं सुप्तमादाय राक्षसाः। ३४

अत्यन्तगुप्त आश्रम स्थानको देखोगे। वहां उस पर्वतपर अनेक हाथी हैं परन्तु उस आश्रमपर आक्रमण नहीं कर सकते। हे राम! मतङ्गके निर्माण करनेसे वह वन मतङ्गवन नामसे प्रसिद्ध है, हे राम! नन्दनवनके समान, अनेक पक्षियोंसे युक्त, देववनके तुल्य उस वनमें दुःखरहित हो आप विहरेंगे। पम्पाके सामने ही फूले हुए वृक्षोंवाला, कष्टसे चढने योग्य तथा बालक हाथियोंसे रक्षित ऋष्यमूक है। (२६-३०)

महात्मा, बडे यज्ञ करनेवाले, स्तुतियुक्त, मंत्रद्रष्टा ऋषियोंसे प्रसिद्ध और पूर्वकालमें ब्रह्माने रचा था। हे राम! उस पर्वतके शिखरपर सोता हुआ पुरुष स्वप्नमें जो धन पाता है वह जागकर उसे पा लेता है और उस पर दुराचारी, पापी नहीं चढ सकता, अथवा जो दुराचारी पापी उसपर चढ भी जाता है तो उसे सोता हुआ पाकर राक्षस मार देते हैं। हे राम!

तत्रापि शिशुनागानामाक्रन्दः श्रूयते महान् ।
क्रीडतां राम पम्पायां मतङ्गारण्यवासिनाम् ३५
सिक्ता रुधिरधाराभिः संहत्य परमद्विपाः ।
प्रचरन्ति पृथक्कीर्णा मेघवर्णास्तरस्विनः ३६
ते तत्र पीत्वा पानीयं विमलं शीतमव्ययम् ।
अत्यन्तसुखसंस्पर्शं सर्वगन्धसमन्वितम् ।
निर्वृत्ताः संविगाहन्ते वनानि वनगोचराः ३७
ऋक्षांश्च द्वीपिनश्चैव नीलकोमलकप्रभान् ।
रुरूनपेतापजयान्दृष्ट्वा शोकं जयिष्यसि ३८
राम तस्य तु शैलस्य महती शोभते गुहा ।
शिलापिधाना काकुत्स्थ दुःखं चास्याः प्रवेशनम् ३९
तस्या गुहायाः प्राग्द्वारे महाञ्छीतोदको ह्रदः ।
फलमूलान्वितो रम्यो नानामृगसमावृतः ४०
तस्यां वसति सुग्रीवश्चतुर्भिः सह वानरैः ।
कदाचिच्छिखरे तस्य पर्वतस्यावतिष्ठते ४१

वहांपर भी मतङ्गारण्यके रहनेवाले, पम्पामें खेलते हुए हाथियोंके बच्चोंका शब्द सुनाई पडता है । (३१-३५)

मेघके सदृश वर्णवाले, बलशाली, बडे हाथी आपसमें प्रहार कर इसीसे रुधिरकी धाराओंसे भीगे अलग अलग घूमते हैं । वनमें रहनेवाले वे वहां विमल, शीतल, कभी नहीं नष्ट होनेवाले, अत्यन्त सुखस्पर्शवाले, सब गन्धोंसे संयुक्त, जलको पीकर सुखी हुए वनोंमें चले जाते हैं । तुम रीछ, चीते, नीले रत्न समान रुरु (मृगविशेष) इनको जयशील देखकर शोक छोड दोगे । हे ककुत्स्थवंशी राम ! शिलासे ढकी हुई उस पर्वतकी गुफा बडी सुशोभित है और उसमें घुसना बडा कठिन है । उस गुफाके पूर्वी दरवाजेपर शीतल जलवाला, फलमूलोंसे संयुक्त, रमणीय, अनेक मृगोंसे युक्त बडा ह्रद (कुण्ड) है । (३६-४०)

उसमें चार बन्दरोंसे युक्त सुग्रीव वास करता है और कभी कभी उस पर्वत

कबन्धस्त्वनुशास्यैवं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
स्रग्वी भास्करवर्णाभः खे व्यरोचत वीर्यवान् ४१
तं तु खस्थं महाभागं कबन्धं रामलक्ष्मणौ ।
प्रस्थितौ त्वं व्रजस्वेति वाक्यमूचतुरन्तिके ४२
गम्यतां कार्यसिद्ध्यर्थमिति तावब्रवीत्स च ।
सुप्रीतौ तावनुज्ञाप्य कबन्धः प्रस्थितस्तदा ४४
स तत्कबन्धः प्रतिपद्य रूपं वृतः श्रिया भास्करतुल्यदेहः ।
निदर्शयन्राममवेक्ष्य खस्थः सख्यं कुरुष्वेति तदाभ्युवाच ४५
इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ [२४१३]

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ।

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने ।
प्रातस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ १
तौ शैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रकल्पफलान्द्रुमान् ।
वीक्षन्तौ जग्मतुर्द्रष्टुं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ २

के शिखरपर बैठ जाता है । मालाधारी, सूर्यके समान वर्णवाला, बलवान् कबन्ध राम लक्ष्मण दोनोंको ऐसा उपदेश कर आकाशमें शोभायमान हुआ, चलनेवाले रामलक्ष्मण आकाशमें स्थित महाभाग्यशाली कबन्धसे "तुम जाओ" यह वाक्य बोले, फिर उनसे कबन्ध बोला कि अपने कार्यकी सिद्धिके लिये जाओ, प्रसन्न हुए उन दोनोंको आज्ञा देकर कबन्ध चल दिया । पूर्वोक्त शरीरको रामके प्रति दिखाता, शोभायुक्त, रूपको प्राप्त हुआ, सूर्यके समान देहवाला, आकाशमें स्थित वह कबन्ध "मित्रता करो" यह रामसे बोला । (४१–४५)

॥ यहाँ ७४ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

राजपुत्र राम लक्ष्मण कबन्धसे निर्दिष्ट पम्पाके मार्गको लक्ष्यमें करके पश्चिम दिशाको चले । वे राम लक्ष्मण पर्वतोंपर उपजे, शहदके समान मीठे फलवाले अनेक वृक्षोंको देखते सुग्रीवको देखनेको चले । रघुवंशी राम

कृत्वा च शैलपृष्ठे तु तौ वासं रामलक्ष्मणौ ।
पम्पायाः पश्चिमं तीरं राघवावुपतस्थतुः ३
तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् ।
अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम् ४
तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् ।
सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः ५
तौ दृष्ट्वा च तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।
रामस्य पादौ जग्राह लक्ष्मणस्य च धीमतः ।
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि ६
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं शंसितव्रताम् ७
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः ।
कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने ८
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम् ।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि ९
रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसंमता ।

लक्ष्मण पर्वतके ऊपर निवास करके पम्पाके पश्चिम तीरपर पहुंचे, तदनन्तर उन दोनोंने पुष्करिणी पम्पाके पश्चिम किनारेपर पहुंचकर शबरीके रमणीय आश्रमको देखा, बहुतसे वृक्षोंसे घिरे हुए रमणीक उस आश्रममें पहुंचकर उसको देखते देखते शबरीके पास पहुंचे। (१-५)

उस समय सिद्धा शबरीने उन्हें देखकर उठकर हाथ जोड राम और लक्ष्मणको पाद्य (पैर धोनेको जल) आचमनीय (पीनेको जल) सब विधिपूर्वक दिया, तदनन्तर राम व्रत धारण किये सन्यासिनी शबरीसे बोले- तुम्हारे विघ्न तो दूर हैं, तुम्हारा तप तो बढता है। हे तपोधने ! और तुम्हारा क्रोध तथा आहार तो वशमें है? तुमने व्रत तो प्राप्त कर लिये हैं? तुम्हारे मनको तो सुख है ? हे प्रिय बोलनेवाली ! तुम्हारी गुरुओंकी सेवा तो सफल है ? रामसे पूंछो, तपस्विनी, सिद्धा, सिद्धोंकी माननीय, रामके पास स्थित, वृद्धा शबरी बोली। (६-१०)

शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्युपस्थिता
अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्तव संदर्शनान्मया । १०
अद्य मे सफलं तप्तं गुरवश्च सुपूजिताः
अद्य मे सफलं जन्म स्वर्गश्चैव भविष्यति । ११
त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ ।
चक्षुषा तव सौम्येन पूतास्मि रघुनन्दन । १२
गमिष्याम्यक्षयाँल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिन्दम
चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः । १३
इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम्
तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः । १४
आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम्
स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः । १५
तं च दृष्ट्वा वराँल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि
मया तु विविधं वन्यं संचितं पुरुषर्षभ । १६
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम् १७

आज मैंने आपके दर्शनसे तपकी सिद्धि पाई और आज मेरा तप सफल हुआ और आज ही गुरुलोग पूजित हुए। हे राम! आपके पूजने से आज मेरा जन्म सफल हुआ और आजही मैं स्वर्गको जाऊंगी। हे वैरियोंके नाश करनेवाले राम! तुम्हारी पवित्र दृष्टिसे मैं पवित्र होगई और तुम्हारे प्रसादसे अक्षय लोकोंको जाऊंगी। आपके चित्रकूटपर आनेपर अतुलनीय कान्तिवाले विमानोंसे वे स्वर्गको चले गये, जिनकी मैंने सेवा की थी। धर्मके जाननेवाले, महाभाग्यवाले, उन महर्षियोंने मुझसे कहा था कि राम इस पवित्र आश्रममें आवेंगे। (११–१५)

लक्ष्मण समेत उन अतिथि रामका सत्कार करना, तुम उन्हें देखकर श्रेष्ठलोकोंको चली जाओगी। हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ राम! मैंने पम्पाके तीरसे उत्पन्न हुआ अनेक प्रकारका वन्यभोजन आपके लिये इकट्ठा किया है। शबरीद्वारा इस प्रकार प्रार्थित धर्मात्मा राम विज्ञानविषयमें अबहिष्कृत

एवमुक्तः स धर्मात्मा शबर्या शबरीमिदम् ।
राघवः प्राह विज्ञाने तां नित्यमबहिष्कृताम् १८
दनोः सकाशात्तत्त्वेन प्रभावं ते महात्मनः ।
श्रुतं प्रत्यक्षमिच्छामि संद्रष्टुं यदि मन्यसे १९
एतत्तु वचनं श्रुत्वा रामवक्त्राद्विनिःसृतम् ।
शबरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत् २०
पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् ।
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन २१
इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते ।
जुहवांचक्रिरे तीर्थं मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् २२
इयं प्रत्यक्स्थली वेदिर्यत्र ते मे सुसत्कृताः ।
पुष्पोपहारं कुर्वन्ति श्रमादुद्वेपिभिः करैः २३
तेषां तपःप्रभावेण पश्याद्यापि रघूत्तम ।
द्योतयन्ती दिशः सर्वाः श्रिया वेद्यातुलप्रभा २४

अर्थात् विज्ञानयुक्त शबरीसे बोले, महात्मा दनुवंशी (कबन्ध) के समीपसे तेरा प्रभाव सुना था। यदि (उचित) समझे तो प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं। रामके मुखसे निकले यह वचन सुन शबरी उस दोनोंको उन बडे वनको दिखाने लगी। (१६-२०)

हे राम! बडे मेघके समान, मृग और पाक्षियोंसे संयुक्त, प्रसिद्ध मतंग-वनको देखो, हे महाद्युते! यहांपर विचार लिया है आत्मा जिन्होंने ऐसे ये मेरे गुरु मन्त्रोंसे पूजित तीर्थको मन्त्रके समान आह्वान करते थे। इस आश्रममें स्थलीभूत वेदीको देखिये, यहां पर सत्कार किये हुए मेरे गुरु परिश्रमके कारण कांपते हुए हाथोंसे पुष्पोपहार करते थे। हे राम! देखिये, अब भी अत्यन्त कान्तिवाली यह वेदी उन ऋषियोंके तपके प्रभावसे सब दिशाओंको प्रकाशित करती है। उपवासके परिश्रमसे क्षीण हुए अतएव सातों समुद्रोंके पास जानेमें असमर्थ मेरे गुरुओंके चिन्तनमात्र करनेसे सामने आये हुए इन सातों समुद्रोंको देखो। (२१-२५)

अशक्नुवद्भिस्तैर्गन्तुमुपवासश्रमालसैः।
चिन्तितेभ्यागतान्पश्य स हितान्सप्त सागरान् २५
कृताभिषेकैस्तैर्न्यस्ता वल्कलाः पादपेष्विह।
अद्यापि न विशुष्यन्ति प्रदेशे रघुनन्दन २६
देवकार्याणि कुर्वद्भिर्यानीमानि कृतानि वै।
पुष्पैः कुवलयैः सार्धं म्लानत्वं नोपयान्ति वै २७
कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं त्वया।
तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्तुमेतत्कलेवरम् २८
तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम्।
मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी २९
धर्मिष्ठं तु वचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः।
प्रहर्षमतुलं लेभे आश्चर्यमिति तत्त्वतः ३०
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं संशितव्रताम्।
अर्चितोऽहं त्वया भक्त्या गच्छ कामं यथासुखम् ३१

हे राम! इस देशमें किया है स्नान जिन्होंने ऐसे मेरे गुरुओंने जो वल्कल वृक्षोंपर धर दिये थे, वे आज भी नहीं सूखे हैं, देवपूजा करते हुए उन ऋषियोंने उत्पलोंके साथ अन्य पुष्पोंसे जो माला बनाई थीं, वे मुरझाई नहीं हैं, सुनने योग्य जो वन आपने सुना था वह समस्त देख लिया, अब तुम्हारी आज्ञा लेकर मैं इस शरीरको छोडना चाहती हूं, मैं अनुभव किया है आत्मा जिन्होंने, ऐसे मुनियोंके पास जाना चाहती हूं, जिनका कि यह आश्रम है और जिनकी मैं सेविका हूं, लक्ष्मण समेत राम उसके धर्मयुक्त वचनको सुनकर आश्चर्य मानकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए। (२६-३०)

तदनन्तर राम आचार्यशुश्रूषामें निष्ठावाली वृद्धासे बोले, तुमने मेरा भक्तिसे पूजन किया है, अब सुखपूर्वक जाओ, जटायुक्त, बूढी, चीर व मृगचर्मधारिणी शबरी उस जीर्ण देहको त्यागनेकी इच्छा करती रामकी आज्ञासे अपने शरीरको अग्निमें हवन कर जलती हुई अग्निके समान हो

इत्युक्त्वा जटिला वृद्धा चीरकृष्णाजिनाम्बरा ।
तस्मिन्मुहूर्ते शबरी देहं जीर्णं जिहासती ३२
अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने ।
ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम सा ३३
दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यमाल्यानुलेपना ।
दिव्याम्बरधरा तत्र बभूव प्रियदर्शना ।
विराजयन्ती तं देशं विद्युत्सौदामनी यथा ३४
यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः ।
तत्पुण्यं शबरी स्थानं जगामात्मसमाधिना ३५

इति श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः। ७५[२४४७]

षट्सप्ततितमः सर्गः ।

दिवं तु तस्यां यातायां शबर्यां स्वेन तेजसा ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चिन्तयामास राघवः १
स चिन्तयित्वा धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम् ।
हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् २
दृष्टोऽयमाश्रमः सौम्य बह्वाश्चर्यः कृतात्मनाम् ।
विश्वस्तमृगशार्दूलो नानाविहगसेवितः ३

र्गको चली गईं । उस समय दिव्य आभूषणोंसे युक्त, दिव्य फूल और चन्दनयुक्त और दिव्य वस्त्र धारे प्रियदर्शनवाली हो गईं और बिजलीके समान उस देशको प्रकाशित करने लगी, जहांपर पवित्र आत्मावाले महर्षि विहार करते हैं उसी पवित्र स्थानमें शबरी आत्मसमाधिसे पहुंच गईं। (३१--३५)

॥ यहाँ ७५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

अपने तेजसे उस शबरीके स्वर्ग चले जानेपर भाई लक्ष्मणके साथ राम चिन्ता करने लगे, धर्मात्मा राम महात्माओंके प्रभावको चिन्तन कर हितकारी, एकान्तचित्तवाले लक्ष्मणसे बोले। हे सौम्य ! विश्वासयुक्त हैं मृग और सिंह जिसमें और अनेक पक्षियोंसे शोभित तथा अनेक आश्चर्ययुक्त

सप्तानां च समुद्राणामेषु तीर्थेषु लक्ष्मण ।
उपस्पृष्टं च विधिवत्पितरश्चापि तर्पिताः ४
प्रनष्टमशुभं तत्तत् कल्याणं समुपस्थितम् ।
तेन तत्त्वेन हृष्टं मे मनो लक्ष्मण संप्रति ५
हृदये हि नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति ६
तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम् ।
ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते ७
यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवोऽंशुमतः सुतः ।
नित्यं वालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिः सह वानरैः ८
अभि त्वरे च तं द्रष्टुं सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
तदधीनं हि मे सौम्य सीतायाः परिमार्गणम् ९
इति ब्रुवाणं तं धीरं रामं सौमित्रिरब्रवीत् ।
गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि त्वरते मनः १०
आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशांपतिः ।

मुनियोंका यह आश्रय देखा। हे लक्ष्मण! इन सातों समुद्रोंके जलमें स्ना... कर लिया और विधिपूर्वक पितरोंको भी तृप्त कर लिया। हे लक्ष्मण! ... समस्त अशुभ नष्ट हो गया और शुभ उत्पन्न हुआ इसी तत्त्वसे इस स... मेरा मन प्रसन्न हो गया। (१–५)

हे नरव्याघ्र! हृदयमें कुछ शुभ उत्पन्न होगा, सो आओ, प्रिय है देख... जिसका ऐसी पम्पाको चलें, जिसके समीपमें ही ऋष्यमूक पर्वत प्रका... मान है। जहांपर सूर्यका पुत्र, वालिके भयसे भीत सुग्रीव चार वानरों... साथ नित्य वास करता है। हे सौम्य! मैं वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवको देखने... शीघ्रता करता हूं, क्योंकि मेरी सीताका तालाश करना उसीके आधीन है। ... ऐसा कहते हुए धीर रामसे लक्ष्मण बोले कि जल्दी ही वहांपर चलो, मे... भी मन जल्दी चाहता है। (६–१०)

आजगाम ततः पंपां लक्ष्मणेन महाविभुः ११
स ददर्श ततः पुण्यामुदारजनसेविताम् ।
नानाद्रुमलताकीर्णां पम्पां पानीयवाहिनीम् १२
पद्मैः सौगन्धिकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः ।
नीलां कुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णां कुथामिव १३
स तामासाद्य वै रामो दूरात्पानीयवाहिनीम् ।
मतङ्गसरसं नाम ह्रदं समवगाहत १४
अरविन्दोत्पलवतीं पद्मसौगन्धिकायुताम् ।
पुष्पिताम्रवणोपेतां बर्हिणाद्घुष्टनादिताम् १५
तिलकैर्बीजपूरैश्च धवैः शुक्लद्रुमैस्तथा ।
पुष्पितैः करवीरैश्च पुन्नागैश्च सुपुष्पितैः १६
मालतीकुन्दगुल्मैश्च भाण्डीरैर्निचुलैस्तथा ।
अशोकैः सप्तपर्णैश्च केतकैरतिमुक्तकैः १७
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः प्रमदामिव भूषिताम् ।
समीक्षमाणौ पुष्पाढ्यं सर्वतो विपुलद्रुमम् १८
कोयष्टिकैश्चार्जुनकैः शतपत्रैश्च कीरकैः ।

तदनन्तर मनुष्यपति प्रभु राम लक्ष्मणसहित उस आश्रमसे निकल पम्पाको आये । इसके अनन्तर रामने पवित्र, उदार मनुष्योंसे सेवित, अनेक वृक्ष और लताओंसे युक्त, पानी बहानेवाली, सुगन्धवाले कमलोंसे ताम्रवर्णवाली, कुमुदमण्डलसे श्वेतवर्ण, कुवलयके समूहोंसे नील, अनेक वर्णवाले कम्बलके समान उस पम्पाको देखा । रामने दूरसे जल बहानेवाली उस पम्पाको प्राप्त होकर मतङ्गसर नामक कुण्डमें स्नान किया । (११-१४) व्याकुलतारहित वे दोनों राम लक्ष्मण अरविन्द और उत्पलवाली, पद्म (कमल) और सौगन्धिकयुक्त, फूले हुए आम्रवनोंसे संयुक्त, मयूरोंके शब्दोंसे शब्दायमान, तिलक, अनार, खैर, अर्जुन, फूले हुए करवीर और पुन्नाग, मालती, कुन्द, बड, निचुल, अशोक, सप्तपर्ण, केतक, अतिमुक्तक तथा

एतैश्चान्यैश्च विहगैर्नादितं तु वनं महत्
ततो जग्मतुरव्यग्रा राघवौ सुसमाहितौ। १९
तद्वनं चैव सरसः पश्यन्तौ शकुनैर्युतम्
स ददर्श ततः पम्पां शीतवारिनिधिं शुभाम्। २०
प्रहृष्टनानाशकुनां पादपैरुपशोभिताम्।
तिलकाशोकपुन्नागबकुलोद्दालकाशिनीम् २१
स रामो विविधान् वृक्षान् सरांसि विविधानि च।
पश्यन् कामाभिसन्तप्तो जगाम परमं ह्रदम् २२
पुष्पितोपवनोपेतां सालचम्पकशोभिताम्।
षट्पदौघसमाविष्टां श्रीमतीमतुलप्रभाम् २३
स्फटिकोपमतोयाढ्यां श्लक्ष्णवालुकसंवृताम्।
स तां दृष्ट्वा पुनः पम्पां पद्मसौगन्धिकैर्युताम्।
इत्युवाच तदा वाक्यं लक्ष्मणं सत्यविक्रमः २४
अस्यास्तीरे तु पूर्वोक्तः पर्वतो धातुमण्डितः।
ऋष्यमूक इति ख्यातः पुण्यः पुष्पितपादपः २५

अन्य अनेक वृक्षोंसे स्वर्गके समान सुशोभित पम्पाको देखते, कोयलि... अर्जुन, शतपत्र, सुआ इन तथा अन्य पक्षियोंसे शब्दायमान बड़े वन... और पक्षियोंसे युक्त पम्पाके उस वनको देखते हुए चले। (१५-२०)

तदनन्तर रामने शीतजलवाली, शुभ, आनन्दयुक्तपक्षियोंवाली, वृक्षों... सुशोभित, तिलक, अशोक, पुन्नाग, बकुल, उद्दालक वृक्षोंसे खिला हु... पम्पाको देखा। कामसे पीड़ित राम अनेक वृक्ष, अनेक तालाबोंको दे... बड़े ह्रदके पास पहुंचे। सत्यपराक्रमवाले राम पुष्पित उपवनोंसे युक्त, सा... और चम्पकसे शोभित, भौंरोंसे युक्त शोभायमान, अत्यन्त प्रभावा... स्फटिकके समान उज्ज्वल जलवाली, चिकनी वालूयुक्त, पद्म और सौगन्धि... कोंसे युक्त, पम्पाको पुनः देखकर लक्ष्मणसे बोले। इसके तीरपर पूर्वो... धातुओंसे युक्त, पवित्र, फूले हुए वृक्षोंवाला ऋष्यमूक पर्वत है। (२१-...

हरेर्ऋक्षरजोनाम्नः पुत्रस्तस्य महात्मनः ।
अध्यास्ते तं महावीर्यः सुग्रीव इति विश्रुतः　२६
सुग्रीवमभिगच्छ त्वं वानरेन्द्रं नरर्षभ ।
इत्युवाच पुनर्वाक्यं लक्ष्मणं सत्यविक्रमम्　२७
राज्यभ्रंशेन दीनेन तस्यामासक्तचेतसा ।
कथं मया विना शक्यं सीतां लक्ष्मण जीवितुम्　२८
इत्येवमुक्त्वा मदनाभिपीडितः स लक्ष्मणं वाक्यमनन्यचेतसम् ।
विवेश पम्पां नलिनीं मनोहरां रघूत्तमः शोकविषादयन्त्रितः २९
ततो महद्वर्त्म सुदूरसंक्रमः क्रमेण गत्वा प्रतिकूलधन्वनम् ।
ददर्श पम्पां शुभदर्शकाननामनेकनानाविधपक्षिजालिकाम् ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मी० आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः॥७६[२४७७]

समाप्तमिदमरण्यकाण्डम् ॥

महात्मा ऋक्षरजानामक वानरका पुत्र, महाबली, सुग्रीव नामसे प्रसिद्ध उसपर बसता है। हे नरश्रेष्ठ! तुम वानरोंके स्वामी सुग्रीवके पास जाओ, इस प्रकार सत्यपराक्रमवाले लक्ष्मणसे कहा। हे लक्ष्मण! राज्यसे भ्रष्ट, दीन, सीतामें आसक्त चित्तवाला मैं उसके बिना कैसे जी सकता हूं। कामसे पीडित, शोक और दुःखसे युक्त रघुवंशी राम नहीं है अन्यत्र चित्त जिसका ऐसे लक्ष्मणसे ऐसा कहकर मनोहर नलिनीमें स्नानके लिये प्रविष्ट हो गये। तदनन्तर दूरसे आये रामने क्रमसे पथिकोंके प्रतिकूल बडे रास्तेको जाकर सुन्दर दीखते हैं वन जिसके तथा अनेक प्रकारके पक्षियोंसे युक्त पम्पाको देखा। (२६-३०)

इति अरण्यकाण्डं समाप्तम् ।





श्री वाल्मीकि रामायणांतर्गत

अरण्यकाण्ड की

समालोचना

दण्डकारण्यके आश्रम-समुदाय

भगवान् रामचन्द्रने दण्डकारण्यमें आतेही आश्रम समुदाय देखा। वह आश्रम उन्हे इस प्रकारसे दिखाई दिया—

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान्।
रामो ददर्श दुर्धर्षः तापसाश्रममण्डलम् ॥ १ ॥
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मा लक्ष्म्या समावृतम्।
शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा ॥ २ ॥
मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम् ॥ ३ ॥
पूजितं चोपनृत्तं च नित्यं अप्सरसां गणैः।
विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैराजिनैः कुशैः ॥ ४ ॥
समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् ॥ ५ ॥

(अरण्य० स. १)

जितेन्द्रिय रामचन्द्रने दण्डकारण्यमें जब प्रवेश किया तब उन्होने वहाँ आश्रमोंके अनेक समुदाय देखे। एक एक आश्रम ३०।४० कुटीरोंका माना जाय तो भी ऐसे अनेक आश्रम-मण्डल वहाँपर विद्यमान थे, यह सिद्ध होता है। अर्थात् वहाँ सैकडों ऋषिमुनि रहा करते थे। गावों जैसी घनी बस्ती

यहाँपर न थी। अपनी अपनी कुटीरके चारों ओर पुष्पवाटिका एवं कन्द आदि बोनेके लिये पर्याप्त उद्यान वाटिकाकी प्रशस्त भूमि पर्णकुटीरके बा प्रत्येक ऋषिके पास होती थी। ऐसी अनेक पर्णकुटीरें पास पास होती थीं यह एक आश्रम मण्डलकी स्थिति हुआ करती थी।

इस प्रकारके अनेक आश्रम मण्डल वहाँ थे तथा इतनी बडी बस्ती ह दण्डकारण्यमें थी। सारे तपस्वी वेदाभ्यास किया करते थे। ये तपस्वी वे मन्त्रोंके गूढ अर्थोंका मनन किया करते थे तथा मानव धर्मके नियमों स्वतन्त्र बुद्धिसे, स्वतन्त्र वातावरणमें रहकर विचार किया करते थे। (ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतं) ब्रह्मतेजसे तेजस्वी बने हुए ये आश्रम थे। अर्थात् आश्रमोंमें हिंसा न थी। कोई शिकार नहीं करता था। इस कारण प पक्षी–मृग, मयूर आदिको इन ऋषियोंसे किसी प्रकार भी भय न था और वे स्वच्छन्द होकर आश्रममें घूमते थे।

(सर्वभूतानां शरण्यं) मनुष्य, पशु और पक्षी यहाँ आनन्दसे विश्राम कर सकें, ऐसा शान्त एवं सुरम्य वातावरण यहाँ पर था। सर्वत्र शान्ति, स स्वच्छता, व्यवस्था व रमणीयता होनेके कारण भी आश्रमभूमि आकर्ष बनी हुई थी।

अप्सराओंके झुण्ड वहाँ आते थे (अप्सरसां गणैः उपनृत्तं) और नृ करते थे। ये झुण्ड सम्भवतः आश्रमका मान रखनेके लिये ही आते होंगे। अन्यथा उनका वहाँ आनेका कोई कारण नहीं प्रतीत होता। अप्सरा और आश्रम इनका सम्बन्ध स्पष्ट विदित नहीं होता। ये अप्सरायें यहाँ भक्ति भावसे ही आती होंगी।

जहाँ तहाँ छोटी बडी यज्ञ-शालायें थी,। वहाँ स्रुवा, स्रुक, यज्ञ-पात्र, दर्भ, समिधा तथा जलपूर्ण कलश व अन्य यज्ञ साधन दिखाई देते थे। वहाँ प्रतिदिन हवन होनेके कारण यज्ञकी सुगन्ध उस वायु मण्डलमें व्याप्त थी। कन्द, मूल और फल वहाँ यथेष्ठ थे। वेद-घोष, यज्ञ-हवन आदिसे ये आश्रम परिपूर्ण थे। सरोवरोंमें खिले कमल एवं पुष्पोंसे ओतप्रोत वृक्ष होनेसे ये आश्रम अतिरमणीय थे—

पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ।
तद्ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ।
ब्रह्मविद्भिर्महाभागैः ब्राह्मणैरुपशोभितम् ॥ ९ ॥

(अरण्य० १)

' पुण्य आचरण करनेवाले, जिन्होंने आहार परिमित कर लिया है, ऐसे ऋषियोंसे यह आश्रम सुशोभित था । ब्रह्म भवनके समान यह आश्रम शोभित था तथा चारों ओर वेद-घोषसे वह निनादित था । ब्रह्मज्ञानी महाभाग्यवान् ब्राह्मणोंसे वह सुशोभित था । ' इस प्रकार वहाँ अहोरात्र एवं दिव्य तत्वज्ञानकी चर्चा होती रहती थी, यह तत्वज्ञान विषयक ...न हुआ । अन्य सुख सुविधायें तो वहाँ पर थीं ही । बगीचेमें बसनेवा... के समान इनकी बस्ती थी । कन्दमूल, फल, शाक भाजी तथा अकृष्टपच्य ... इन्हे विपुल मात्रामें प्राप्त रहता था । बिना बोये बहुतसा चावल पैदा होता था । यह पचनेमें हलका, किसी प्रकार भी हानि न पहुँचानेवाला ...था पुष्टिकारक होता था । कोंकण तथा बंगालमें अपने आप पैदा होनेवाला चावल बहुतायतसे होता है । बर्मामें तो यह और भी अधिक होता है । ब्रह्मपुत्रा नदीके किनारे पर यह चावल ऊंचे दर्जेका होता है । समस्त अकृष्ट-पच्य चावलोंमें बर्मामें होनेवाला चावल सर्वोत्कृष्ट माना जाता है । यह अत्यन्त रुचिकर, स्वादिष्ट, सुपच्य और पौष्टिक होता है । ब्रह्मलोक—ब्रह्माका प्रदेश ...ही है । यहीं पर पूर्वके भागमें ब्रह्माका आश्रम था । संस्कृतिका प्रारम्भ ...हींसे हुआ । सारे भारतमें जो ब्राह्मण फैले वे ब्रह्म पुत्रा—इरावतीके किनारे किनारे गये । ब्रह्मावर्तमें, आर्यावर्तमें एवं अनेक स्थानोंकी नदियोंके किनारे ...बसे और फिर रावण साम्राज्यका विनाश करनेके लिये, दाक्षिण भारतकी अन्य जातियोंका अभ्युदय करनेके लिये दाक्षिणमें ये ही ब्राह्मण आश्रम स्थापित ...के विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा देनेके बहानेसे बस गये थे । रावण-साम्राज्यके विरुद्ध इन्होंने ही क्रान्ति की तथा रामके द्वारा उस साम्राज्यका विनाश कराया ।



एक एक ऋषिने रामचन्द्रको किस किस प्रकारसे सहायता दी, इस बातको पाठक ध्यानपूर्वक आगे देखें। एक आश्रममें स्वयं इन्द्र आता है, वहाँके मुख्य आचार्यसे मिलता है। अपने धनुषबाण रामचन्द्रको देनेके लिये ही मानो उनके पास रखता है। आश्रमके ऋषि उन शस्त्रास्त्रोंको सुरक्षित रखते हैं, रामचन्द्रको यथासमय वे दिये जाते हैं। इन्द्र रामचन्द्रको देखकर भी उनसे बिना मिले लौट जाता है, इन सम्पूर्ण घटनाओंमें राजनीतिकी गन्ध अपरिहार्य है। (अरण्यकाण्ड ६ वां सर्ग देखिये)

इन क्रान्तिमय व्यवहारोंसे यह सिद्ध होता है कि ये ऋषि केवल ध्यान धारणा ही नहीं करते थे। उनका जीवन अध्यात्माधिष्ठित राजनीतिसे ओतप्रोत था। रामचन्द्रको महाराजा दशरथके राजभवनसे इन्होंने ही बाहर निकाला, विश्वामित्रने उसे शस्त्रास्त्र विद्या सिखलाई, जंगल पहाड़ोंमें घुमाफिराकर निर्भयताकी दीक्षा देनेवाले ये ऋषि ही थे। राजमहलमें रहकर उनके शरीरमें जो कोमलता उत्पन्न हो रही थी, उसे दूर कर सहन शक्तिका निर्माण करनेवाले ये वनवासी ही थे। ऋषिमुनियोंकी हलचलका पता राक्षसोंको भी लग चुका था।

अतः राक्षस ऋषिआश्रम और ऋषिगणोंका नाश किया करते थे। राक्षसोंका साम्राज्य नष्ट कर दिया जाय तथा उसके स्थानपर आर्योंका साम्राज्य स्थापित किया जाय, इस महत्वाकांक्षाको लेकर ऋषियोंके प्रयत्न हुआ करते थे। यह मुख्य कारण था जिससे कि ऋषि और राक्षसोंमें शत्रुता रहती थी। साम्राज्यका विनाश करनेके लिये क्रान्तिकारी आन्दोलनका प्रारम्भ करनेवाले ये ऋषि ही थे। इस प्रकारका आन्दोलन ये किया करते थे, उधर वे राक्षस भी इनका विनाश करते थे एवं यज्ञादिको ध्वंस करते थे। यहाँ हमें पारस्परिक विद्वेषके मूल कारणको ध्यानमें रखना चाहिये।

ऋषियोंके आश्रम रावण साम्राज्यका नाश करनेके लिये क्रान्तिकारी अड्डे बने हुए थे। इस प्रकारके अनेक आश्रम इस दण्डकारण्यमें थे।

अरण्यकाण्डमें अनेक स्थानोंपर आश्रमोंका वर्णन है। सर्ग ७ और ८, सर्ग ११-१३, १५, ३५ इस प्रकार इस अरण्यकाण्डमें अनेक स्थानों

...म वर्णन है। वे सारे वर्णन एक ही प्रकारके हैं। जहाँ सरोवर होते थे, ...का सुरक्षित किनारा होता था, रमणीय कुंज थे, जलवायु स्वास्थ्यप्रद ... वहींपर ऋषिगण अपने आश्रम बनाकर रहते थे।

दण्डकारण्यकी आदि बस्ती बहुत सुशिक्षित न थी। ये ऋषि बडे विद्वान ... दूरदर्शी थे। उच्च किन्तु सादा जीवन तथा श्रेष्ठ विचारसरणी इन ऋषि-...की थी। फल एवं फूलोंके वृक्षोंको लगाना, तथा रमणीय उद्यान बनाना, ...रोंको विद्या पढाकर तैयार करना, यही इनका उद्योग था।

आजकल हिमालयमें अमेरिकन मिशनरी आकर अनेक स्थानोंपर बस गये ... अंग्रेजोंनें भी वहाँ अनेक खेतियाँ तैयार की हैं। हिमालयकी हिन्दू ...ती बहुत गन्दी और दरिद्र है। रोजकी चार या आठ आने मजदूरीके ...ये ७-८ मीलतक ये जाते आते हैं। इनके प्रदेशमें ये यूरोपियन लोग ...लोंके बडे बडे बाग लगा रहे हैं। ये अमेरिकन और यूरोपियन लोग ...टसे और रेलसे इन फलोंको भेजकर लाखों रुपये कमा रहे हैं। हिमाल-...की जमीनके सारे मालिक जहाँ दरिद्रतामें सड रहे हैं वहाँ उन्हकी जमीनमें ...देशी लोग श्रेष्ठ नन्दनवन बनाते जारहे हैं तथा उसके बलपर खूब ...पन्न भी होते जारहे हैं। यह शिक्षा और ज्ञानकाही परिणाम है।

ठीक यही स्थिति दण्डकारण्यके मूल निवासी एवं इन आर्य ऋषियोंके ...चार व्यवहारमें परिलक्षित होती है। जिस भूमिमें मूलके निवासी भूखों ...र रहे हैं, वहींपर विद्याके बलपर ऋषि लोग उत्तम फलफूल निर्माण ...के उत्तम प्रकारसे अपनी आजीविका एवं गुरुकुलादि चलाते दिखाई दे ...ते हैं। दूरसे ही यह पता लग जाता था कि यहाँ कोई गुरुकुल अथवा ...षि वाटिका है। उजाड प्रदेशमें रमणीय एवं उपजाऊ वाटिकायें निर्माण ...रना तथा उनपर सैकडों तरुणोंकी उपजीविकाका सुयोग्य प्रबन्ध करना, ये ...री बातें ज्ञानसेही सम्भव है।

यही प्रकार दण्डकारण्यके मूलनिवासियोंमें एवं इन आर्य ऋषियोंके ...चार-व्यवहारमें दिखाई देता है। जिस भूमिमें मूल-निवासी भूखों

मरते हैं, वहाँ विद्याके बलपर ऋषि लोग उत्तम फल और फूल निर्माण करके उत्तम प्रकारसे उपजीविका एवं बडे बडे गुरुकुल चलाते हुए दिखा दे रहे हैं। दूरसे ही उद्यान वाटिका आदि देखकर यह मालूम हो जाता था कि यहाँ ऋषि आश्रम हैं। उजाड भूमिमें रमणीय एवं उपजाऊ बाग निर्माण करना और उन्हें इस योग्य बनाना कि जिससे सैकडों युवकोंकी आजीविका चल सके, ज्ञानद्वारा ही सम्भव है।

मूलके जंगली लोगों और ऋषियोंका यह रहनसहन सम्बन्धि भेद देखने योग्य है। रहन सहनका सुधार ऐसा होना चाहिये, जंगलोंके बाग बनने चाहिये, सैकडों विद्यार्थियोंका निर्वाह उसपर होना चाहिये; तभी ये आश्रम स्वावलम्बी बन सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये स्वावलम्बी थे। यदि ये स्वावलम्बी न होते तो क्रान्ति भी नहीं कर सकते थे।

ऋषि आश्रमोंमें क्रान्तिकी योजनायें तैयार होती थीं। ऋषि, देव तथा आर्य राजाओंने मिलकर रावणके साम्राज्यका विनाश करके आर्योंके राज्य स्थापन करनेका निर्णय दशरथके राजसूय यज्ञमें किया था। इसमें कई राजा गुप्तरूपसे क्रान्तिमें सहयोगी थे। देवताओंने इस यज्ञकी परिषद्में भाग लिया था और वे बीचबीचमें अपनी सहायता भी पहुँचाते रहते थे, किन्तु खुल्लम खुल्ला हिस्सा लेनेमें वे भी घबराते थे। रावणका इतना अधिक प्रभाव था! किन्तु ऋषि लोग इस आन्दोलनमें कभी खुले तौरसे और कभी गुप्तरूपसे इसमें भाग लिया करते थे। अर्थात् यह क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रधानतः ऋषियों द्वारा ही संचालित होता था, यह बात स्पष्ट रूपसे सिद्ध होती है। एतद्विषयक निर्देश समय समयपर इस लेखमें आगे दिखाये जायँगे।

रामचन्द्रजी की पूजा

जब रामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें घूमने लगे, उस समय वहाँके ऋषियोंने अनेक बार उनकी पूजा की, यह वर्णन देखने योग्य है; वह इस प्रकार है-

तद् दृष्ट्वा राघवः श्रीमान् तापसाश्रममण्डलम् ।
अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः ॥ १० ॥
(अरण्य० स. १)

श्रीरामचन्द्रजीने वह आश्रम समुदाय देखा और अपने बड़े भारी धनुष्यकी डोरी उतार कर वे आश्रमके पास गये । यहाँ यह स्पष्ट दिखाई देता है कि आश्रमोंका सन्मान किस प्रकारसे किया जाता था । धनुषको सज्जित करके जाना शिकारीके हिंसक कर्मके समान है तथा डोरी उतार कर जाना अहिंसा वृत्तिका निदर्शक है। इस प्रकारके आचरणसे आश्रम सम्बन्धी आदर भाव भी व्यक्त होता है । राम इन छोटी छोटी बातोंको भी कितने ध्यानसे देखते थे, यह बात इससे प्रकट हो जाती है। इन राजपुत्रोंको देखकर ऋषिलोग उनका आदर करनेके लिये उनकी आगवानी किया करते थे। देखिये—

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ।
अभिजग्मुस्तदा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् ॥११॥
मंगलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन् दृढव्रताः ॥ १३ ॥
अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ।
ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः ॥ १६ ॥
आजह्रुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः ।
मंगलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः ॥ १७॥
मूलं पुष्पं फलं सर्वं आश्रमं च महात्मनः ।
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते तु प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥ १८ ॥
(अरण्य० स. १)

वे दिव्य ज्ञानवाले महर्षि आनन्दपूर्वक राम, सीता और लक्ष्मणको देखकर आगवानीके लिये आगे आये, ऋषियोंने उन्हे आशीर्वाद दिया और उन्हे ले जाकर पर्णशालामें बिठाया । अग्निके समान तेजस्वी ऋषियोंने पैर धोनेके लिये पानी प्रस्तुत किया और फलफूल उपस्थित किये । उन्होंने कहा कि हे राम, यह आश्रम भी आपका ही है ।

यह सत्कार करते समय सारे ऋषि (प्राञ्जलयः) हाथ जोडकर रामके सामने बैठे थे। रामकी आयु कम थी और ऋषि आयुसे बडे थे। तब भी ऋषि लोग रामके सामने हाथ जोडते हैं, इसका कारण यही था कि राम राजपुत्र था। राजाका और राजपुत्रोंका सन्मान इसी विशेष रीतिसे सदा किया जाता है और वह उचित भी है।

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैरन्यैश्च राघवम्।
वन्यैश्च विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन्॥ २३॥
(अरण्य० स. १)

'ऐसा कहकर उन ऋषियोंने फल, फूल आदिसे तथा अन्य भक्ष्य वन्य पदार्थोंसे उस रामकी पूजा की' यही पूजा सामग्री सर्वत्र व्यवहृत थी, ऐसा प्रतीत होता है। आज भी यही पूजा साहित्य प्रयोगमें आता है।

अगस्त्य मुनि

रामको दण्डकारण्यमें आये दस वर्ष बीत गये। वहाँ उन्होने अनेक राक्षसोंका संहार किया। एक दिन सुतीक्ष्ण मुनीके आश्रममें आनन्दपूर्वक जब वार्तालाप चल रहा था, तब रामने प्रश्न पूछा कि 'मुझे अगस्त्य मुनिके दर्शन करने हैं। कृपया बताइये कि वे कहाँ रहते हैं'।

सुतीक्ष्ण मुनीने उत्तर दिया कि– 'इस आश्रमसे चार योजन दक्षिणकी ओर जानेपर तुम्हे जो आश्रम दिखाई दे वही अगस्त्य ऋषिका आश्रम है। वहाँपर वृक्ष और वनस्पतियोंकी रमणीयता अत्यन्त दर्शनीय है। हंस, कारंडव, चक्रवाक पक्षी वहाँपर आनन्दके साथ उडते हैं। अनेक प्रकारके कमलयुक्त सरोवर वहाँपर हैं। (अरण्य. ११।३६-४५)

अगस्त्य मुनीका पराक्रम

अगस्त्य मुनीका पराक्रम कोई साधारणसी बात न थी। दक्षिणदिशाका मार्ग सबको जाने आनेके लिये निरापद एवं व्यवस्थित रूपसे इन्होंने ही निर्माण किया था उसका इतिहास इस प्रकार है—

सह्याद्रिके दक्षिणकी ओर जानेका साहस किसीको नहीं होता था। वह भूमि आर्योंके निवासके लिये योग्य है, यह देखकर सर्व प्रथम अगस्त्य ऋषि उत्तरसे दक्षिणकी ओर उतरे। उन्हे इसी स्थानपर इल्वल और वातापि का आश्रय दिखाई दिया। ये नरमांस भक्षक राक्षस आश्रम बनाकर ब्राह्मणके रूपमें यहाँ रहते थे। जो ब्राह्मण इस मार्गसे आते उन्हे श्रद्धासे ये बुलाते थे। अपने भाईका मांस पकाकर उसे परोसते थे और जब उनका भोजन होचुकता तो 'हे वातापे! बाहर आ' इस प्रकारसे पुकारते थे। तब वह वातापि ब्राह्मणके पेटमें राक्षस बनकर उसका पेट फोडकर बाहर आजाता था और वे दोनों राक्षस इस प्रकारसे उस ब्राह्मणको खा जाते थे। इनका इस प्रकारका क्रम अनेक वर्षोंतक जारी रहा। इस रीतिसे हजारावधि ब्राह्मण उन्होंने मार दिये थे। (अरण्य. ११।५६-६१)

अगस्त्य मुनि जब इस ओर आये, तब इनपर भी यही आपत्ति आई। अगस्त्य मुनीको अपने भाईका'मांस कपटसे परोस देनेपर बादमें 'निष्क्रम' (पेट फोडकर बाहर आ) इस प्रकार इल्वल चिल्लाया। तब अगस्त्य मुनि अपना बांया हाथ पेटपर घुमाते हुए हंसकर बोले—

अब्रवीत् प्रहसन् धीमान् अगस्त्यो मुनिसत्तमः।
कुतो निष्क्रमितुं शक्तिर्मया जीर्णस्य रक्षसः॥
भ्रातुस्तु मेषरूपस्य गतस्य यमसादनम्॥ ६५॥
(अरण्य० ११)

"अरे! तेरा भाई मेरे पेटमें पचकर यमके घर पहुँच गया है। अब उसमें लौटकर आनेकी शक्ति नहीं है; इसलिये अब वह लौटकर नहीं आयेगा। इसके बाद इल्वल अगस्त्यको मारनेके लिये उनकी ओर लपका। किन्तु अगस्त्यने उसे भी मार दिया—

निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया।
दक्षिणा दिक् कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा॥८२॥
यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा।
तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः॥८४॥
(अरण्य० ११)

'अगस्त्य मुनिने सब जनताका हित हो इसलिये मृत्युके समान राक्षसोंका विनाश किया। तबसे यह दक्षिण दिशा निरापद होगई है। प्रायः इसी समयसे राक्षस लोग शान्त एवं निर्वैर हुए हुए दिखाई देते हैं।

राक्षसोंको निर्वैर, शान्त एवं निरुपद्रवी करनेका यही एकमात्र साधन है। जो लोग शान्तिपूर्वक उनके साथ व्यवहार करते हैं उनका विनाश राक्षस लोग कर दिया करते हैं। किन्तु जो उनका सामना करते हैं उन्हीके साथ वे शान्तिपूर्वक रहते हैं। इनका स्वभावही ऐसा है।

रामको यहाँपर यह महत्त्वपूर्ण राजनीतिका पाठ मिला। स्वयं बलवान बनें, राक्षसोंका सामना करनेकी शक्ति उत्पन्न करें, तो राक्षस शान्त, निर्वैर और निरुपद्रवी होंगे। जबतक ऐसा व्यवहार न होगा तब तक राक्षस लोग क्रूर कर्म करते ही रहेंगे।

राक्षसोंको शान्त करने और सुधारनेके लिये अपने सामर्थ्यको बढाना आवश्यक है। अपना सामर्थ्य और संगठन बढ जाय तो वे अवश्य ठीक रास्तेपर आजाते हैं।

इस कथामें श्राद्ध करना और श्राद्धमें ब्राह्मणोंको मांस परोसना और उसे ब्राह्मणोंने खाना, पके मांसका फिरसे राक्षस बन जाना आदि कल्पनामात्र है। किसी भी प्राणीको काटकर और मांस पकाकर उसे खाकर उस मांसको पुकारने हीसे उसका जीवित राक्षस बन जाना असम्भव ही है। किन्तु इस दृष्टिसे इस कथापर हमें विचार नहीं करना है। आज भी हम ऐसी भाषाका प्रयोग करते हैं, 'रशियाने चीनको हडप कर लिया' ऐसा हम बोलते हैं। इसका अभिप्राय सबकी समझमें आजाता है। वैसाही भाव यहाँ भी है। अगस्त मुनीने इन राक्षसोंको मार दिया और दक्षिण दिशा निरापद बना दी। तबसे लेकर दक्षिण दिशा मनुष्योंके आवागमनके लिये सुरक्षित होगई है।

अन्य ऋषिमुनि राक्षसोंके साथ अहिंसा, शान्ति, प्रेम, निर्वैरभाव और सात्विक मार्गसे पेश आते थे। इन सात्विक गुणोंका राक्षसोंपर कोई प्रभाव

पडता था। इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर अगस्त्य ऋषिने उन्हे पीटकर सुधार दिया। तबसे लेकर वे ही राक्षस प्रेमसे व्यवहार करने लगे। यह महत्वपूर्ण राजनीतिका पाठ यहाँपर मिलता है। उसे ग्रहण करना सबको उचित है। संसारमें शान्ति रखनी हो तो दुष्टोंको दण्ड देकर ही रखी जा सकती है। दुष्टोंका सत्कार किया जायगा तो वे कभी भी शान्त नहीं रहेंगे। अगस्त्यका प्रभाव देखिये--

नात्र जीवेत् मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः।
नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष यथाविधः॥९१॥

(अरण्य० ११)

'इस अगस्त्य मुनिके आश्रममें कोई भी असत्य भाषण करनेवाला क्रूर, शठ, घातकी और पापी जीवित रह ही नहीं सकता।' अगस्त्य मुनिका इतना दबाव था। इनका अनुशासन इतना कठोर था कि जरा भी इधरसे उधर हुआ कि दण्ड मिलना ही चाहिये। इस कारण यहाँका वातावरण शान्त बना हुआ था। कठोर अनुशासनके बिना दुष्ट लोग सही रास्तेपर नहीं आते। अन्य ऋषिमुनि और अगस्त्यमुनिके आचरणका यह भेद ध्यान देनेयोग्य है। अगस्त्य मुनिने यदि दक्षिणमें पदार्पण न किया होता तो और जो कठोर अनुशासन उन्होने आरम्भ किया वह न किया होता तो अन्य ऋषिमुनि-योंका दण्डकारण्यमें निवास कर सकना भी कठिन हो जाता; इतना अधिक महत्व उस समयके अगस्त्यके आन्दोलनोंका था। ये अगस्त्य मुनि दाक्षिण भारतमेंही बस गये थे, ऐसी बात नहीं है, वे दाक्षिणकी ओरके द्वीपोंमें भी बहुत दूर तक यात्रा कर आये थे और सभी स्थानोंपर उन्होने अपना ऐसा ही प्रभाव जमा रक्खा था।

इन्द्रके दर्शन

जिस समय राम शरभंग ऋषिके आश्रमके समीप पहुँचे, उसी समय इन्द्रकी सवारी उस ऋषीके आश्रममें आई थी। अर्थात् इस आगमनका हेतु रावणका साम्राज्य उलट देनेका था, यह बात इस समयकी इन्द्रकी इस

हलचलसे सरलतासे समझमें आजाती है। क्योंकि राम आश्रममें आये हुए हैं, यह पता होते हुए भी उनकी भेंट आगे उचित समयपर करेंगे, यह अवसर उपयुक्त नहीं है, ऐसा कहकर वह चला जाता है। भूमिगत क्रान्तिकारी योजनाओंका संकेत इस बातसे मिलता है। इन्द्रको इस समय यहाँ यह बात स्पष्ट करनी थी कि मैं केवल ऋषिसे मिलने ही आया हूँ। वनवासी रहनेवाले रामसे मिलनेका कारण नहीं है। ऊपरी तौरसे इन्द्रने इस बातको अवश्य कहा, किन्तु उसकी हलचलोंपरसे तथा बोलनेपरसे यह सिद्ध होता है कि रामके कार्योंकी ओर उनका पूर्णतः ध्यान था। इस समयका इन्द्रका वर्णन सम्राट्के भव्य एवं प्रभावशाली वर्णन जैसा है--

विभ्राजमानं वपुषा सूर्यवैश्वानरप्रभम्।
रथप्रवरमारूढं आकाशे विबुधानुगम्॥ ५॥
असंस्पृशन्तं वसुधां ददर्श विबुधेश्वरम्।
हरितैर्वाजिभिर्युक्तं अन्तरिक्षगतं रथम्॥ ७॥
पाण्डुराभ्रघनप्रख्यं चन्द्रमण्डलसंनिभम्।
अपश्यद्विमलं छत्रं चित्रमाल्योपशोभितम्॥ ९॥
चामरव्यजने चाग्र्ये रुक्मदण्डे महाधने।
गृहीते वरनारीभ्यां धूयमाने च मूर्धनि॥ १०॥
सहसंभाषमाणे तु शरभंगेन वासवे।
दृष्ट्वा शतक्रतुं तत्र रामो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ १२॥
इमं च पुरुषव्याघ्र ये तिष्ठन्त्यभितो दिशम्।
शतं शतं कुण्डलिनो युवानः खड्गपाणयः॥ १५॥
विस्तीर्णविपुलोरस्काः परिघायतबाहवः।
शोणांशुवसनाः सर्वे व्याघ्रा इव दुरासदाः॥ १६॥
उरोदेशेषु सर्वेषां हारा ज्वलनसंनिभाः।
रूपं बिभ्रति सौमित्रे पञ्चविंशतिवार्षिकम्॥ १७॥

(अरण्य० ५)

' सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी शरीरकान्तिसे युक्त आकाशगामी रथपर बैठा हुआ, जिसके साथ अनेक देवता हैं, ऐसा इन्द्र, धरतीपर उतरने पर भी जिसके पैर पृथ्वीका स्पर्श नहीं कर रहे हैं, जिसके रथको हरिद्वर्ण घोडे जुते हुए हैं, जिसका छत्र निर्मल एवं शोभायुक्त है, श्रेष्ठ स्त्रियोंसे धृत चामर जिसके मस्तकपर डुलाया जारहा है, ऐसा वह इन्द्र था। शरभंग ऋषिसे वह बातचीत करने लगा। ऐसे तेजस्वी इन्द्रको रामने देखा और वे लक्ष्मणसे बोले-- ' ये चारों ओर कानोंमें कुण्डल और हाथोंमें खड्ग धारण किये हुए सौ सौ युवक खडे हैं। इनकी छाती चौडी है, हाथ मुद्गरके समान पुष्ट हैं। ये सिंहके समान भयंकर हैं और उनके शरीरके ऊपरके कपडे अत्यन्त तेजस्वी हैं। वे सब २५ वर्षकी आयुके दिखाई देते हैं। ' इन्द्रका यह वर्णन देखनेपर सम्राट् सी भव्यता दिखाई देती है।

चारों ओर सौ सौ शरीर रक्षक खडे हुए हैं। वे हाथमें नंगी तलवारें लेकर संरक्षणके लिये दक्ष हैं। शेरके समान उनका चेहरा भयंकर है। इन्द्रका संरक्षण करनेमें वे सदा दक्षसे दिखाई देरहे हैं। वे सब युवक २५ वर्षकी आयुवाले दिखाई देरहे हैं, स्वयं इन्द्र तेजस्वी है, उसका रथ चमक रहा है, उसपर श्वेतछत्र है, मस्तकपर चँवर और पंखे डोल रहे हैं और वे (वरनारी) श्रेष्ठ स्त्रियोंने धारण कर रक्खे हैं; ये स्त्रियाँ इन्द्रको हवा कर रहीं हैं। सबकुछ स्वच्छ, निर्दोष, आकर्षक, प्रभावशाली, तेजःपुंज था। जिस प्रकार एक सम्राट्के चारों ओरका वातावरण रहना चाहिये वैसाही यहाँ भी दिखाई देता है। शरीरसंरक्षक भी वैसे ही तेजस्वी हैं। ऋषि आश्रममें भी (इन्द्रके आनेपर) इतने अंगरक्षक साथमें आना आश्चर्य कारक है। सम्भव है इन्द्र कहीं दूसरी ओर गया हो और वहाँसे वह सीधा इधर आगया हो अथवा यह भी सम्भव है कि वह सदैव इतने अंग रक्षक साथमें रखता हो।

यहाँ ' वरस्त्री ' यह शब्द श्रेष्ठ स्त्रीका वाचक है। श्रेष्ठ स्त्रियाँ सम्राट्के मस्तकपर छत्र चामर और पंखे डुलाती होंगी, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इस विषयमें क्या परिपाटी थी, यह देखना आवश्यक है। कदाचित

'वारस्त्री' ऐसा यह शब्द हो और वारस्त्री यह कार्य कर सकती हो तो ऐसा सम्भव है । राजाके पास या सम्राट्के समीप श्रेष्ठ स्त्रियाँ और वारस्त्रियाँ इस प्रकारसे सतत पासमें रहना उचित है या नहीं इसका विचार होना चाहिये । सम्राट्के बाहर जानेके समय उसके साथ चँवर और पंखे डुलानेवाली स्त्रियोंका जाना, यह बात आज हमें आश्चर्यकारक प्रतीत होगी, किन्तु यह बात उस समय ऐश्वर्यका लक्षण समझी जाती होगी ।

राम शरभंगके आश्रममें आये हैं यह देखते ही इन्द्र जल्दी करता है और वहाँसे निकल जाता है तथा जाते जाते कहता है कि उचित अवसर आनेपर रामसे भेंट होगी । यही विशेष परिस्थितिका सूचक है । देखिये इस अवसरके इन्द्रके शब्द—

> इहोपयात्यसौ रामो यावन्मां नाभिभाषते ।
> निष्ठां नयत तावत्तु ततो मां द्रष्टुमर्हति ॥ २२ ॥
> जितवन्तं कृतार्थं हि तदाहमचिरादिमम् ।
> कर्म ह्यनेन कर्तव्यं महदन्यैः सुदुष्करम् ॥ २३ ॥
>
> (अरण्य० ५)

'राम आरहे हैं, यह देखकर इन्द्रने देवोंसे कहाकि-ये राम इधर आरहे हैं, किन्तु इनके यहाँ आने और मुझसे भाषण करनेसे पूर्व ही आप सब मेरे साथ यहाँसे निकल चलें । दूसरोंके लिये जो असम्भव कार्य है वह अति महान् कार्य इनके द्वारा होनेवाला है ।

इन शब्दोंसे ध्वनित होता है कि, इस समय यदि रामसे इन्द्र मिले तो रामके द्वारा जो महान् कार्य होना है उसमें विघ्न उपस्थित होगा । इस लिये इस समय देव, ऋषि और राम इन सबकी एक समय एक स्थानपर भेंट न होनी चाहिये। रामकी और ऋषिकी भेंट होनेमें कोई हानि नहीं है। वह तो होनी ही चाहिये किन्तु इन सबमें देवता लोग भी मिलकर गांठ सांठ करते हैं, इस बातका हल्ला नहीं होना चाहिये । इसीका यह अर्थ होता है कि इन्द्र आदिके लिये ऐसे समयमें अपनी हलचलें गुप्त रखना आवश्यक

। देवता लोग एकान्तमें ऋषियोंसे मिलें, रामको देनेके लिये देवता ...लाकर ऋषियोंके पास रक्खें और उचित अवसर पर रामको वे ... जावें यह सबकुछ सुनियोजित था। किन्तु प्रत्यक्ष रूपसे देवता आते और रामसे मिलते थे इसका भेद किसीपर प्रगट नहो, यह उस स्थितिमें ...वश्यक था।

इसका कारण वाचक सरलतासे समझ सकता है। देवताओंका राज्य ...सोंने (रावणने) छीन लिया था और अधिकतर देव रावणके यहाँ ...रबंद थे। ऋषियोंको जितनी स्वतन्त्रता थी उतनी देवताओंको न थी। ...ताओंकी हलचलपर राक्षसोंकी नजर थी। देव अपना स्वराज्य प्रयत्न ...के छीन लेंगे यह भय राक्षसोंको था। ऋषि लोग भी इसी प्रयत्नमें हैं, ...था राक्षसोंको मालूम था। इसलिये वे ऋषियोंको भी मारते हैं। किन्तु ...षि लोग पूर्णतः अहिंसावादी थे। अकेले अगस्त्यके अतिरिक्त किसीने भी ...क्षस-वध नहीं किया। इन अहिंसाशील ऋषियोंका वध करनेके कारण ...क्षसोंकी सर्वत्र निन्दा होती थी। अतः दक्षिणमें अरण्यमें आश्रम बनाकर ...वकोंको शिक्षा देनेका कार्य करनेवाले ऋषियोंका पूर्ण रूपसे संहार राक्षस ...भी नहीं कर सकते थे। यद्यपि ऋषि आश्रममें नई पीढी भी 'रावण ...द्योद्यत' तैयार हो रही थी तथापि आश्रमके सात्त्विक एवं धार्मिक वायु-...मण्डलके कारण उनका बचाव होता रहता था और उन्हे इसी कारण ...स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

किन्तु देवताओंकी हलचलें इतनी स्वतन्त्र रूपसे नहीं हो सकती थी। ...ौन व्यक्ति किससे मिलता है, इसकी जांचपडताल हुआ करती थी और ...सका प्रायश्चित्त देवताओंको भोगना पडता था। यद्यपि इन्द्रका रौबदाब ...न्द्रके पास था, तथापि राम वनमें आकर राक्षसोंका संहार कर रहे हैं। ...यह 'धीट मानव' उन्मत्त हो गया है, यह वृत्तान्त बीचबीचमें राक्षसोंतक ...पहुँचता था। किन्तु यदि इन्द्र, ऋषि और रामका एकत्रित होकर विचार ...विनिमय होरहा हैं, यह वृत्तान्त उन्हे विदित होता तो उसका दुष्परिणाम

इन्द्रादि देवोंको तत्काल भोगना पडता था। इसलिये इन्द्र स्वयं भी वहाँ निकल जाता है और साथमें आये हुए देवोंको भी निकल जानेके लिये कहता है।

इन्द्र कितनी सावधानी रखता था इसका एक वृत्तान्त यहाँ उपस्थित करने जैसा है। राम-रावण युद्धमें रावण रथमें और राम पैदल, इस प्रकार युद्ध होते हुए भी कुम्भकर्ण, इन्द्रजित आदि अतिरथियोंका वध हुआ, रावणकी बहुतसी शक्ति नष्ट हुई और उसका विनाश निश्चित प्राय हुआ, उस समय इन्द्रने अपना रथ रामके पास भेजा। तबतक इन्द्रकी जो कुछ भी रामके विषयमें सहानुभूति थी वह मानसिक ही थी। इस परिस्थिति पर विचार करनेपर ऋषि आश्रममें इन्द्रने रामसे भेंट क्यों नहीं की, इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।

अंग्रेजी राज्यके रियासती राजाओंके समान रावण राज्यमें देवता थे। उनके पास रौबदाब यथेष्ट था। किन्तु राक्षसोंकी (रेसिडेंसीकी) वक्रदृष्टि सहन करनेका सामर्थ्य उनमें न था।

ऋषि रामको शस्त्र देते हैं।

राम अगस्त्यके आश्रममें पहुँचे। अगस्त्यने उनका खूब सत्कार किया और उन्हें उत्तम शस्त्रास्त्र दिये—

इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम्।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥३२॥
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः।
दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ॥ ३३ ॥
संपूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः।
महाराजतकोशोऽयं असिर्हेमविभूषितः ॥ ३४ ॥
अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान्।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ३५॥

तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३६ ॥
एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम्।
दत्वा रामाय भगवान् अगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥ ३७ ॥
(अरण्य० स. १२)

'अगस्त्यने हेमवज्रयुक्त बडा धनुष, अक्षय तर्कस, उत्तम तेजस्वी बाण ...रे पदार्थ रामको दिये और इनसे राक्षसोंका विनाश करो तथा ...स्वी बनो ऐसा आशीर्वाद भी दिया।'

...ऋषिगण रावण साम्राज्यके विनाशकी योजनामें सहभागी थे यह बात ...स्थानपर इन वचनोंसे स्पष्ट हो रही है। दिव्य शस्त्रास्त्रोंका संगठन ...सीलिये इन्होंने किया था। वे शस्त्रास्त्र रामके आते ही उन्हे दे दिये गये। ...स समय रामको वनमें आये १० वर्ष हो चुके थे। साथ ही रावण वधकी ...तिज्ञा भी रामने की थी। यह प्रतिज्ञा रामद्वारा घोषित हो जानेपर ये ...स्त्रास्त्र ऋषिद्वारा रामको प्राप्त हो रहे हैं।

राक्षसोंका स्वरूप

राक्षस एक प्रकारकी मानव जाति थी, अथवा वह एक वंश था। इनमें ...वण, बिभीषण जैसे विद्वान थे। इसी प्रकार विराधके समान मूर्ख और ...गली राक्षस भी थे। इस जंगली विराधका वर्णन देखिये—

गभीराक्षं महावक्त्रं विकटं घोरदर्शनम्।
वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् ॥ ६ ॥
(अरण्य० २)

'इस विराध राक्षसकी आँखें धंसी हुई थी, मुंह बडा था, कुरूप और ...यंकर स्वरूप था, रक्तपूरित शेरका चमडा पहनता था तथा जिसके शरीर-...र रक्त और चरबी लिप्त थी, ऐसा वह विराध राक्षस था।' पूरे जंगली ...वस्थाके मनुष्यका यह वर्णन है। गीला चमडा पहननेमें भी जिसे घृणा ...नहीं होती, ऐसे राक्षसको रामने वहाँ देखा। इसने खानेके लिये कुछ

पशुओंके शरीरके भाग अपनी खूंटियोंपर टांग रक्खे थे। सम्भव है ... कच्चा मांस ही खाता हो। इस समय दण्डकारण्यमें ऐसे राक्षसोंकी-... जंगली-क्रूर-मानवोंकी बस्ती थी।

राक्षस स्त्रियोंको भगाते हैं

रामायणमें जहाँ जहाँ राक्षसोंका वर्णन दिखाई देता है, वहाँ वहाँ ... धर्म कृत्योंका विध्वंस, स्त्रियोंका अपहरण और यथेच्छ मांस भक्षण ... दिखाई देता है। इसी प्रकार ब्रह्मदेव और महादेव (श्रीशंकर) के ... प्रसादसे वे प्रबल हुए भी दिखाई देते हैं। विष्णुकी सहायतासे कहीं ... राक्षस प्रबल हुए नहीं दिखाई देते। ऐसा होनेका यही एकमात्र ... होगा कि, ब्रह्मदेव, महादेवकाही सम्बन्ध इन राक्षसोंसे विशेष हो... ब्रह्मदेवकी अपेक्षा श्रीशंकरका सम्बन्ध भूत, पिशाच, असुर, राक्षसके ... विशेष दिखाई देता है। इस काण्डमें, इस तृतीय सर्गमें यह विराध ... है कि—

> विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्व राक्षसाः।
> तपसा चाभिसंप्राप्ता ब्रह्मणो हि प्रसादजा।
> शस्त्रेणावध्यता लोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेव च ॥ ६ ॥
>
> (रा० अरण्य० ३)

'सारे राक्षस मुझे विराध नामसे पुकारते हैं, मैने तप करके ब्रह्मदेव... प्रसन्न कर लिया है और शस्त्रद्वारा अवध्यत्व प्राप्त कर लिया है' ब्रह्मदेव... ध्यानमें यह बात नहीं आई कि यह राक्षस इस वरसे जनताको पीड़ा ... लगेगा। ब्रह्मदेव और श्रीशंकरने वर दे दे कर कितनेही राक्षसोंको उद्धत ... रक्खा था, ऐसा दिखाई देता है। इन्ही राक्षसोंने जनताको अतिशय ... देकर उन्हे त्रस्त कर रक्खा था और बादमें भगवान् विष्णुने उन राक्षसों... कण्टक दूर किया। कभी कभी तो ये राक्षस स्वयं उन्ही देवताओंके सिर ... सवार हो जाते थे और उनके लिये जीवित रहना कठिन हो जाता था... ऐसे समयमें भगवान् विष्णु ही उनका बचाव करते थे। राज्य शास...

प्रकारका सीधापन उपयोगी नहीं होता, यही बात यहाँपर सिद्ध होती यह विराध रामलक्ष्मणसे कह रहा है—

उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम्।
त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे ॥ ७ ॥

(अरण्य. ३)

' अरे राजकुमारो ! तुम्हे जीवित रहना हो तो इस स्त्रीको यहाँ छोड और जैसे आये हो वैसे भाग जाओ। यदि तुमने ऐसा किया तो ही मैं तुम्हारे प्राण नहीं लूंगा। ' इस प्रकार राक्षसोंकी दृष्टि सदैव परस्त्रीपर ही रहती थी ऐसा दिखाई देता है।

इस विराधको रामने ' हीनार्थ ' (सं० ३।९) परस्त्रीहरण जैसा नीच कार्य करनेवाला ' कहा है। राक्षसोंकी यही नीच आदत सर्वत परिलक्षित होती है। रावणने यही किया, मारीचने उसे मदद की। आज भी यही कर्म राक्षस लोग भिन्न भिन्न स्वरूपोंमें करते हुए दिखाई दे रहे हैं। जनताको चाहिये कि वह उन्हे दबाकर इस कार्यसे विरत कर दे।

राक्षसोंको गाडा जाता था

विराध राक्षसको मार देनेके पश्चात् राक्षसोंकी रीतिरिवाजके अनुसार उसका शव गाड देना चाहिये, ऐसा रामने लक्ष्मणको कहा है; क्योंकि विराधने ही उनको वैसा कहा है—

अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज।
रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः ॥ २२ ॥
अवटे ये निधीयन्ते तेषां लोकाः सनातनाः ॥ २३ ॥
कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण।
वनेऽस्मिन्सुमहान् श्वभ्रः खन्यतां रौद्रकर्मणः ॥ २५ ॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति।
तस्थौ विराधमाक्रम्य कंठे पादेन वीर्यवान् ॥ २६ ॥

(अरण्य० ४)



'हे राम ! तुमने मेरा वध किया है । अतः अब तुम मुझे गड्ढेमें गाड दो । क्यों कि मृत राक्षस गाड दिये जानेपर ही शाश्वत लोकोंको प्राप्त करते हैं, यही राक्षसोंका सनातन धर्म है ।' ऐसा विराधने रामसे कहा । तब रामने पैरसे विराधका गला दबाया और लक्ष्मणसे कहा कि, एक बडा खड्डा यहीं पर खोद लो, उसीमें इसे हम गाड देंगे । तदनुसार लक्ष्मण कुदाली लाये और एक बडा खड्डा खोदकर उस राक्षसको उसमें डालकर गाड दिया ।'

इस प्रकार राक्षसोंको गाडा जाता था । राक्षस लोग भी शवको गाड देनेसे सद्गति होती है, ऐसा मानते थे और आर्य लोग भी राक्षसोंके लिये यह विधि आस्थापूर्वक किया करते थे ।

राक्षस ब्रह्मा और श्रीशंकरके वरदानोंसे ही प्रबल होते हैं । वे स्त्रीलंपट होते हैं, दूसरेकी स्त्री भगा ले जानेमें उन्हे कुछ भी संकोच नहीं होता । वे मनुष्य मांस भी खाते थे, अन्य मांस तो खाते ही थे । अधिक मांस खाने और कच्चा मांस खानेकी उनकी यह आदत यहाँ स्पष्ट दिखाई देती है । इसी प्रकार राक्षसके मर जानेपर उसे गाड देनेका रिवाज था तथा गाड देनेपर उन्हें सद्गति प्राप्त होती है, ऐसा उनका विश्वास था ।

इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसे कृत्य करनेवाली जातियाँ रामायणकालमें भी थीं । आज भी किन्ही जातियोंमें ऐसी घटनायें (कृत्य) दिखाई देती हैं ।

राक्षसोंके अपकृत्य

सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान् ।
त्वं नाथो नाथवद्राम राक्षसैर्हन्यते भृशम् ॥ १५ ॥
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
हतानां राक्षसैर्घोरैः बहूनां बहुधा वने ॥ १६ ॥
परा त्वत्तो गतिर्वीर पृथिव्यां नोपपद्यते ।
परिपालय नः सर्वान् राक्षसेभ्यो नृपात्मज ॥ २० ॥
(अरण्य० ६)

ब्राह्मण जिनमें अधिक हैं, ऐसे वानप्रस्थियोंका नाश ये दुष्ट राक्षस किया करते हैं। तू इधर आ और मुनियोंके शरीरके ढेर देख। मारे इतिवृत्त राक्षसोंद्वारा मारे गये मुनियोंके हैं। अब तू ही हमारी कर, क्योंकि तेरे सिवा हमारी रक्षा करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।' पता नहीं कि वानप्रस्थियोंके शरीर जलाये जाते थे अथवा नहीं। यदि ये जाते थे तो, मृत ऋषि मुनियोंके शरीर, उनके ढेर राम कैसे दिखा ते थे ? संन्यासियोंको गाडनेकी रीति है। कदाचित् वानप्रस्थियोंको भी ही करते हों। इसका विचार होना इष्ट है। यहाँपर--

पम्पा नदी निवासानां अनुमन्दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् ॥१५॥

(अरण्य० ६)

पम्पा नदीसे मन्दाकिनी तक और चित्रकूट पर्वतपर रहनेवाले (इतने क्षेत्रके) मुनियोंका विनाश ये दुष्ट राक्षस लोग किया करते हैं, ऐसा नियोंने रामसे कहा है।

दशरथके राजसूय यज्ञसे ऋषि, देव और आर्य राजा एकत्रित हुए थे उन सबने रावण साम्राज्यका विनाश करनेके लिये राष्ट्रीय आन्दोलन नेका निश्चय किया। तदनुसार ऋषियोंने यह आन्दोलन प्रारम्भ किया। बीचमें देवगण भी इनको गुप्त सहायता किया करते थे। खुले रूपसे ताओंकी सहायता सम्भव न थी। ऋषियोंने दशरथके राजमहलोंमेंसे , लक्ष्मण और सीताको बाहर निकाला। रामलक्ष्मणको शस्त्रास्त्रोंकी म शिक्षा दी गई तथा दण्डकारण्यके राक्षसोंका संहार उनके द्वारा म्भ कराया। इधर वानर जातिके बालकोंको भी ' रावणका नाश ' नेकी शिक्षा दी जा रही थी। इस प्रकारसे रावण साम्राज्यका नाश करके के स्थानमें आर्य राज्य स्थापित करनेका आन्दोलन ये सब ऋषि मुनि रहे थे। राक्षस लोग इसे भला कब सहन कर सकते थे ? राक्षसोंको सब सहन न हुआ; अतः अपने राज्यनाशकोंको नष्ट करनेका कार्य उन्होंने

आरम्भ कर दिया। तब ऋषि-मुनियोंने आर्य राजाओंके पास 'ये दुष्ट राक्षस हमारे धार्मिक कृत्य नहीं करने देते ' यह शिकायत करनी आरम्भ की। मुनियोंपर राक्षसोंका जो यह अत्याचार होता था, उसका सम्बन्ध ... प्रकार है।

इस प्रकार ऋषिमुनियोंने रामसे राक्षसोंके कृत्य निवेदन किये। राम... मानसिक रूपसे तैयारी करना तथा दण्डकारण्यको विपत्तिरहित करना, ... दो हेतु इसमें प्रतीत होते हैं।

राजाओंके कर्तव्य

रामका सत्कार करनेके पश्चात् ऋषियोंने जो भाषण दिये, उसमें राजा... कर्तव्योंका मननीय बोध है। वह यहाँ देखिये--

धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यश्च महायशाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः ॥ १९ ॥
इन्द्रस्येव चतुर्भागः प्रजा रक्षति राघव।
राजा तस्माद्वरान्भोगान्रम्यान्भुंक्ते नमस्कृतः ॥ २० ॥
ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः ॥ २१ ॥
न्यस्तदण्डा वयं राजन् जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
रक्षणीयास्त्वया शश्वद्गर्भभूतास्तपोधनाः ॥ २२ ॥

'राजा धर्मकी रक्षा करनेवाला और सबको आश्रय देनेवाला है। ... दुष्टोंको दण्ड देनेकी शक्ति रखता है, अतएव तू श्रेष्ठ है, पूज्य एवं सम्मान करने योग्य है। इन्द्र देवोंका राजा है और यहाँके मानवोंका राजा उसका चतुर्थांश है। (राजा विष्णुका अंश ही है) राजा प्रजाका संरक्षण करता है, इसलिये वह श्रेष्ठ एवं रमणीय भोग भोगा करता है। और उसे सब लोग वन्दन करते हैं। तेरे देशमें हम रहते हैं, अतः तुझे हमारी रक्षा करनी चाहिये। तू नगरमें रह अथवा वनमें रह; तू ही हमारा राजा है। हमने क्रोधका संयमन किया है तथा इन्द्रियोंका हमने दमन किया है एवं दुष्टोंको दण्ड देना स्थगित किया है। अतएव तुझे ही हमारी रक्षा करनी चाहिये।

ऋषि लोग अध्यात्म चिन्तनमें सदैव निमग्न रहनेके कारण वे ही स्व संरक्षणार्थ हाथमें शस्त्रास्त्र ग्रहण करें, यह अनुचित था। अतिविद्वान्, विचारमग्न शास्त्रीय संशोधन करनेवाले जो लोग हैं, उनकी रक्षा राजाकी व्यवस्थासे होनी चाहिये। राज्यमें स्त्रियाँ, बालक, वृद्ध, शिक्षणालय, रासायनिक प्रयोगशाला, प्रसूति गृह, रुग्णालय आदिका संरक्षण राजाको ही करना उचित है। वहाँ रहनेवाले कर्मचारी अपना संरक्षण कर सकेंगे यह सम्भव नहीं है। राष्ट्रद्वाराही इनका संरक्षण होना अभीष्ट है। अतः यहाँ ऋषि कहते हैं कि हे राम ! तू ही हमारी रक्षा कर; क्योंकि तू क्षत्रिय है, राजपुत्र है। अत एव तेरा यह कर्तव्य है।

ये सारे आश्रम एक प्रकारके शिक्षणालय थे। यहाँ हर राष्ट्रकी भावी पीढीको उत्तम और निःशुल्क शिक्षण मिला करता था अर्थात् ये राष्ट्रकी अमूल्य धरोहर ही थे, इसमें शंका नहीं है।

ऋषि रावणसाम्राज्यको पलट देनेके क्रान्तिकारी षड्यन्त्रमें सम्मिलित थे ही। राम वनवासमें क्यों लाये गये, विश्वामित्र ऋषिने शस्त्रास्त्र सिखाकर उन्हे क्यों तैयार किया, ये सब उन्हे मालूम था कौन किस समय क्या कहे, इसका निश्चय पहले ही हो चुका था। इस प्रकार ये ऋषि रामके मनमें राक्षसविषयक विद्वेषकी भावना उभाडनेका कार्य कर रहे हैं। निरपराध ऋषियोंकी हत्या राक्षस लोग करते हैं, अतः राजाके लिये यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह इन्हे दण्ड दे तथा ऋषियोंकी रक्षा करे। यही बात अबतक रामके मनमें बैठाई गई। यह कार्य किस प्रकार धीरे धीरे एवं अत्यन्त सावधानीके साथ किया गया यह देखने योग्य है।

राजाके कर्तव्यके विषयमें अरण्यकाण्डके ६ वे सर्गमें इस प्रकार लिखा है–

अधर्मः सुमहान् नाथ भवेत्तस्य तु भूपतेः।
यो हरेद्बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत् ॥ ११ ॥
युञ्जानः स्वानिव प्राणान् प्राणैरिष्टान् सुतानिव।
नित्ययुक्तः सदा रक्षन् सर्वान् विषयवासिनः ॥ १२ ॥

प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं स बहुवार्षिकीम् ।
ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते ॥ १३ ॥
यत्करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः ।
तत्र राज्ञः चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ १४ ॥

(अरण्य० ६)

प्रजासे ६ वा भाग कर के रूपमें लेकर जो राजा प्रजाका पुत्रवत् पालन करता न हो, उसे बहुत बडा पाप लगता है। प्रजाकी रक्षाके विषयमें तत्पर रहनेवाले और उसका अपने प्रिय पुत्रके समान रक्षण करनेवाला राजा, अपने देशमें रहनेवाली सम्पूर्ण प्रजाका उत्तम संरक्षण करेगा तो उसे शाश्वत एवं अनेक वर्षोंतक स्थायी रहनेवाली कीर्ति प्राप्त होगी। उसे आगे जाकर ब्रह्मलोक प्राप्त होता है एवं वहाँ भी उनकी प्रशंसा होती है। कन्द मूल फल भोजन करके मुनि जो पुण्य प्राप्त करते हैं उसका चौथा भाग धर्मसे प्रजाका रक्षण करनेवाले राजाको प्राप्त होता है।'

इस स्थानपर (सर्वान् विषयवासिनः रक्षन्) अपने राष्ट्रकी सम्पूर्ण प्रजाका रक्षण करना, यह राजाका कार्य है, ऐसा जो कहा है, वह अत्यन्त महत्व पूर्ण है। अपने राज्यमें धर्म, जाति, वर्ण, वंश आदि कारणोंसे किसीका भी पक्षपात किये बिना जो सबकी रक्षा करता है वह राजा यशस्वी होता है। अपने धर्मके लोगोंकी ही रक्षा की जावे और दूसरे धर्मके लोगोंको छला जावे, इस प्रकार जो बहुतसे करते हैं, उसका यहाँ निषेध है।

राजा तपस्वियोंका सेवक है

इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः ।
नैवं अर्हथ मां वक्तुं आज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम् ॥ २१ ॥

(अरण्य० ६)

मुनिजनो! आप ऐसा न कहें, मुझे आज्ञा दीजिये कि क्या करना है। आपको उचित है कि मुझे आदेश दें। मैं तपस्वियोंका सेवक हूँ, ऐसा समझिये।'

इस स्थानपर राम मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये तत्पर है, ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है।

रामका वनमें निवास

कहीं दस महिने, कहीं चार महिने, इस प्रकारसे राम ऋषि आश्रमोंमें निवास करते करते १० वर्षोंतक रहे।

रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश ॥ (अरण्य. ११२७)

दस वर्ष रहनेके पश्चात् राम पुनः सुतीक्ष्ण ऋषिके आश्रममें आये और वहाँ रहने लगे।

रामके मनका हेतु

अगस्ति ऋषिने रामसे कहा—

हृदयस्थं च ते च्छन्दो विज्ञातं तपसा मया।
इह वासं प्रतिज्ञाय मया सह तपोवने ॥ १६ ॥
अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति।

(अरण्य० १३)

तुम्हारे हृदयमें क्या है, यह मैं जानता हूँ। इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम अब पंचवटीमें जाकर रहो।' यहाँ रामके लिये शस्त्रास्त्र इकट्ठे करके रखनेवाले और उन्हे रामको समर्पण करनेवाले अगस्त्य ऋषि रामसे कहते हैं कि तुम्हारे मनमें क्या है यह मुझे मालूम है। इसीलिये वे रामको पंचवटीमें जाने और वहाँ रहनेके लिये कहते हैं। क्योंकि अगस्त्यके आश्रमके आसपास राक्षस लोग फटक नहीं सकते। अगस्त्यका रंगढंग राक्षस अच्छी प्रकारसे जान चुके थे। अतएव राम अगस्त्यके आश्रममें रहें तो रामका वाञ्छित कभी पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिये राम यहाँ न रहें; अपितु वे पंचवटी जावें। यह सम्पूर्ण योजना अग्रिम कार्यक्रमकी सूचक है।

राक्षसोंके विध्वंसका व्रत रामने धारण किया था। यह कार्य अत्यन्त आवश्यक भी था किन्तु अगस्त्यके आश्रमके चारों ओर राक्षस फटकते

ही न थे। तब वहाँ रहनेसे रामका उद्देश्य कैसे पूर्ण होता ? इसलिये वे रामसे कहते हैं कि तू पंचवटीमें जा। वहाँ राक्षसोंका उत्पात चालू है। उसी कार्यके लिये मैंने ये शस्त्रास्त्र सुरक्षित रक्खे थे।

रामका 'हृदयस्थ छन्द' अर्थात् 'राक्षसोंका उपद्रव शान्त करना' यही था। यह मुनि अच्छी प्रकारसे जानते थे; क्योंकि ऋषिमुनि प्रत्येक स्थान पर घटित होनेवाले वृत्तान्त परस्पर एक दूसरेको मालूम कर देते थे और क्या करना है, इसका निश्चय करके तद्वत् योजना पूर्ण करते थे। रावण-विरोधी महत्वका केन्द्र-बिन्दु अगस्त्य मुनि थे, यह बात इससे स्पष्ट होती है। 'रामका मनोगत' अगस्त्यको रामकी भेंट होनेसे पूर्व ही विदित हो गया था अर्थात् वह ऋषियोंकी हलचलोंसे यहाँतक आपहुँचा था।

पंचवटीकी पर्णशाला

पञ्चवटीमें फलफूलसे ओतप्रोत स्थान देखकर यहाँ जटायुके साथ हम रहें, ऐसा निश्चय रामने किया और तुरंत लक्ष्मणने पर्णकुटी बना ली, ऐसा वर्णन है—

पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम् ।
सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् ॥ २१ ॥
शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम् ।
कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादिताम् तथा ॥ २२ ॥
समीकृततलतां रम्यां चकार सुमहाबलः ।
निवासं राघवस्यार्थे प्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥ २३ ॥

(अरण्य० १५)

लक्ष्मणने पर्णशाला बनाई। उस पर्णशालाको मिट्टीकी दीवारें थीं। कमरे पर्याप्त रूपसे विस्तीर्ण थे। उसके अच्छे खम्भे लगे हुए थे। शमीवृक्षकी शाखाओं और बांसोंपर उसका छप्पर रक्खा हुआ था सम्पूर्ण बांस मजबूत बांधकर तैयार किये थे। वह पर्णशाला अत्यन्त प्रेक्षणीय एवं सुन्दर थी।

यह पर्णशाला कोई छोटीसी नहीं होगी। राम और सीताके लिये एक, लक्ष्मणके लिये एक, इस प्रकार दो कमरे तो होंगे ही। बाहर एक वराण्डा और एक रसोई घर, इतना स्थानतो होगा ही। जटायु कहीं भी रह जायगा, ऐसा मानलिया जाय तो राम और लक्ष्मणके लिये तो एक एक कमरा आवश्यक है ही।

मिट्टीकी दीवारें खडी करनेमें कुछ दिन तो लगेंगे ही। बहुत छोटी भी यदि पर्णशाला मानली जावे तो भी २०'×३०'. की तो होगी ही। आजकलके दिनोंमें बढइ और गवंडी द्वारा मिट्टीकी दीवारोंकी इतनी बडी पर्णशाला बनवानेमें कमसे कम ८-१० दिन तो लगेंगे ही। यहाँ ऐसा उल्लेख है कि यह कुटी अकेले लक्ष्मणने ही बनाई थी। पंचवटीमें जनस्थान अत्यन्त निकट होनेसे लोकवस्ती थोडी बहुत अवश्य ही होगी। वहाँके लोगोंको सहायताके लिये बुलानेका भी उल्लेख नहीं है। यदि ऐसा मान लिया जाय कि यह सब अकेले लक्ष्मणने किया और रामने कुछ भी नहीं किया तो यह जरा विचित्रसा लगता है। पहले खम्भे खडे करके ऊपरका छप्पर तैयार किया गया हो और धीरे धीरे बादमें दिवारें बनाई हो, यदि ऐसा हो तो यह पर्णशाला सहज एवं शीघ्र हो सकती है।

उस समयके राजपुत्र कितने सशक्त थे और परिश्रम करनेका उन्हे गुरुगृहमें कितना अभ्यास था, यह सिद्ध होता है।

वास्तु शान्ति

लक्ष्मण द्वारा पर्णशाला तैयार हो जानेपर उस घरमें जाकर रहनेसे पूर्व लक्ष्मण स्नान करके स्वयं उसकी वास्तुशान्ति करते हैं। और तब राम वहाँ रहते हैं। यह बात ध्यान देने जैसी है। इस धार्मिक संस्कारकी ओर ये राजकुमार दुर्लक्ष्य नहीं करते।

स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान् नदीं गोदावरीं तदा।
स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः ॥ २४ ॥

ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं स च यथाविधि ।
दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम् ॥ २५ ॥
स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यं आश्रमं सह सीतया ।
राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयत् परम् ॥ २६ ॥
सुसंहृष्टः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा ।

(अरण्य. १५)

' बादमें लक्ष्मण गोदावरी नदीपर जाकर, स्नान करके वहाँसे फूल और फल ले आते हैं। तब वे वहाँ उस पर्णशालामें पुष्पबलि एवं यथाविधि शान्ति करते हैं। इतना हो चुकने पर वे रामको वह पर्णशाला दिखाते हैं। सीता सहित रामने वह आश्रम देखा। तब उन्हे अतिशय आनन्द हुआ और इतना बडा श्रमका कार्य करनेके कारण रामने लक्ष्मणसे गाढ आलिङ्गन किया।' फिर राम उनसे बोले– ' मेरे पास दूसरी कोई वस्तु देने जैसी नहीं है, अतः यह आलिङ्गन ही मैं दे सका हूँ। हे लक्ष्मण ! मेरे पिता भले ही मृत हो चुके हैं तब भी तुम यहाँपर अभिप्राय जाननेवाले, मेरा उत्तम पालन करनेके लिये तैयार होनेके कारण मुझे ऐसा लगता है कि मेरे पिता मरे ही नहीं हैं।

भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥ २९ ॥

(अरण्य. १५)

इतना कहकर सीतासहित राम उस पर्णशालामें रहने लगे।

पञ्चवटीमें हिमालय कहाँ ?

राम लक्ष्मण इस समय पंचवटी–नासिक–में आकर वहाँ पर्णशाला बनाकर रहने लगे हैं। वहाँ शरद् ऋतु समाप्त होकर हेमन्त ऋतु प्रारम्भ हुआ है। थंड जोरोंकी आरम्भ हो चुकी है। ऐसे समय लक्ष्मण हिमालयका वर्णन कर रहे हैं। यह कैसे ?

प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च सांप्रतम् ।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान्गिरिः ॥ ९ ॥

शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति सांप्रतम्।
निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः ॥ १२ ॥
रसवज्जलम् ॥ २५ ॥ (अरण्य० १६)

'हिमालयपर बर्फ बढ गया है। सूर्य दूर जा चुका है। हिमालय अपने [अ]र्थोंसें हिमका–बर्फका, आलय–घर, बन गया है बर्फसे अरण्य नष्ट [हो] रहा है। आजकल कोई भी खुले स्थानपर नहीं सो रहा है। सूर्य पुष्य [न]क्षत्रपर अस्त होरहा है। धरतीपर बर्फ गिरनेके कारण वह श्वेत दिखाई [दे] रही है। पानी पारेके समान गाढा हो गया है।'

नाशिकमें बर्फ नहीं गिरता और न ही वहाँसे हिमालय दिखाई देता है। [अ]तः सम्भव है कि लक्ष्मण पूर्व स्मरणके कारण ऐसा बोलते होंगे तथा [ध]रणीपर पाला पडा हुआ देखकर जो सफेदसा रंग प्रातःकाल दिखाई देता [है], वह साधारणतः बर्फ जैसा दिखाई देता हो, अतः उसीका यह वर्णन [हो]। किन्तु इतना अवश्य सत्य है कि नासिककी पंचवटीका एतादृश वर्णन [ज]रा अप्रस्तुत सा है।

राक्षस वध इष्ट या अनिष्ट ?

त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत।
मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद्गुरुतरावुभौ ॥ ३ ॥
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता। (अरण्य. ९)

सुतीक्ष्ण मुनिका सन्देश लेकर राम वनमें जानेके लिये धनुषबाण हाथसें [ध]ारण करके जब निकले तो सीताने उनसे कहा– 'हे राम, कामसे उत्पन्न [हु]ए तीन व्यसन हैं (१) मिथ्या भाषण, (२) परस्त्रीगमन तथा (३) [श]त्रुताके बिना भी दुष्टताके कर्म करना' ये तीनों व्यसन बुरे हैं और [इ]नमें भी पहलेकी अपेक्षा अगले दो तो और भी बुरे हैं।'

आगे सीता कहती हैं कि 'आप कभी असत्य नहीं बोलते, परस्त्रीगमन [त]ो आपके लिये असम्भव है। क्योंकि आप अपनी स्त्रीमें ही रमण करते [है]। तब अवशिष्ट जो तीसरा व्यसन है कि 'शत्रुताके बिना भी क्रूर कर्म [क]रना' (अरण्य ९।४–९) यह आपके द्वारा होनेवाला है—

प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् ।
ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम् ॥ १० ॥
(अरण्य. ९)

आपने तो दण्डकारण्यके मुनियोंके संरक्षण करनेकी प्रतिज्ञा ही कर ली है। अतः राक्षसोंका वध तो आपको करना ही होगा ' और यह तो वैर न करनेवालोंका वध होनेके कारण दोषार्ह है, इसलिये आप इस दण्डकारण्यमें न जावें, ऐसा मुझे लगता है। इस प्रकार सीता रामसे कहने लगीं।

त्वं हि बाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रा सह वनं गतः ।
दृष्ट्वा वनचरान् सर्वान् कच्चित्कुर्याः शरव्ययम् ॥ १४ ॥
(अरण्य. ९)

' हे राम ! आप धनुषबाण लेकर अपने भाईके साथ इस वनमें घूमते रहेंगे और वहाँ वनमें संचार करनेवाले श्वापदों अथवा राक्षसोंपर बाण चला कर उनका वध करेंगे ' यह मुझे उचित प्रतीत नहीं होता ।

शस्त्र धारण ही पाप है

सीताके मतसे शस्त्र धारण ही पाप है। यह सिद्ध करनेके लिये उन्होंने रामसे यह बात कही—

" पहले एक वनमें एक पवित्र ऋषि तप किया करते थे। उनके तपमें विघ्न करनेके लिये इन्द्रने उनके आश्रममें एक शस्त्र लाकर रखा। उस शस्त्रकी रक्षा करनेके लिये वे मुनि बहुत सावधानी रखते थे। क्यों कि वे शस्त्र इन्द्रने धरोहर रूपसे रखे थे आगे चलकर वे मुनि उन शस्त्रोंको अपने पास रखने लगे। इस कारण आगे जाकर उनमें क्रूर बुद्धि उत्पन्न होने लगी। यह वृत्ति आगे जाकर बढ गई और अन्तमें इसी कारण वे नर्कमें चले गए—

नित्यं शस्त्रं परिवहन् क्रमेण स तपोधनः ।
चकार रौद्रीं स्वां बुद्धिं त्यक्त्वा तपसि निश्चयम् ॥ २१ ॥
ततः स रौद्रीमभिरतः प्रमत्तोऽधर्मकर्षितः ।
तस्य शस्त्रस्य संवासाज्जगाम नरकं मुनिः ॥ २२ ॥
(अरण्य. ९)

इसी प्रकारसे आश्रममें शस्त्र रखनेके कारण मुनिका पतन हुआ ऐसा सीताने रामसे कहा। वे आगे कहती हैं—

बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान् दण्डकाश्रितान्।
अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते ॥ २५ ॥
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम्।
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥ २६ ॥
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च।
व्याविद्धमिदं अस्माभिः देशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥ २७ ॥
कदर्यकलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात्।
पुनर्गत्वात्वयोध्यायां क्षत्रधर्मं चरिष्यसि ॥ २८ ॥
अक्षया तु भवेत् प्रीतिः श्वश्रूश्वशुरयोर्मम।
यदि राज्यं हि संन्यस्य भवेस्त्वं निरतो मुनिः ॥ २९ ॥
(अरण्य. ९)

जबतक राक्षस हमसे द्वेष नहीं करते, तबतक उनका वध नहीं करना चाहिये, यही ठीक है। अपराधके बिना राक्षसोंका वध करना, किसीको भी अच्छा नहीं लगेगा। वनमें रहनेवाले तपस्वियोंकी रक्षा करना क्षत्रियोंका कर्तव्य है। शस्त्र किधर, वन किधर, क्षात्रधर्म किधर और तप किधर! आप इन परस्पर विरुद्ध धर्मोंका आचरण करनेकी बात छोड दें और जंगलके मुनि धर्मके अनुसार बर्तें। शस्त्र धारण करनेवाले पुरुषकी बुद्धि कृपणके समान मलिन हो जाती है। आपका क्षात्रधर्म है, यह बात सत्य है। किन्तु जब अयोध्यामें आप जायँगे तब भलें ही क्षात्रधर्मानुसार शस्त्र धारण करें। आप राज्यका परित्याग करके वनमें आये हैं। अतः मुनिवत् आचरण करें, यही उचित है। ऐसा करनेपर आपकी सास और श्वसुरको भी आनन्द होगा।'

धर्मसे सब सुख प्राप्त होता है। इसलिये आप तपोवनमें मुनि धर्मके अनुसार रहें यही उचित है। इस प्रकारसे सीता रामसे कहने लगीं कि

शस्त्र धारण करके आप पाप मत कीजिये । हिंसा अधर्म एवं अहिंसा धर्म है । शस्त्र धारण करनेसे हिंसाकी ओर प्रवृत्ति बढती है; अतः शस्त्र ही धारण न करना चाहिये ! राक्षस हुए तो क्या हुआ, उनपर आक्रमण करना उचित नहीं जो जबतक हमपर आक्रमण नहीं करते तबतक हमें उनका वध नहीं करना चाहिये । इस प्रकार सीता उनसे कहने लगीं तथा वनमें रहकर शस्त्र धारण न करें, इस प्रकार रामसे आग्रह करने लगीं ।

इसके उत्तरमें रामने कहा—

हे सीते ! तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है । किन्तु उसका एक दूसरा पहलू भी है । उस पर भी विचार करो—

क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ।
ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः ॥ ४ ॥
भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः ॥ ५ ॥
सर्वैरेव समागम्य वागियं समुदाहृता ।
आर्दितः स्म भृशं राम भवान्नस्तत्र रक्षतु ॥ १० ॥
(अरण्य. १०)

' हे सीते ! क्षत्रिय लोग शस्त्र केवल इसालिये धारण करते हैं कि जिससे राष्ट्रमें आर्तस्वर न निकले । आज इस दण्डकारण्यमें ये सम्पूर्ण ऋषि आर्त बने हुए हैं । नरमांसभक्षी राक्षसोंकी ओरसे वे मारे जा रहे हैं । इस प्रकार इन त्रस्त हुए मुनियों द्वारा ही हमारी रक्षा कर; ऐसा मुझे कहा गया है ' इस प्रकार मुनियोंके कहनेपर उनकी रक्षा करनेकी मैने प्रतिज्ञा की है और उसे तोडना मेरे लिये सम्भव नहीं है । (अरण्य १०-१५-२०)

किसीके कहनेकी अपेक्षा किये बिना मुनिजनोंका संरक्षण करना तो हमारा कर्तव्य है ही । इस कर्तव्यको हम पूर्ण न करें ऐसा किस प्रकार सम्भव है तथा प्रतिज्ञा करनेके पश्चात् उसे पूर्ण न करना तो और भी अनुचित है । ऐसा कहकर तथा सीताके भाषणकी प्रशंसा करके रामने इस प्रश्नको इस प्रकारसे सुलझा दिया ।

मुनियोंने निवदन किया तथा मैंने उनकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की, इसलिये शस्त्र लेकर वनमें विचरण करूँगा और जो राक्षस मिलेंगे—चाहे उन्होंने दिन कोई अपकृत्य किया हो या न हो उनका विनाश करूँगा। क्योंकि, उन्होंने उसदिन किसी मुनीका अपराध किया हो या न किया हो; पहले कभी नहीं किया होगा और आगे नहीं करेंगे, ऐसी बात नहीं राक्षस अत्याचारी हैं। अतः यदि मुनियोंको यहाँ सुख पूर्वक रहना तो अत्याचारी और अनत्याचारी ऐसे सम्पूर्ण राक्षसोंका विनाश करना ही माना जायगा। दण्डकारण्यको ही राक्षस विरहित कर देना चाहिये। यह सोचना अनावश्यक है कि यह राक्षस अत्याचार करता है और अत्याचार नहीं करता। उसके वधके लिये इतना ही कारण पर्याप्त है वह राक्षस है। क्योंकि राक्षस मुनियोंको खाते हैं। अतः सारे ही वध्य हैं। उनमें यह भेद कठिन है कि अमुक अच्छा है और अमुक अच्छा नहीं है।

शूर्पणखा और रावण परिचय

शूर्पणखा नामक राक्षस स्त्री पञ्चवटीमें आई तथा रामका सुन्दर एवं भव्य रूप देखकर वह उनपर मोहित होगई। (अरण्य० १६-१-८)

रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण ये तीन भाई तथा शूर्पणखा बहन, प्रकार हम चार भाई बहन हैं, इस प्रकारका परिचय उसने अपना परिचय देते हुए रामसे कहा तथा यह भी कहा कि तुम मेरे साथ विवाह करलो और यथेच्छ सुखोपभोग करो (अरण्य० १७।१०-२८) इसपर उन्होंने जो समयोचित उत्तर दिया वह इस प्रकार है—

कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम।
त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता ॥ २ ॥
अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः।
श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ ३ ॥
एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम। (अरण्य० १८)

'हे शूर्पणखे ! मैं विवाहित हूँ और यह मेरी पत्नी मेरे साथ है। तेरे जैसी (उच्च) स्त्रियोंको सौतका दुःख होना ठीक नहीं है। अतः यह मेरा भाई कुँवारा है। इसके साथ तू विवाह कर ले।'

यहाँ रामने यह असत्य कहा है कि लक्ष्मण अविवाहित हैं। उपहासमें इस प्रकारका कथन सम्भवतः क्षम्य हो। अस्तु। रामका उपर्युक्त भाषण सुनकर वह लक्ष्मणके पास गई और उससे मीठी मीठी बातें करने लगी। तब लक्ष्मणने उससे कहा--

'रामकी भार्या बनकर उनकी पटरानी बनो, मैं उनका दास हूँ। मेरी भार्या होकर तुम दासी बनोगी। तेरे जैसी सुन्दर स्त्रीको दासी बनना उचित नहीं है। अतः तुम्हें उन्हीकी पत्नी बनना उचित है।' लक्ष्मणकी यह बात सुनकर वह फिर रामके पास गई और उनसे पुनः मीठी मीठी बातें करने लगी। सीताको उसने बीचका कांटा समझा; अतः उसे खाजाने के लिये वह लपकी। तब रामने लक्ष्मणसे कहा—

राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि ॥ २० ॥
(अरण्य० १८)

'इस राक्षसीको विरूप कर डाल, यह आदेश सुनते ही लक्ष्मणने तलवारसे उसके नाक-कान काट लिये।'

रामने यह जानते हुए भी कि यह रावणकी बहन है; उसके नाक-कान काटे। एक बार सीधे आव्हान पहुँच जाना चाहिये। ऐसी इच्छा रामकी होगी। शूर्पणखा विरूप होकर खर नामक अपने सेनापतिके पास पहुँच गई और बीती हुई सब घटना कहकर उसके सामने खूब आक्रोश करने लगी। तब रामका उसके साथ युद्ध हुआ और पञ्चवटीमें रहनेवाले १४००० राक्षसोंका रामने विनाश किया।

इस अवसर पर अनेक ऋषिमुनियोंने एकत्रित होकर रामका खूब सत्कार किया और वे बोले—

ऋषयश्च महात्मानो लोके ब्रह्मर्षिसत्तमाः ।
समेत्य प्रोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः ॥ २० ॥
स्वस्ति गोब्राह्मणानां च लोकानां चेति संस्थिताः ।
जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान् रजनीचरान् ॥ २१ ॥
(अरण्य० २४)

'ऋषि' महात्मा सब इकट्ठे हुए और वे परस्पर कहने लगे कि, गौ-ब्राह्मणका कल्याण होनेके लिये इस युद्धमें रामकी विजय हो और रावणके सम्पूर्ण राक्षसोंका विनाश हो।'

अकेले राम इतने १४००० राक्षसोंको किस प्रकार मारेंगे? ऐसी शंका ऋषियोंको थी—

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति ॥ २३ ॥
(अरण्य० २४)

'इस ओर अकेले राम हैं और विरुद्ध पक्षमें १४००० राक्षस हैं। यह युद्ध इनके लिये किस प्रकार अनुकूल होगा?' इस प्रकारकी सार्थ शंका ऋषि-मुनियोंको थी!

युद्धका परिणाम न जाने क्या होता है? इसका विचार कर रामने सीता और लक्ष्मणको वहाँकी एक गुफामें भेज दिया था और वे अकेले ही युद्धमें डटे थे—

रामका कवच टूट गया, धनुष भी निरुपयोगी हो गया था। तब उन्होंने अगस्त्य ऋषिका दिया हुआ प्रचण्ड धनुष निकाला और प्रचण्ड युद्ध करने लगे।

बहुतसा युद्ध होजानेपर खर नामक राक्षसको रामने एक ही वाक्य कहा। यह वाक्य राजनीतिका द्योतक होनेके कारण यहाँ ध्यान देने जैसा है—

॥.

पापी बहुत दिनोंतक नहीं रहते

उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पाप-कर्मकृत्।
त्रयाणामपि लोकानां ईश्वरोऽपि न तिष्ठति॥ ३॥

(अरण्य० १९)

'लोगोंको कष्ट देनेवाला, क्रूरकर्म करनेवाला पापी चाहे तीनों लोकोंका सम्राट् हो, तब भी वह सदाके लिये टिक नहीं सकता' यह विश्वास रामके अन्तःकरणमें जागृत था। मैं जनपदके हितके लिये लड रहा हूँ और ये राक्षस जनपदको कष्ट देते हैं। इसलिये अपने ही दुष्ट कर्मोंसे ये मृतवत् हैं। इसी प्रकार राम आगे कहते हैं—

न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः।
ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः॥ ७॥
अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः।
घोरं पर्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम्॥ ८॥

(अरण्य० २९)

'पापी एवं क्रूर लोगोंको उनका कर्मफल मिले बिना नहीं रहता। पापकर्मोंका फल कर्ताको मिलकर ही रहता है।' अतएव खरदूषण आदि राक्षस अपने दुष्ट कर्मोंके फल अब अवश्य प्राप्त करेंगे। अर्थात् अब उनका निःसंशय विनाश होगा।

इन्द्रने आकर अगस्त्य ऋषिके पास जो बाण रखे थे, उसीसे अन्तमें खर राक्षसका वध हुआ—

स तद्दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता।
संदधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति॥ २५॥

(अरण्य० ३०)

'इन्द्रके दिये हुए बाणसे खर राक्षसका वध हुआ? ऋषिमुनि और देवोंको आनन्द हुआ। सबने मिलकर रामपर पुष्पवृष्टि की। इस प्रकार १४००० राक्षसोंका वध हुआ। ऋषि-मुनियोंने राम की प्रशंसा की—

अहो बत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः ।
अहो वीर्यं अहो दार्ढ्यं विष्णोरिव हि दृश्यते ॥ ३२ ॥
ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः ।
सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन् ॥ ३४ ॥
एतदर्थं महातेजा महेन्द्रः पाकशासनः ।
शरभंगाश्रमं पुण्यं आजगाम पुरंदरः ॥ ३५ ॥
आनीतस्त्वं इमं देशं उपायेन महार्षिभिः ।
एषां वधार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम् ॥ ३६ ॥
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ।
स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः ॥ ३७ ॥

(अरण्य० ३०)

रामका यह कितना महान् सामर्थ्य है । देखिये इन्होंने कितना महत्व का कार्य किया है । ये कितने शक्तिशाली हैं । इनका यह पराक्रम विष्णु जैसा है । रामके पास अगस्त्य मुनिके साथ अनेक ऋषि इकट्ठे हुए और उनकी प्रशंसा करने लगे । उन्होंने रामसे कहा – हे राम ! इसी कामके लिये इन्द्र शरभङ्ग ऋषिके आश्रममें आया था और आपको भी युक्तिप्रयुक्तिसे ऋषिगण यहाँ जो ले आये वह इसीलिये । आज वह कार्य सफल हुआ है । अब ऋषि इस दण्डकारण्यमें अपने धर्म प्रचारके कार्य को करेंगे । '

यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि इन्द्र शरभङ्ग ऋषिके आश्रममें आया और ऋषि युक्तिप्रयुक्तिसे रामको भी यहाँ लाये, सो यह सब खर-दूषणका कांटा दूर करनेके लिये ही हुआ । रामको पंचवटी तक लाया जावे, यह ऋषियोंका रावण साम्राज्यका विनाश करनेके लिये रचित षड्यन्त्रका एक भाग था । रामको पता न था कि मैं कहाँ और किसलिये जा रहा हूँ । किन्तु ऋषियों को ज्ञात था कि हम रामको कहाँ और किस लिये ले जारहे हैं । इन्द्रका भाग भी इस कार्यमें था ही ।

'महर्षिभिः त्वं इमं देशं आनीतः ? (अरण्य० ३०।३६) इस वार्तालापमें षड्यन्त्रका स्पष्ट उल्लेख है। ऋषियोंका आन्दोलन इसी एक दिशासे चल रहा था। एक ऋषि अगले ऋषिके आश्रमका मार्ग दिखावें और राम वहाँ पहुँचें। ये घटनायें इस प्रकार यन्त्रवत् चल रहीं थीं और वैसा प्रत्यक्ष रूपसे हो भी रहा था।

रावणने अपने साम्राज्यके रक्षणके लिये इस १४००० राक्षसोंकी सेनाको नासिककी पंचवटीके पास नियुक्त किया था। नासिकके ऊपर उत्तरकी ओर आर्योंके राज्य थे। लगभग ३०० आर्य राजा इस समय उत्तर भारतमें छोटे छोटे राज्य कर रहे थे। वे आपसमें झगडते थे। इसलिये इस आर्य राजाओंमें संगठित शक्ति नगण्यसी थीं। अतएव ये सब रावणसे भयभीत थे और इनके द्वारा रावणके साम्राज्यके नष्ट होनेकी सम्भावना भी न थी। इसीलिये तो ऋषियोंने राम लक्ष्मणको दशरथके घरके स्त्रैण वातावरणसे बाहर निकाला था।

नासिकके दक्षिणकी ओर दण्डकारण्यमें वानरराज्य था। उनका प्रमुख वाली था। यह अत्यन्त शूर और बलाढ्य था और रावणकी खबर लेने इतनी शक्ति उसमें थी। किन्तु उसकी रावणके साथ परस्पर अनाक्रमणकी संधि हो चुकी थी। यह मित्रतापूर्ण सन्धि टूटने जैसी न थी। यही कारण था कि रावणको वानर राज्यकी ओरसे कोई भय न था।

केवल उत्तर दिशाके आर्योंके संघटित होनेका भय था, किन्तु उनके पारस्परिक वैरके कारण यह डर भी रावणको न था। रावणको एक ही विशेष डर था कि कहीं वानर और आर्य एक न हो जावें। यदि कहीं ऐसा हो जावेगा तो मेरा कहीं ठिकाना नहीं लगेगा, यह बात रावण जानता था। इसीलिये रावणने अपनी चौदह हजार राक्षसोंकी भयकंर सेना पञ्चवटीमें सज्य रखी थी। आर्य राजा और वानर राजाका सम्बन्ध इस सेनाके कारण टूट चुका था। वह संम्बन्ध निर्माण करना इष्ट था। रामके द्वारा यह करवा लेना था। यह कार्य आज हो सका; इसीलिये ऋषि मुनि और देव, इन सबको बहुत आनन्द हुआ।

आर्य राजाओं और वानर राजाओंमें आज एकताकी भी सम्भावना उत्पन्न हुई। यह महत्वकी बात है। अब रावण साम्राज्य नष्ट होगा, ऐसा ऋषियों को मालूम होने लगा, इतना अधिक इसका महत्व था।

'महर्षयः स्वधर्मं दण्डकेषु प्रचरिष्यन्ति' (अरण्य. ३०।३७)

ऋषि-मुनि अब दण्डकारण्यमें आर्यधर्मका खूब प्रचार करेंगे। यह वाक्य बहुत महत्वका है। जिस प्रकार यूरोपके मिशनरी धर्मप्रचार पहले जाते हैं और बादमें साम्राज्यवादी वहाँपर जाते हैं। ठीक यही स्थिति यहाँ भी है। दण्डकारण्यमें पहले ऋषियोंने आकर अपना अड्डा जमा लिया था और बादमें रामने आकर उनका मार्ग निष्कण्टक कर दिया। यह इसी प्रकार सदा होना चाहिये। धर्मप्रचार करनेवाले प्रचारक चाहिये। देश देशान्तरोंमें उन्हें अपने प्रचारके लिये संस्थायें खोलनी चाहिये और विश्वको आर्य धर्मकी दीक्षा देकर संस्कार सम्पन्न करना चाहिये।

रावणको खबर लगी

पञ्चवटीके समीप अन्तिम संरक्षणकी योजना करके वहाँ १४००० राक्षसोंकी जो सेना रखी थी, उसका रामने विनाश कर दिया तथा मैंने आर्य राजा एवं वानर राजाओंकी मित्रता कभी भी न हो सके, ऐसी जो युक्तिपूर्ण योजना की थी, वह भी रामने नष्ट कर दी। यह वृत्तान्त अकम्पन नामक राक्षसके द्वारा रावणको विदित हुआ। तब सम्राट् रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और बोला – 'सारे देवता मुझसे डरते हैं। वे भी मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेका साहस नहीं करते। ऐसी स्थितिमें यह यहाँ कौन आया है कि जो मुझ जैसेका विरोध करनेका साहस कर रहा है।'

यह भाषण सुनकर अकम्पन राक्षसने रावणसे कहा कि 'महाराज यह राम राजा दशरथका पुत्र है' तथा उसके पास विलक्षण प्रकारके शस्त्रास्त्र भी हैं। उसका कोई सहायक न होते हुए भी, उसने अकेलेने पञ्चवटी के पासकी आपकी छावनीका विनाश कर दिया—

न हि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया ।
रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव ॥ २७ ॥

(अरण्य० ३१)

'युद्धमें तुम्हारे द्वारा रामको जीत सकना सम्भव नहीं है, जिस प्रकार पापियोंको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता' इसी प्रकार तू रामको नहीं जीत सकता। किन्तु एक उपाय है और वह यह है कि 'रामके सीता नामकी स्त्री है, उसका तू अपहरण कर ले; क्योंकि सीताके बिना राम जीवित नहीं रह सकता' (अरण्य० ३१।३१)

यह बात सुननेके बाद रावणने सीताका हरण करनेका निश्चय किया और वह आकाशगामी रथपर बैठकर मारीचके आश्रमके पास आया। वहाँ आकर मारीचको उसने अपना निश्चय बताया। रावणका 'सीताका हरण करना चाहिये' यह निश्चय सुनकर मारीचने रावणसे कहा—

आख्याता केन वा सीता मित्ररूपेण शत्रुणा ।
त्वया राक्षसशार्दूल को न नन्दति नन्दितः ॥ ४२ ॥
सीतां इहानयस्वेति को ब्रवीति ब्रवीहि मे ।
रक्षोलोकस्य सर्वस्य कः श्रृगं छेत्तुमिच्छति ॥ ४३ ॥

(अरण्य० ३१)

'हे रावण! मित्रता दिखाकर तेरे साथ कौन शत्रुता कर रहा है? 'सीताको भगाकर ले आ' ऐसा जिसने तुम्हें कहा है, पहले उसका नाम तो बताओ। सम्पूर्ण राक्षसोंका नाश करानेकी किसकी भला इच्छा है?'

ऐसा कहकर मारीचने रावणको समझा बुझाकर वापस लौटा दिया।

(अरण्य० ३१।५०)

इतनेमें विरूप बनी हुई शूर्पणखा लंकामें आकर आक्रोश करती हुई रावणके राजमहलमें प्रविष्ट हुई। रावणके सात मंजिले राजमहलमें आकर, वहाँ उसने आक्रोश करके मानो प्रलय ही उपस्थित कर दिया। वहाँ रावण भी अभी अभी मारीचके पाससे लौटा ही था। उसकी क्रोधाग्नि शान्त

हुई थी, इतनेमें इस शूर्पणखाने उसमें तेलका काम किया। यहाँपर वणका वर्णन देखने योग्य है।

विष्णुचक्रनिपातैश्च शतशो देवसंयुगे।
अन्यैः शस्त्रैः प्रहारैश्च महायुद्धेषु ताडितम्॥ १०॥
अच्छेत्तारं च धर्माणां परदाराभिमर्शनम्॥ ११॥
(अरण्य० ३२)

'सुदर्शनचक्रके तथा अन्यान्य शस्त्रास्त्रोंके घाव रावणके शरीरपर दिखाई थे। यह रावण धर्मका उच्छेद करनेवाला तथा परस्त्री पर बलात्कार नेवाला था।'

किन्तु तदपि 'एक भी स्त्री रावणके अन्तःपुरमें ऐसी न थी कि जो उपर अनुरक्त न हो' ऐसा वर्णन आगे आनेवाला है। कदाचित् ऐसा होगा पहले यह परस्त्रियोंको हरण करके लाता होगा और बादमें वे स्त्रियाँ निरुपाय होजाती होंगी तो फिर उसके वशमें हो जाती होंगी। बिचारी भी क्या सकती थीं ?

शूर्पणखाका प्रोत्साहन

एकबार सीताहरण-कार्यसे निवृत्त हुए रावणको शूर्पणखाने सीताके न्दर्यका वर्णन करके उसके हरण करनेको पुनः प्रोत्साहित किया। अतः वण पुनः सीताका हरण करनेक लिये मारीचके पास आया और मारीचसे से अपनी सहायता करनेको कहा। तब मारीचने रामके बचपनके पराक्रमका र्णन किया जब कि वे विश्वामित्रके यज्ञका संरक्षण कर रहे थे। उसने से खुदके बच निकलनेकी घटनाका वर्णन किया और रामके विलक्षण क्रमका भी वर्णन किया; किन्तु उसका कुछ भी उपयोग नहीं हुआ।

रावणने उससे सीताहरणके कार्यमें सहयोग देनेके लिये पुनः आग्रह या, तब मारीचने थोडासा राजनीतिका उपदेश भी रावणको दिया। अरण्य० ४१) किन्तु उससे कोई लाभ न हुआ। अन्तमें मारीचको मार

डालनेका डर रावणने बताया। इसलिये वह रावणकी आज्ञानुसार उसे मदद करनेके लिये तैयार हुआ।

रावण और मारीच ये दोनों ही रथमें सवार होकर पंचवटी स्थित रामके आश्रममें गये। मारीचने स्वर्णके मृगका बाना धारण किया। सीताने वह मृग देखा और उसे पकड लानेके लिये रामसे कहा। राम उस मृगके पीछे गये, तब वह मृग रामको बहुत दूरतक ले गया। यत्न करनेपर भी वह मृग रामके हाथ नहीं आया।

चलते समय ही रामने जान लिया था कि यह कपट है। इसलिये सीताकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको पीछे रखकर वे अकेले ही उस मृगके पीछे गये थे। अन्तमें निश्चित योजनानुसार 'हे लक्ष्मण दौडो' की आवाज रामकी आवाजसे मिलती जुलती मारीचने की। वह रामका शब्द है, ऐसा सीताको लगा। अतः सीता लक्ष्मणसे कहने लगी कि तुम रामकी सहायता के लिये जाओ लक्ष्मणने इसके लिये मना किया; क्योंकि वह भी जान गया कि यह कपट है। लक्ष्मणको न जाते हुए देखकर सीताको क्रोध आया और उस क्रोधमें जो कहना नहीं चाहिये वह भी वह कह बैठी।

यह बोलना सुनकर लक्ष्मणको बहुत बुरा लगा, और वे रामकी तरफ चल पडे। इधर सीताको अकेली देख रावण रामके आश्रममें आया। सीताने रावणको संन्यासी समझकर उचित आतिथ्य किया। अन्तमें रावण और सीताकी बहुतसी बोलचाल हुई किन्तु रावणने सीताको उठा लिया और उसे वह लेजाने लगा। स्त्री अबला है, यह बात यहाँ सिद्ध हुई।

मार्गमें जटायु और रावणका युद्ध हुआ। रावणने जटायुका वध कर दिया और सीताको ले जाने लगा। यह समाचार जब ब्रह्माको विदित हुआ तब ब्रह्माने कहा—

हमारा कार्य सिद्ध हुआ

दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां देवो दिव्येन चक्षुषा॥ १०॥

'कृतं कार्यं' इति श्रीमान् व्याजहार पितामहः ॥
प्रहृष्टा व्यथिताश्चासन् सर्वे ते परमर्षयः ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः ॥
रावणस्य विनाशं च प्राप्तं बुध्वा यदृच्छया ॥ १२ ॥

(अरण्य० ५२)

रावण सीताको भगा ले गया है, यह जानकर ब्रह्माने कहा कि 'बस! अब अपना काम बन गया' इसी प्रकार ऋषिमुनि भी यह समझकर प्रसन्न हुए कि 'बस अब काम बन गया'। किन्तु यह सोचकर उन्हें भी दुःख हुआ कि इससे सीताको बहुत कष्ट होंगे। रावणका साम्राज्य अब नहीं बचता, इसका निश्चय होजानेके कारण सबके लिये प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। किन्तु राम और सीता जैसी महान् व्यक्तियोंको कष्ट हुए बिना राष्ट्रीय कार्य नहीं होते; अतः इस प्रकारके कष्ट अपरिहार्य भी होते हैं।

ब्रह्मा और ऋषिमुनि प्रसन्न हुए, क्योंकि वे जो चाहते थे वह हो गया यह स्पष्ट है। इन सबको रावणसाम्राज्यका विनाश करना था। कोई बहुत बड़ा अन्याय हुए बिना रावणका नाश होना सम्भव न था। सीताका अपहरण करनेके कारण रावणका नाश अवश्यम्भावी था। हम जिस राष्ट्र कार्यके लिये अबतक देशव्यापी योजना बना रहे थे, वह अब सफल होगी, ऐसा उन्हें प्रतीत हुआ; अतएव सीताके कष्टको ध्यानमें रखते हुए भी ये सब आनन्दित हुए। क्रांतिकी सफलताका आनन्द कुछ इसी प्रकारका रहता है। रावणके विरुद्ध ऋषि, मुनि एवं देवोंका षड्यन्त्र था, यह बात इन सबके इतने आनन्दित होनेसे सिद्ध होती है।

रावणकी राजनीतिका पाठ

शूर्पणखाने जब रावणकी निन्दा की उस समय उसने राजनीतिके तत्त्वोंका कुछ उल्लेख किया है। वह और सबके लिये भी बोधप्रद है। अतः उसका हम यहाँ पर उल्लेख करते हैं—

प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरंकुशः ।
समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे ॥ २ ॥
सक्तं ग्राम्येषु भोगेषु कामवृत्तं महीपतिम् ।
लुब्धं न बहु मन्यन्ते स्मशानाग्निमिव प्रजाः ॥ ३ ॥
स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः ।
स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ॥ ४ ॥
अयुक्तचारं दुर्दर्शं अस्वाधीनं नराधिपम् ।
वर्जयन्ति नरा दूरान्नदीपङ्कमिव द्विपाः ॥ ५ ॥
(अरण्य० ३३)

१ – जो राजा कामोपभोगमें रमण करता है, स्वैर आचरण करता है और किसीका भी नहीं सुनता, उसपर भयङ्कर आपत्ति आजाय तब भी उसे पता नहीं चलता । (२)

२ – जो राजा ग्राम्य विषयभोगोंमें प्रवृत्त, स्वैर आचरण करनेवाला और लोभी होता है, प्रजा उसका सन्मान नहीं करती । (३)

३ -- जो राजा यथा समय अपने कर्तव्योंका पालन नहीं करता, उसका विनाश राज्यके साथ उसी कार्योंसे होजाता है । (४)

४ -- अयोग्य गुप्तचरोंको अयोग्य स्थानपर रखनेवाला, प्रजाजनोंसे न मिलनेवाला, असंयम वृत्तिका जो राजा हुआ करता है, लोग ऐसे राजाकी उपेक्षा किया करते हैं । (५)

ये न रक्षन्ति विषयं अस्वाधीनं नराधिपाः ।
ते न वृद्ध्या प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ॥ ६ ॥
आत्मवद्भिर्विगृह्य त्वं देवगन्धर्वदानवैः ।
अयुक्तचारः चपलः कथं राजा भविष्यसि ॥ ७ ॥
त्वं तु बालस्वभावश्च बुद्धिहीनश्च राक्षस ।
ज्ञातव्यं तं न जानीषे कथं राजा भविष्यसि ॥ ८ ॥

येषां चाराश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर।
अस्वाधीनां नरेन्द्राणां प्राकृतैः तैः जनैः समाः ॥ ९ ॥
यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान् सर्वानर्थान्नराधिपाः।
चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ॥ १० ॥
अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्वृतम्।
स्वजनं च यतः स्थानं निहतं नावबुध्यसे ॥ ११ ॥

(अरण्य० ३३)

५-- जो राजा दूसरोंके अधिकारमें गये हुए अपने देशको पुनः अपने अधिकारमें करके रक्षा नहीं करते वे ऐश्वर्यसे समृद्ध नहीं होते। (६)

६-देव-गन्धर्व-दानवोंने व्यवस्थितरूपसे तुम्हारे विरुद्ध षडयन्त्र प्रारम्भ कर रखा है किन्तु तेरे दूत योग्य नहीं हैं और तू स्वयं चञ्चल है, इसलिये तेरा राज्य किस प्रकारसे भला टिक सकेगा? (७)

७-तुझमें बचपन है और तू बुद्धिहीन है, जो जानना चाहिये वह तू जानता नहीं है। फिर तू राजा किस प्रकार रह सकेगा? (८)

८-दूत, कोष एवं न्याय जिसके आधीन नहीं हैं, इस प्रकारके अयोग्य राजा सामान्य मनुष्यों जैसे ही हैं। (९)

९-राजा लोग दूतोंकी आँखोंसे दूर दूर तक देख सकते हैं। अतः उन्हें दीर्घदृष्टि कहा जाता है। (१०)

१०--तेरे दूत अच्छे नहीं हैं और मन्त्री भी अनुभवी नहीं हैं। इसीलिये तेरी सेना और छावनी नष्ट हो गई और उसकी सूचना भी तुझे नहीं मिली। (११)

त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च राक्षस।
विषये स्वे समुत्पन्नं यद्भयं नावबुध्यसे ॥ १४ ॥
तीक्ष्णं अल्पप्रदातारं प्रमत्तं गर्वितं शठम्।
व्यसने सर्वभूतानि नाभिधावन्ति पार्थिवम् ॥ १५ ॥

अतिमानिनं अग्राह्यं आत्मसंभावितं नरम् ।
क्रोधिनं व्यसने हान्ति स्वजनोऽपि नराधिपम् ॥ १६ ॥
नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च ।
क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदिह ॥ १७ ॥
शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यं लोष्ठैरपि च पांसुभिः ।
न तु स्थानात्परिभ्रष्टैः कार्यं स्याद्वसुधाधिपैः ॥ १८ ॥

११--तू अत्यन्त असावधान रहनेवाला, विवेकहीन, लोभी और विषयोंके आधीन हुआ है। इसलिये अपने राज्यमें ही उत्पन्न हुए भयका तुझे पता नहीं है। (१४)

१२--क्रूर, कृपण, उन्मत्त, अभिमानी और धूर्त राजाकी संकटसमयमें भी सहायता कोई नहीं करता। (१५)

१३--अत्यन्त अभिमानी, समीप पहुँचनेमें अशक्य; स्वयंको बहुत बडा माननेवाला और क्रोधी राजाको संकट समयमें अपने ही आदमी मार डालते हैं (१६)

१४ – जो अपने कर्तव्योंका पालन नहीं करता, भय उपस्थित होनेपर भी उसकी ओर ध्यान नहीं देता, वह राजा राज्यसे भ्रष्ट हो जाता है और उसका महत्व कुछ भी नहीं रह जाता। (१७)

१७ – सूखी लकडियाँ, मिट्टीके ढेले, और धूलका भी उपयोग हो सकता है, किन्तु राज्यभ्रष्ट हुए राजाओंका कुछ भी नहीं होता। (१८)

अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः ।
कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ॥ २० ॥

नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा ।
व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः ॥ २१ ॥

(अरण्य० ३३)

१८—जो अपने कार्यमें दोष नहीं करता, जो राज्यकी सब बातें जानता इन्द्रियोंको अपने आधीन रखता है, कृतज्ञ और धर्मशील रहता है, राजा बहुत दिनोंतक राज्यपर टिका रहता है। (२०)

१९—आंखोंसे सोया रहनेपर भी राजनीतिमें जो जागृत रहता है। सका क्रोध और कृपा जनताके लिये परिचित है, उस राजाका सत्कार ग किया करते हैं। (२१)

ये राजनीति सम्बन्धि सूचनायें सभीके लिये ध्यान देने योग्य हैं। राक्ष-की स्त्रियाँ राजनीतिमें इतनी अधिक प्रवीण हुआ करती थीं। उपर्युक्त री बातें शूर्पणखाने रावणको सुनाई है।' यह सब सुनकर रावणकी मझमें आ गया कि मेरे साम्राज्यको घुन लग गया है तथा क्रान्तिका मय अब समीप आ पहुँचा है।

"अपने देशका हिस्सा यदि दूसरोंके हाथमें चला गया हो, तो वह हिस्सा फिरसे अपने देशमें जोड लेनेका यत्न करना चाहिये। जो ऐसा हीं करते उनकी सम्पत्ति नहीं बढती। यह ६ वे श्लोकका वाक्य बहुत महत्वपूर्ण है।

स्त्री स्वभाव

स्त्रियोंके स्वभावके सम्बन्धमें अगस्त्य मुनिके भाषणमें इस प्रकारका लेख मिलता है—

दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छती ॥ ४ ॥
एषा हि प्रकृतिः स्त्रीणां आसृष्टे रघुनन्दन।
समस्थमनुरज्यन्ते विषमस्थं त्यजन्ति च ॥ ५ ॥
शतन्हदानां लोलत्वं शस्त्राणां तीक्ष्णता तथा।
गरुडानिलयोः शैघ्र्यमनुगच्छन्ति योषितः ॥ ६ ॥
इयं तु भवतो भार्या दोषैरेतैर्विवर्जिता।
श्लाघ्या च व्यपदेश्या च यथा देवेष्वरुन्धती ॥ ७ ॥

(अरण्य० १३)

अगस्त्यने कहा है–'हे राम! तुम्हारे साथ वनमें अनेक अति दुष्कर कर्म इस सीताने किया है। प्रायः स्त्रियोंका यह स्वभाव होता है कि यदि उनकी इच्छाके अनुकूल चला जाय तो वे पतिसे प्रेम करती हैं और यदि पति विपन्नावस्थामें फंस जाय तो वे उसका परित्याग कर देती हैं। विद्युल्लताका चञ्चलत्व, शस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड एवं वायुकी शीघ्रगति ये सम्पूर्ण दोष स्त्रियोंमें एकत्रित रहते हैं। किन्तु तुम्हारी इस सीतामें ये दोष नहीं हैं। अतः यह अरुन्धतीके समान प्रशंसापात्र है।

सीताकी तलमलाहट

सीता रामका पराक्रम जानती थी। अभी अभी १४००० राक्षसोंका संहार रामके द्वारा होता हुआ उसने देखा था। इतना होनेपर यःकश्चित् स्वर्णमृगका क्या महत्व एवं उसके कारण रामको कितना कष्ट होगा इसकी कल्पना सीताको होनी चाहिये थी। लक्ष्मणके कहने पर तो कमसे कम समझ लेना था; किन्तु वैसा नहीं हुआ। इस घटनासे स्त्री स्वभावका दुर्गुण स्पष्टतः परिलक्षित होता है। सीताने लक्ष्मणके लिये कितने कटु शब्दोंका प्रयोग किया यह देखिये–

'हे लक्ष्मण! तू मित्र रूपसे रहकर इस समय अपने भाईके प्रति शत्रुका सा व्यवहार कर रहा है। इस समय राम शत्रुओंके जालमें फंस गया है। यदि ऐसे समयमें तुम उनकी सहायताके लिये न जाओगे तो इससे यह सिद्ध होता है कि मेरी प्राप्तिके तुम इच्छुक हो, इसीलिये रामका नाश तुम्हें अभीष्ट है। रामसे तुम्हें प्रेम नहीं है और इसीलिये यह जानकर कि वे संकटमें हैं तुम यहाँ निश्चिन्तसे बैठे हो। (अरण्य० ४५।५-९)

यह सुनकर लक्ष्मणने कहा – 'हे देवि सीते! देव, दानव या और कोई भी हो ऐसा एक भी नहीं है कि जो युद्धमें रामकी बराबरी कर सके। युद्धभूमिमें राम अवध्य हैं। साथ ही रामका यह आदेश है कि तुम्हें अकेली छोडकर मैं कहीं भी न जाऊँ'। इसलिये मैं यहाँसे हिल नहीं सकता।

(अरण्य० ४५।१०-१६)

यह भाषण सुनकर सीताको बहुत ही क्रोध आया और उसने लक्ष्मणको इस प्रकारके मर्म भेदी वचन कहे-- 'मेरी रक्षाका बहाना करके मेरा लोभ करनेवाले दुष्ट ! नराधम ! कुलदूषक ! तू यहाँ निश्चिन्त खड़ा है, इसीसे मुझे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि तेरी इच्छा है कि राम संकटमें पड़ जाय। संभव है तू भरतका गुप्तचर हो या भरतके आदेशानुसार ही इस प्रकार कर रहा हो। तेरा या उस भरतका मेरे विषयमें जो दुष्ट मनोरथ है वह कभी पूर्ण नहीं हो सकता। मैं तेरे सामने प्राण त्याग कर दूंगी; किन्तु मैं एक क्षणभर भी रामके बिना यहाँ नहीं रह सकती।

(अरण्य० ४५।२१-२७)

यह भाषण सुनकर लक्ष्मणको बहुत बुरा लगा। उसने हाथ जोडकर सीतासे कहा -- 'तप्त बाणके समान तुम्हारा यह भाषण मुझे सहन नहीं हो रहा है। इसका परिणाम अच्छा होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। चिन्ह अच्छे नहीं दिखाई देते। तुम्हारे कहनेके अनुसार मैं जहाँ राम गये हैं वहाँ जाता हूँ। किन्तु हमारे लौट आनेपर तुम यहाँ दिखाई दोगी, ऐसा मुझे नहीं लगता। वनदेवता तुम्हारी रक्षा करें।'

यह कहकर लक्ष्मण वहाँसे चल दिया। तब सीताको अकेली देखकर रावण उस पर्णकुटीरमें आ पहुँचा।

रामका व्रत

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्।
एतद्ब्राह्मण रामस्य व्रतं ध्रुतमनुत्तमम् ॥ १७॥
विचराम द्विजश्रेष्ठ वनं गम्भीरमोजसा ॥ २१॥

(अरण्य० ४७)

'दान देना किन्तु दान कभी न लेना, सत्य बोलना, कभी असत्य भाषण न करना, ऐसा रामका व्रत है। इस प्रकारसे हम अपने सामर्थ्यसे इस वनमें विहार कर रहे हैं।'

इस अरण्यमें अपने स्वयंके सामर्थ्यसे हम घूमते हैं, हम किसीसे नहीं डरते और अपनी रक्षाके लिये किसीसे याचना भी नहीं करते । ये आत्मविश्वासके शब्द सीताके हैं ।

रामके कैकेयी विषयक उद्गार

जिस समय उस क्रूर, जंगली विराधने सीताको उठाया और अपनी गोदमें रखा और सीताको अपनी पत्नी बनानेकी तथा रामलक्ष्मणका रक्त पीनेकी गप्पें वह मारने लगा । उस समय सीता थर थर कांपने लगी । इधर राम शोकमग्न होकर कहने लगे–

पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसंभवाम् ।
मम भार्यां शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम् ॥ १७ ॥
यदभिप्रेतमस्मासु प्रियं वरवृतं च यत् ।
कैकेय्यास्तु सुसंवृत्तं क्षिप्रमद्यैव लक्ष्मण ॥ १८ ॥
या तु न तुष्यति राज्येन पुत्रार्थे दीर्घदर्शिनी ॥ १९ ॥
ययाहं सर्वभूतानां प्रियः प्रस्थापितो वनम् ।
अद्येदानीं सकामा सा या माता मध्यमा मम ॥ २० ॥
परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमास्ति मे ।
पितुर्विनाशात् सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा ॥ २१ ॥

(अरण्य० २)

" हे लक्ष्मण, जनकपुत्री बचपनसे सुखमें पली होकर भी आज वह विराध राक्षसकी गोदमें बैठी हुई है; तू देख ! वनमें हमें जो जो दुःख होनेकी इच्छा कैकेयीको थी तथा वरों द्वारा राजासे जो जो करा लेनेकी उसकी इच्छा थी, वह-वह आज घटित हो रहा है । वह बहुत दूर दर्शिनी है और इसलिये उसने अपने पुत्रके लिये राज्य मांग लिया है तथा मुझे वनवासके लिये भिजवा दिया है । वास्तवमें (अहं सर्व भूतानां प्रियः) मैं सम्पूर्ण प्रजाका प्रियपात्र हूँ; अतएव राज्य मुझे ही मिलना चाहिये था।

आज इस विराधने सीताको गोदमें बिठाया है, इसलिये कैकेयी की इच्छा पूर्ण होचुकी है। आज वह कृतकृत्य हो चुकी है। मेरे पिताकी मृत्यु होजानेकी अथवा मैं राज्यच्युत होगया, इसकी अपेक्षा सीताको पर पुरुषका स्पर्श हुआ देखकर मुझे अत्यधिक दुःख हो रहा है।"

रामके इस भाषणको देखा जाय तो उससे यह स्पष्ट विदित होता है कि उनके मनमें भयङ्कर खलबली मची हुई थी। कैकेयीके विषयमें रामके अन्तःकरणसे स्वाभाविक रूपसे चुभनेवाले भाव इस प्रकारसे बाहर निकल पड़े हैं। राम जैसेको इस प्रकारसे अनुभव होना स्वाभाविक था। क्योंकि (अहं सर्वं भूताना प्रियः) सम्पूर्ण प्रजाने रामको यौवराज्यपदके लिये चुना था। इसलिये राज्यपर उन्हीका अधिकार था। किन्तु कैकेयीके दुराग्रहके कारण वनवासका कष्ट रामको भोगना पडा; अतः उन्हें ऐसा लगना बिल्कुल स्वाभाविक था।

(परस्पर्श २।२१) स्त्री को पर पुरुषका स्पर्श न हो, यह कटाक्ष यहाँ स्पष्ट दिखाई दे रहा है। आज परपुरुषके स्पर्शके लिये अनेक योजनायें सामने लायी जा रही हैं। विवाह-पूर्वका सम्बन्ध, विवाह सम्बन्ध जोडनेके समय अनेक प्रेयस्करोंका सम्बन्ध, स्त्रियोंका नौकरी करना आदि अनेक कार्य इस समय ऐसे हो रहे हैं कि वहाँ पर परस्पर्शका सम्बन्ध आता ही रहता है। रामके समयकी और आजकी मानसिक स्थितिका यह भयङ्कर अन्तर है।

सीतानिमित्तं सौमित्रे मृते मयि गते त्वयि।
काच्चित्सकामा कैकेयी सुखिता सा भविष्यति ॥ ७ ॥
(अरण्य० ५९)

'सीताके वियोगसे मेरी मृत्यु होजाय और तू अकेला अयोध्या लौट जाय तो उस कैकेयी को अपने मनोरथ सिद्धि की प्रसन्नता होगी न?'

) सीताका हरण रावण द्वारा हो जानेपर जब राम पञ्चवटीके आश्रममें लौट आते हैं, उस समयके उनके ये वचन हैं।

❀

बांयी आंख फडकना

'वाम लोचनं प्रास्फुरत्' (अरण्य० ६१।१) रामकी बायी आँख फडकने लगी। तब रामको ऐसा प्रतीत हुआ कि कुछ तो भी अनिष्ट होनेवाला है।'

आंखोंके फडकनेसे शुभाशुभकी कल्पना करनेकी रीति रामायणकाल तक प्राचीन है।

लक्ष्मणका भाषण

रामका भाषण सुनकर लक्ष्मण कहते हैं—

शरेण निहितस्याद्य मया क्रुद्धेन रक्षसः ।
विराधस्य गतासोर्हि मही पास्यति शोणितम् ॥ २४ ॥
राज्यकामे मम क्रोधो भरते यो बभूव ह ।
तं विराधे विमोक्ष्यामि वज्री वज्रमिवाचले ॥ २५ ॥
(अरण्य० २)

'हे राम! आज मैं इस विराधको बाण मारता हूँ और इसका वध करता हूँ। आज उसका रक्त भी पृथ्वी प्राशन करेगी। राज्य विषयक भरतके सम्बन्धमें जो क्रोध मेरे मनमें उत्पन्न हुआ है। वह मैं इस राक्षस पर निकालता हूँ और इस राक्षसका मैं वध करता हूँ।'

लक्ष्मणके मनमें भरत और कैकेयीके विषयमें तो बहुत ही रोष था। जब रामने वनवासके लिये प्रस्थान किया उस समय यही लक्ष्मण कह रहा था कि 'पिता दशरथको, कैकयीको या जो कोई भी विघ्न उपस्थित करेगा उसे मारकर कैद करके रामको ही राजगद्दी पर बैठाऊँगा' किन्तु रामने उसे उपदेशकी चार बातें कहकर आपसके बढनेवाले इस वैर को अधिक बढनेसे रोक दिया तथा आपस की यादवी वहीं शान्त कर दी।

लक्ष्मण भरतकी प्रशंसा करते हैं।

भरतके विषयमें लक्ष्मणकी बातचीत में भी प्रसंशापरक उद्गार निकले हैं—

आस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःख समन्वितः।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे॥ २७॥
त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्बहून्।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले॥ २८॥
सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम्॥ २९॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते॥ ३०॥
संत्यज्य विविधान् सौख्यान् आर्यं सर्वात्मना श्रितः॥ ३२॥
जितः स्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना॥ ३३॥
न पित्र्यं अनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति।
ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः॥ ३४॥
भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥ ३५॥

(अरण्य० १६)

इन थंडके दिनोंमें प्रातःकाल उठकर भरत सरयूनदीके किनारे स्नानार्थ जाता किस प्रकार जाता होगा और किस प्रकार वहाँ स्नान करता होगा? सबके सम्पूर्ण सुखोंका परित्याग करके, राम! तुम्हारे समान वह भी तप कर रहा है। वह जमीन पर सोया करता है। प्रातः उठकर नदीपर शीतल जलसे स्नान करता है, वह बचपनसे अनन्त सुखमें पला होनेपर भी इन कष्टोंको न जाने किस प्रकारसे सहन कर पाता होगा। सचमुच अपने इस आचरणसे भरतने स्वर्ग प्राप्त कर लिया है, इसमें सन्देह नहीं, बच्चे पिताका अनुसरण नहीं करते, तो माताके समान वे होते हैं, यह कहावत

भरतने आज असत्य सिद्ध कर दी है। जिसका पति दशरथ हो, और जिसका पुत्र भरतके समान साधु हो वह माता कैकेयी क्योंकर क्रूर होनी चाहियें ?"

लक्ष्मण द्वारा की गई कैकेयीकी निन्दा रामको सहन न होसकी और वे तुरन्त लक्ष्मणसे बोले—

परिवादं जनन्यास्तं असहन् राघवोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥
न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥ ३७ ॥
(अरण्य० १६)

'लक्ष्मण ! अपनी कैकयी माताकी इस प्रकार निन्दा न करो। भरत ही की चर्चा करो।' इस समय रामने इस प्रकार कहा, यह सत्य है। किन्तु यह बात नहीं है कि रामने कैकयी की निन्दा की ही नहीं।

तपस्वी

अरण्य काण्डके ६ छटे सर्गमें अनेक प्रकारके तपस्वियोंकी सूची दी हुई हैं। वह देखनेयोग्य है। रामायणकालमें तपके विषयमें किस प्रकारकी भावनायें थी, यह बात इस उल्लेखसे स्पष्ट हो जाती है—

वैखानसा वालखिल्या संप्रक्षाला मरीचिपाः ।
अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः ॥ २ ॥
दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे ।
गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः ॥ ३ ॥
मुनयः सलिलाहारा वायुभक्षास्तथापरे ।
आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थण्डिलशायिनः ॥ ४ ॥
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससः ।
सजपाश्च तपोनिष्ठास्तथा पञ्चतपोऽन्विताः ॥ ५ ॥
(अरण्य० ६)

१ वैखानसाः -- नख बढानेवाले,
२ वालखिल्याः —केश बढानेवाले,
३ संप्रक्षालाः -- विशेष स्नान करनेवाले,
४ मरीचिपाः — सूर्य किरणोंमें बैठनेवाले,
५ अश्मकुट्टाः -- कुटा हुआ अन्न खानेवाले,
६ पत्राहाराः -- पत्ते चबाकर रहनेवाले,
७ दन्तोलूखलिनः-- केवल दांतोंसे चबाकर खानेवाले, कूटनेका सामान पासमें न रखनेवाले तपस्वी,
८ उन्मज्जकाः -- पानीमें बैठकर तप करनेवाले,
९ गात्रशय्याः-- भूमिपर बिना कुछ बिछाये सोनेवाले,
१० अशय्याः -- बिछानेपर न सोनेवाले,
११ अवकाशिकाः --एक पैरपर खडे रहकर तप करनेवाले,
१२ सलिलाहाराः — केवल पानी पीकर रहनेवाले,
१३ वायुभक्षाः --वायु भक्षण करनेवाले,
१४ आकाशनिलयाः -- आकाश के नीचे रहनेवाले, घरमें न रहनेवाले,
१५ स्थण्डिलशायिनः -- ओटलेपर सोनेवाले,
१६ ऊर्ध्ववासिनः -- ऊँचे स्थानपर रहनेवाले,
१७ दान्ताः — इन्द्रियों को जीतनेवाले,
१८ आर्द्रपटवाससः -- गीले वस्त्र पहननेवाले,
१९ सजपाः -- सदा जप करते रहनेवाले,
२० तपोनिष्ठाः — तप करनेमें निमग्न रहनेवाले,
२१ पञ्चतपोऽन्विताः — पञ्चाग्नि साधन करनेवाले, गर्मियोंमें ऊपर सूर्य और चारों ओर आग जलाकर बैठनेवाले,

इस प्रकारके अनेक तपस्वियोंका वर्णन यहाँ किया गया है। इस प्रकारका आचरण करनेसे किसी विशेष प्रकारकी उन्नतिकी सम्भावना है, ऐसा

माननेके लिये कोई विशेष आधार नहीं है । इनमेंसे कुछ आचरण निसर्गोपचारके लिये साधक हैं ।

'आर्द्रपटवाससः' गीले कपडे पहननेसे शौच शुद्धि होकर बद्धकोष्टता दूर हो जाती है।

'संप्रक्षालाः' उत्तम स्नान करनेसे चर्मरोग दूर हो सकते हैं।

'दन्तोलूखलिनः' दातोंसे चबाकर खानेवाले, कच्चा अन्न चबाकर खानेवाले, पचन क्रियाके सुधारके लिये इसका उपयोग करते हैं ॥

'मरीचिपाः' सूर्य किरणोंका स्नान करना आरोग्यवर्धक है । आजकल इस प्रकारसे सूर्य स्नान करनेवाले यूरोपमें बहुतसे हैं, तथा भिन्न भिन्न रंगों की किरणों से अनेक रोगों को दूर करनेवाले भी आज कल बहुतसे हैं।

'सलिलाहाराः' पेट खराब होवे तो केवल जल पीकर उपवास करना हितकारक होता है।

'वायुभक्षाः' केवल वायु भक्षण करके, अर्थात् पानी भी न पीकर रहनेवाले, यह प्रकार लाभदायक है । प्राणायाम करनेवाले भी इसीके अन्तर्गत आते हैं ।

'आकाश निलयाः' घरमें न रहकर घरके बाहर खुले स्थानमें रहना आरोग्यके लिये लाभदायक है । क्षयरोगी इस प्रकारसे रहकर अच्छे हो जाते हैं ।

'पञ्चाग्निसाधनाः' पञ्चाग्नि साधन करके शरीरमेंसे पसीना निकालकर शरीर शुद्ध करनेवाले ।

ये सब प्रकार शरीर शुद्धिके लिये आज कल निसर्ग-चिकित्सालयोंके उपचार गृहोंमें काममें लाये जाते हैं। इनका अच्छा उपयोग होता है ।

इस दृष्टिसे इन्हे देखना उचित है । इसके अतिरिक्त अन्य उपाय भी बहुतसे हैं। स्वयंको उल्टा टांग लेना, धुँवेमें बैठकर धुँवा खाना, कांटोंपर

ना आदि और भी बहुतसे प्रकार हैं। आज कल ये बहुत कम हो गये । तथापि कहीं कहीं ये आज भी दिखाई पडते हैं। इस प्रकार आचरण नेसे पुण्य संचय होता है, ऐसा मानना बिल्कुल व्यर्थ है। आरोग्य--के लिये पहलेके योगियोंने निसर्गोपचारके लिये इनका उपयोग या था तथा इसी दृष्टिसे ये उपयोगी भी हैं।

ऋषियोंके आश्रम, निसर्गोपचारके ही आश्रम थे और वहाँ इस प्रकारके योग किये जाते थे, इसी दृष्टिकोणसे पाठक यहाँ देखें।

तपके लिये विघ्न

माण्डकर्णी मुनि तप कर रहे थे। वायु भक्षण करके इन्होंने अनेक वर्षोंतक किया। इस कारण देवता डर गये और अपनेमें किसी न किसीका न यह ले लेगा; इसलिये इसके तपमें विघ्न डालनेके लिये देवताओंने व अप्सरायें उस मुनिके पास भेजीं। इन अप्सराओंने इस मुनिको हित कर लिया और वे इस ऋषिकी पत्नियाँ बनकर रहने लगीं। इस लावके अन्दर घर बनाकर यह मुनि इन अप्सराओंके साथ यहाँ पर रहता । उनके गायन वादन की ध्वनि इस तालावके समीप बार बार आया ती है। (अरण्य० ११।१०-२३)

देवता लोग अप्सरायें भेजकर तपस्वियोंको तपोभ्रष्ट करें, यह देवता-के लिये उचित नहीं है। सम्भव है ये तपस्वी की परीक्षा लेनेके लिये पा करते हों; किन्तु ऐसा उल्लेख बार बार आता है। इससे यह सिद्ध ता है कि देव पक्षके लोग यह नहीं चाहते थे कि हमारे हाथकी त्रिभुवन शासक शक्ति किसी और के हाथमें चली जावे। इसलिये वे इन तप--स्वियोंको फंसाकर तपोमार्गसे भ्रष्ट कर देते थे, तथा किसीको आगे ढने नहीं देते थे। इतना होनेपर भी जो जप आदि किया करते थे नका बडप्पन स्वीकारनेके लिये वे सर्वदा तैयार रहते थे।

कश्यप प्रजापति

जटायु नामक एक गृध्र पक्षी रामको रास्तेमें मिला। रामने कल्पना की

कि यह राक्षस होना चाहिये । किन्तु बादमें जांच पडताल करनेपर विदित हुआ कि यह जटायु नामका गृद्ध पक्षी है तथा वह पिता-दशरथ-का मित्र है, यह भी बादमें विदित हुआ । इस जटायु पक्षीने अपनी जो वंशावली बताई वह इस प्रकारसे है—

१-कर्दम, २-विकृत, ३-शेष; ४-संश्रय, ५-वीर्यवान्; बहुपुत्र, ६--स्थाणु ७-- मरीचि, ८-- अत्रि, ९-- महाबलाढ्य क्रतु, १०-- पुलस्त्य, ११-- अंगिरा; १२-- प्रचेताः, १३-- पुलह, १४-- दक्ष, १५- विवस्वान्, १६-- अरिष्टनेमि, १७-- कश्यप-- यह अन्तिम प्रजापति था (अरण्य० १४।७--८)

दक्ष प्रजाप्रतिके ६० कन्यायें हुई । उनमेंसे १-अदिति, २-दिति ३-दनु, ४- कालका, ५- ताम्रा, ६- क्रोधवशा, ७-- मनुव, ८- अनला, इन आठ कन्याओंका ग्रहण कश्यपने किया । कश्यपने अपनी इन आठ स्त्रियोंसे कहा कि ' तुम्हे मुझसे त्रैलोक्याधिपति पुत्र होंगे ' यह सुनकर अदिति, दिति, दनु एवं कालका नामक चार स्त्रियोंको यह इच्छा हुई कि हमें ऐसे पुत्र होवें, किन्तु अन्य स्त्रियाँ उदासीन रहीं । (अरण्य १४।११-१४)

अदितिसे १२ आदित्य, ८ वसु व ११ रुद्र तथा २ अश्विनी कुमार इस प्रकार ३१ देव उत्पन्न हुए । (अरण्य० १४।१५)

दितिने दैत्योंको जन्म दिया । इन दैत्योंके पास ही यह पृथ्वी पहले थी। (अरण्य० १४।१६)

दनुको अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ । कालकाको नरक एवं कालक नामके दो पुत्र हुए । ताम्राको क्रौंच, भासी, श्येन, धृतराष्ट्री और शुकी नामकी पांच कन्यायें हुई । इन कन्याओंसे ये पक्षी उत्पन्न हुए ।

कश्यपसे मनु नामक स्त्रीमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र उत्पन्न हुए । विनता शुकीकी नात थी और कद्रु तथा सुरया ये आपसमें बहनें थीं। पृथ्वीको धारण करनेवाले सहस्र पुत्र सर्प कद्रूके हुए । विनताको गरुड एवं अरुण नामके दो पुत्र हुए । इस अरुणसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ और संपाति मेरा बडा भाई है । मेरा नाम जटायु है तथा मैं श्येनीका पुत्र हूँ ।

(अरण्य० १४।२८-३४)

हे राम ! तुम्हारी इच्छा होगी तो मैं तुम्हारा संरक्षण करूँगा। इस प्रकारका सम्बन्ध जटायु द्वारा प्रकट कर देनेपर रामको बडी प्रसन्नता हुई और उन्होंने पंचवटीके निवास कालमें सीताकी रक्षा करनेके लिये उसे अपने आश्रमके समीप रख लिया। (अरण्य० १४। ३५--३६)

यहाँपर कश्यपको मनुष्य, देव, पशु, पक्षी और सर्प हुए, ऐसा वर्णन है। जटायु पक्षी है। उसके पंख हैं। सर्प कश्यपकी ही सन्तति है, इसे कैसे मानें यह एक समस्या है।

आज हम यह जानते हैं कि इस धरती पर 'कास्पीअन समुद्र' नामका एक समुद्र है। 'कास्पीअन' का अर्थ 'कश्यपीय' अथवा कश्यपका ऐसा सम्भव है। सम्भव है कि कश्यप ऋषिका आश्रम इस समुद्रके समीप था। असीरियन प्रदेश इस भागके पास है। वहांके लोग 'असुर' हुए। दान्यूब नदी भी वहीं पासमें है, वहाँके निवासी दानव हुए। बॅक्ट्रियन प्रदेश भी इसी ओर है। वहाँके बक राक्षस माने गये। सम्भव राक्षस (राक्षस) जिन्हे कहा जाता है वे 'रसस्' रशियन होंगे। यहीं पर 'उरतु' प्रान्त है; वहींके 'वृत्र' होंगे।

'भूत' लोगोंका प्रदेश आजका भूतान (भूत–स्थान) प्रतीत होता है। उपरि निर्दिष्ट कश्यप समुद्रसे सम्पूर्ण पृथ्वीपर ये सब गये और बसे, इसलिये 'काश्यपी पृथिवी' कहावत प्रसिद्ध होगी तथा यह कश्यपकी सन्तति है, इस प्रकारकी कथायें आगे चलकर प्रसिद्ध हुई होंगी। अन्यथा कश्यप ऋषिके पशु, पक्षी और सर्प निर्माण हुए यह कैसे माना जावे !

'देव, आर्य, सर्प, पिशाच, भूत आदि मानव जातियाँ है, यह माना जा सकता है। देव जाति त्रिविष्टप (तिब्बत) प्रदेशमें, आर्य आर्यावर्तमें, सर्प समुद्र सपाटी पर पिशाच पश्चिम पंजाब एवं पठानिस्थानमें भूत जाति भूटानमें बसी हुई है, ऐसा प्रतीत होता है। इसी प्रकार दैत्य, दानव, असुर, राक्षस आदि मानव जातियाँ उपरिलिखित प्रदेशोंमें थी ऐसा कहा जा सकता है।

हमारी रामायण-कथाका सम्बन्ध आर्य (राम आदि), वानर (सुग्रीव हनुमान आदि), राक्षस (रावण, विभीषण आदि), भालू (जांबवान आदि) इन सबसे विशेषतः है । जटायु भी एक पक्षी है, ऐसा वर्णन आता है । इनमें राम और रावण तो मनुष्यवंशके ही थे, इसमें कोई सन्देह ही नहीं है । हनुमान वेद शास्त्रका पण्डित था, अतः यह बंदरके वंशका न होकर मानववंशी ही था, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । क्योंकि बन्दर संस्कृत भाषा सीखेंगे एवं वेद पाठ करेंगे, इसकी सम्भावना भी नहीं हो सकती । ये सब इन नामोंके मानव वंश थे, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।

इस दृष्टिसे यहाँके प्रजापति एवं उसकी सन्ततिका सम्बन्ध समझना चाहिये । जिस प्रकारसे यहाँ वर्णन किया गया है, वह सब वैसा ही है, इसकी सम्भावना नहीं ।

इसका अनुसन्धान करनेके लिये सम्पूर्ण पृथ्वीके भूगोलके प्राचीन नामोंका अभ्यास करना चाहिये तथा उस आधारपर कहाँका कौनसा वंश है, इसका पता लगाना चाहिये ।

जटायुका रावणको उपदेश

लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः ।
तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥ ५ ॥
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि ।
कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान् परामृशेत् ॥ ६ ॥
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल ।
निवर्तय गतिं नीचां परदाराभिमर्शनात् ॥ ७ ॥
यथात्मनस्तथाऽन्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥ ८ ॥

(अरण्य० ५०)

" राम एक राजा है तथा वह सब लोगोंका हित किया करता है । यह उसीकी धर्मपत्नी है, जिसे तू ले जा रहा है । धर्मानुकूल आचरण

नेवाला राजा परस्त्रीको भला किस प्रकार स्पर्श कर सकता है ? राजकुल स्त्रियोंकी रक्षा करना सबका कर्तव्य है। जिस प्रकार अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये उसी प्रकार दूसरेकी भी रक्षा करनी चाहिये। अतः स्त्रीहरणके इस दुष्टकर्मसे तू पराङ्मुख हो जा।

इस प्रकार जटायुने रावणसे कहा, किन्तु वह सुननेके लिये तैयार ही था। अन्तमें जटायु और रावणका युद्ध हुआ तथा बिचारा जटायु मारा गया। रावण सीताको लङ्कामें ले गया तथा उसने वहाँ उसे रख दिया।

रावण काला था

रराज राजपुत्री तु विद्युत्सौदामिनी यथा।
उद्धूतेन च वस्त्रेण तस्याः पीतेन रावणः ॥ २९ ॥
तरुप्रवालरक्ता सा नीलांगं राक्षसेश्वरम्।
प्रशोभयत वैदेही गजं कक्ष्येव काञ्चनी ॥ ३० ॥

(अरण्य० ५२)

सीता हरणके समय सीताने पीली साडी पहन रक्खी थी। रावणका रंग काला-नीला था, इस कारण स्वर्णकी झूल हाथीपर डालनेपर जैसा दृश्य दिखाई देता है वैसा वह दिखाई देने लगा।

सीताका उत्तरीय

रावण सीताको हरकर जब ले जा रहा था तब सीताने पर्वत पर बैठे हुए कुछ वानर देखे तथा ये रामको कह देंगे, ऐसा समझकर अपने उत्तरीयमें अपने जेवर बांधकर उनकी ओर फेंक दिये।

उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ २ ॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी ॥
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ॥
संभ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान् ॥ ३ ॥

(अरण्य० ५४)

'सीताने अपने उत्तरीयमें अपने कुछ जेवर बांधे और वे उन वानरोंकी ओर फेंके। उसका अभिप्राय यह था कि रामको ये मेरा सन्देश पहुँचा दें। गडबडमें होनेके कारण रावणको इसका पता नहीं लगा।'

सीता और उस समयकी स्त्रियाँ पंजाबी स्त्रियोंके समान उत्तरीय धारण किया करती थीं। महाराष्ट्रीय स्त्रियोंके समान सीताका पोषाख न था, यह इस बातसे सिद्ध होता है।

इस प्रकार रावणने सीताको लंकामें लाकर रख दिया।

परस्त्री हरण आर्ष पद्धति है!

सीताको समझानेके लिये रावण सीतासे कहता है—

उवाच वचनं वीरो रावणो रजनीचरः ॥ ३३ ॥
अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते
आर्षोऽयं दिवि निष्पन्दौ यस्त्वामभिभविष्यति ॥ ३४ ॥

(अरण्य० ५५)

'रावण सीतासे बोला- हे सीते! अब लज्जा करनेका कोई कारण नहीं है। तेरा और मेरा यह जो सम्बन्ध होनेवाला है वह ऋषिप्रोक्त विधि ही है। क्योंकि बलात्कारसे स्त्रीको ले आना राक्षस विवाह प्रसिद्ध ही है। अत एव इससे धर्म लोप नहीं होता।'

रावण परस्त्रीका अपहरण करके भी उससे धर्मकी बातें कर रहा है। राक्षस वंशके लोग स्त्रियोंको भगाकर लाते थे तथा उनसे विवाह करते थे, यह सत्य है। किन्तु यह पद्धति आर्ष, ऋषिप्रणीत अथवा वैदिक है, यह रावणका कथन असत्य है। क्योंकि इस प्रकारका आदेश किसी भी वेद मन्त्रमें नहीं है।

चाण्डाल स्पर्श

न शक्या यज्ञमध्यस्था वेदिः स्रुग्भाण्डमण्डिता।
द्विजातिमंत्रसंपूता चण्डालेनावमर्दितुम्॥ १८ ॥

(अरण्य० ५६)

'यज्ञ मण्डपमें अवस्थित, स्रुचा एवं यज्ञ पात्रोंसे सुशोभित एवं द्विजोच्चारित मन्त्रोंसे पवित्र हुई वेदी जिस प्रकार चाण्डाल स्पर्शके योग्य नहीं है' उसी प्रकारसे सीताको रावणका स्पर्श होना सम्भव नहीं है। सीताकी अनुमतिसे उसके शरीरका स्पर्श न होगा, ऐसा अभिप्राय यहाँ लक्षित होता है।

चाण्डालस्पर्श अपवित्र माना जाता था, ऐसा इस बातसे सिद्ध होता है।

स्त्रीका सिन्दूर

रामायण कालीन स्त्रियाँ सिन्दूर लगाती थीं। यह बात इस उल्लेखसे विदित होती है—

विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक् प्रकाशते ॥ ८ ॥

(अरण्य० १६)

"उत्तर दिशा इस समय जाडेके कडाकेके कारण ठीक प्रकाशित नहीं हो रही है; जिस प्रकार तिलक-विहीन स्त्री शोभित नहीं होती"

'विहीन तिलका स्त्री' ये शब्द सिद्ध करते हैं कि, इस रामायण कालमें स्त्रियाँ तिलक लगाती थीं और वह प्रायःलाल सिन्दूर ही होगा।

विजयेच्छु राजा

शरद् ऋतुके समाप्त होनेपर तथा हेमन्तके प्रारम्भ होनेके पश्चात् विजयेच्छु राजा शत्रुपर आक्रमण करनेके लिये निकला करते थे। इस विषयका हेमन्त-वर्णन लक्ष्मण कर रहे हैं—

नीहारपरुषो लोकः पृथिवी शस्यशालिनी।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥ ५ ॥
नवाग्रयणपूजाभिः अभ्यर्च्य पितृदेवताः।
कृताग्रयणकाः काले सन्तो विगतकल्मषाः ॥ ६ ॥
विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः।

(अरण्य० १६)

'ओस पड जानेके कारण ताजगी सी आगई है। भूमिपर धान्यकी अभिवृद्धि दिखाई पडती है। थंडा पानी पीने की इच्छा नहीं होती। अग्निके पास बैठनेकी इच्छासी होती है। नवान्न भक्षण करनेके लिये आग्रयण करके पितरों एवं देवताओंकी पूजा लोग कर रहे हैं। विजयेच्छु राजा शत्रुपर आक्रमण करनेके लिये संचार कर रहे हैं।' इस प्रकारसे यह बडा सुन्दर समय उपस्थित हुआ है।

नवान्नेष्टि, आग्रयणेष्टि, पितृपूजा, देवपूजा आदि का यहां पर उल्लेख है।

विजयेच्छु राजा लोग शत्रुपर आक्रमण करनेके लिये इसी समय बाहर निकलते थे।

मिथ्या साक्षी

'मिथ्या साक्षी देनेवाला परलोकमें अपना ही मांस खाता है।' अतिथि का सत्कार न करनेवालेकी भी ऐसी ही स्थिति होती है।

दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत् ॥ २९ ॥

(अरण्य० १२)

अक्षय्य लोकोंका दान

शरभंग ऋषि रामसे कहते हैं—

अक्षया नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः।
ब्राह्माश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान् ॥ ३१ ॥

(अरण्य० ५)

'हे राम! मैने ब्रह्मलोक एवं स्वर्गलोक तपस्या द्वारा संपादित किया है, उन्हे तुम ग्रहण करो' उत्तरमें रामने कहा—

अहमेवाहरिष्यामि सर्वाँल्लोकान् महामुने ॥ ३३ ॥

(अरण्य० ५)

'हे मुने! मैं स्वयं तप करके इन लोकोंको प्राप्त कर लूंगा' दूसरेसे प्राप्त किये गये लोक आसानीसे ग्रहण कर लेना मैं उचित नहीं समझता। बड़े आदमी किसीके मुंहताज बनना पसन्द नहीं करते।

ऐसाही प्रत्युत्तर सुतीक्ष्ण मुनिको भी रामने दिया है। (देखिये अरण्य० ७।१४) दूसरेसे कष्टपूर्वक अर्जित किये गये भोगको तेजस्वी लोग स्वीकार नहीं करते।

सर्पका मन्त्र

सर्पपर मन्त्रोंका प्रयोग किया जाता था, ऐसा उल्लेख यहाँपर मिलता है। खर राक्षसद्वारा रामपर फेंकी गई गदा रामके बाणोंसे टूटकर नीचे गिर गई, इसका वर्णन देखिये—

सा विशीर्णा शरैर्भिन्ना पपात धरणीतले।
गदा मन्त्रौषधिबलैर्व्यालीव विनिपातिता ॥ २८ ॥
(अरण्य. २९)

'मन्त्र औषधिके बलसे सर्पिणी जिस प्रकार गिर जाती है उस प्रकार रामके बाणोंसे वह गदा नीचे गिर पडी।' यहाँपर यह स्पष्ट उल्लेख है कि मन्त्रोंका परिणाम सर्पोंपर होता था।

प्रातः संध्या

अथ तेऽग्निं सुरांश्चैव वैदेही रामलक्ष्मणौ।
काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने ॥ ३ ॥
उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः। (अरण्य० ८)

'राम, सीता और लक्ष्मणने अग्निकी, देवताओंकी पूजा इस आश्रममें विधिपूर्वक करके सूर्यको उदित हुआ देख निष्पाप हुए वे उस मुनिके समीप जाकर उनसे बोले।'

यहाँ प्रातः सन्ध्या एवं देपूजाका उल्लेख है। 'अग्निं अभ्यर्च्य, सुरान् विधिवत् अभ्यर्च्य' ये शब्द महत्त्व पूर्ण हैं। प्रतिदिन हवन क्रिया जाता

था, ऐसा इससे सिद्ध होता है। किन्तु 'सुरान् अभ्यर्च्य' अर्थात् हवन या और कुछ भिन्न प्रकारकी पूजाविधि, यह समझमें नहीं आता। इतना अवश्य है कि स्नान, सन्ध्या व पूजा आदि सम्पूर्ण कृत्य सूर्योदयसे पूर्व ही किये जाते थे। यहाँ स्पष्टरूपसे यद्यपि सन्ध्याका उल्लेख नहीं है, किन्तु वह अन्यत्र है।

इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम्।
चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सह सीतया॥ ४१॥
तर्पयित्वाथ सलिलैस्ते पितॄन् देवतानपि।
स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च तथानघाः॥ ४२॥
(अरण्य० १६)

आश्रमं तदुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत्॥ २॥
(अरण्य. १७)

'राम लक्ष्मणके साथ इस प्रकारसे वार्तालाप करते करते गोदावरी नदीके पास पहुँच गये। वहाँ उन्होंने स्नान किया। जलसे पितरों एवं देवताओंका तर्पण किया और उदित हुए सूर्य एवं अन्य देवताओंका स्तवन भी किया। अपने आश्रममें वे तीनों लौट आये। आनेपर प्रातः कालीन सन्ध्या की एवं अपनी उस पर्णकुटीरमें रहने लगे।

यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि स्नान, संध्या, पितृतर्पण, देवतर्पण सूर्य-स्तवन तथा देवतास्तवन ये सब उनका प्रातः कालका कार्यक्रम था।

राम दोनों समय सन्ध्या किया करते थे, ऐसा निम्न लिखित वचनोंसे प्रतीत होता है—

सायं सन्ध्या

तमेवमुक्त्वोपरमं रामः संध्यामुपागमत्॥ २२॥

अन्वास्य पश्चिमां संध्यां तत्र वासमकल्पयत् ॥
सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥ २३ ॥

(अरण्य० ७)

'उन मुनियोंसे ऐसा कहकर राम सायं सन्ध्याके लिये चले गये। वहाँ पश्चिमकी ओर मुँह करके सन्ध्या करनेके पश्चात् सीता और लक्ष्मणके साथ वह राम उस सुतीक्ष्ण मुनिके रम्य आश्रममें ठहर गया।

सायंकालका भोजन

सुतीक्ष्णमुनिके आश्रममें सायंकालका भोजन-प्रबन्ध रामके लिये किया गया। रात्री होजानेपर यह भोजन हुआ, ऐसा उल्लेख है—

ततः शुभं तापसयोग्यमन्नं स्वयं सुतीक्ष्णं पुरुषर्षभाभ्याम् ॥
ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा संध्यानिवृत्तौ रजनीं समीक्ष्य ॥ २४॥

(अरण्य० ७)

'पश्चात् सुतीक्ष्णमुनिने स्वयं तपस्वियोंके योग्य अन्न, सन्ध्या समाप्तिके बाद रात्रिका आगमन हुआ देखकर, सत्कार पूर्वक रामको दिया।

यहाँ (रजनीं समीक्ष्य) 'रात हुई देखकर' इन शब्दोंसे यह सिद्ध होता है कि सूर्यास्तके घण्टे दो घण्टे बाद 'रातका' भोजन ऋषिमुनि किया करते थे। आजकल भी हम लोगोंका यही भोजन-समय है।

रामकी आयु

सीता रावणसे कहती है कि—

उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने।
भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥

अथ त्रयोदशे वर्षे राजा मन्त्रयत प्रभुः।
अभिषेचायितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः ॥ ५ ॥

(अरण्य० ४७)

'विवाह होनेके पश्चात् मैं १२ वर्षोंतक इक्ष्वाकु राजाके घर दशरथके राजमहलमें– रही। वहाँ सम्पूर्ण राजभोगोंका उपभोग मैंने किया। तेरहवाँ वर्ष आरम्भ हो जानेपर दशरथने अपने मन्त्रियोंके साथ परामर्श करके रामके यौवराज्याभिषेकका निश्चय किया।' इस समय रामकी आयु—

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते ॥ १० ॥
(अरण्य० ४७)

'इस समय रामकी आयु २५ वर्षकी तथा मेरी आयु १८ वर्षकी थी।' अर्थात् विवाहके समय राम १३ वर्ष एवं सीता ६ वर्षकी थीं। क्या ऐसा ही मान जावे? वनमें आये रामको १३ वाँ वर्ष था। अर्थात् इस समय रामकी अवस्था ३९ वर्षकी तथा सीताकी आयु २९ वर्षके आसपास ही होनी चाहिये ऐसा प्रतीत होता है।

सीताका निश्चय

रावण सीताको जब समझाने बुझाने लगा तो सीताने अपना अन्तिम निश्चय उसे इस प्रकार कहा—

इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा।
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस ॥ २१ ॥
न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः॥
(अरण्य० ५६)

'हे राक्षस! यह शरीर जड है, इसे बांधकर रख अथवा मार डाल। इस शरीरकी रक्षा मुझे नहीं करनी है किन्तु इस पृथ्वीपर मैं अपनी निन्दा न होने दूंगी।'

सीताका यह निर्णय सबके लिये ध्यानमें रखने योग्य है।

जनस्थानका संरक्षण

रामने जनस्थानके खरदूषणोंके आधिपत्यमें अवस्थित १४००० राक्षसोंकी सेना समाप्त कर दी तथा जनस्थानकी यह छावनी उध्वस्त कर डाली।

इस छावनीको पुनः सुरक्षित करना रावण न भूला। आठ महाबलाढ्य रासक्षोंको उसने साथमें बहुतसी सेना देकर जनस्थानकी ओर भेजा (अरण्य० ५५।१) जनस्थानपर अपना आधिपत्य रखना वह अत्यन्त आवश्यक मानता था। आर्योंका तथा वानरोंका सम्बन्ध अथवा एकता न हो सके, यह बात रावणको अभीष्ट थी। यदि आर्य और वानर एक हो जायेंगे तो उससे मेरा विनाश हो जायगा, इस बातको रावण भलिभाँति जानता था।

कुलहीनकी तापदायक सम्पति

अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते।
अमार्गेणागतां लक्ष्मीं प्राप्येवान्वयवर्जितः ॥ ८ ॥

(अरण्य० ८)

'जिस प्रकार कुलहीन मनुष्य बुरे मार्गसे ऐश्वर्य प्राप्त करके लोगोंको कष्ट पहुँचाता है, उस प्रकार यह सूर्य जबतक असह्य ताप न देने लगेगा तभीतक मैं आगे बढूँगा।' इस प्रकारके वचन सुतीक्ष्णमुनिका सन्देश लेते समय राम कहते हैं।

कुलीन मनुष्य ऐश्वर्यशाली हो जानेपर भी दुसरोंको कष्ट नहीं देता। किन्तु कुलहीन मनुष्य कुमार्गसे ऐश्वर्य प्राप्त हो जानेपर बहुतही कष्टदायक हो जाता है। यहाँ ऐसा ही भाव है।

पद्मपुराणान्तर्गत संक्षिप्त रामायण

सीता हरणके बादकी घटनाओंके दिनोंका उल्लेख इस प्रकार है—

श्री रामचरित्रमें श्री रामरावण युद्धकी घटना कुल मिलाकर तीस दिन तक होती रही, किस मितिको कौनसी घटना हुई इस विषयमें तिथिवार टिप्पणी आरण्यक ऋषि, लोमशऋषि और शेषके संभाषणरूपमें श्री वेद-व्यास प्रणीत पद्मपुराणमें मिलती है।

विश्वामित्र ऋषि अपने यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीराम लक्ष्मणको साथ लेकर सिद्धाश्रमके लिये जब रवाना हुए तो मार्गमें सरयू नदीके किनारे ऋग्वेदान्तर्गत शाकल संहिताकी बला और अतिबला विद्याके मन्त्र प्रथम विश्वामित्र ऋषिने रामलक्ष्मणको सिखलाये। उसके पश्चात् ताटका राक्षसी का वध, बादमें सबीज, सरहस्य मन्त्र एवं सांगोपांग धनुर्वेदकी शिक्षा। इसके पश्चात् सिद्धाश्रममें यज्ञका संरक्षण सातवे दिन सुबाहू मारीच वध, इतना हो जानेपर यज्ञ समाप्तिके बाद विश्वामित्र ऋषि श्री रामलक्ष्मणके साथ जनकका यज्ञ देखनेके लिये निकल पडे। मार्गमें अहिल्याका उद्धार करके और जनकराजाकी नगरीमें श्री शिवधनुष-भङ्ग करके बाजी जीती और जामदग्न्य रामका गर्व हरण करनेके बाद सीतास्वयंवर हुआ।

इस समय श्रीरामकी आयु १५ वर्षकी थी तथा सीताकी आयु ६ वर्ष-की थी। राम-सीता विवाहके अनन्तर पितृगृहमें पिताकी सेवा करके १२ वर्षतक आनन्दपूर्वक रहनेके बाद श्रीरामचन्द्रकी आयुके २७ वें वर्ष श्री-रामको यौवराज्याभिषिक्त करनेका निश्चय होनेपर कैकेयीने एक वरद्वारा भरतको राज्याभिषेक और दूसरे वरद्वारा श्री रामचन्द्रको १४ वर्षोंके वनवासकी आज्ञा राजा दशरथसे मांगी। इस कारण श्रीरामको यौवराज्या-

भिषेक नहीं हुआ तथा उन्हें १४ वर्षके वनवासके लिये जाना पडा। उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्र, सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें जाकर भारद्वाज ऋषि, अत्रिऋषि, अगस्तिऋषि इत्यादि महर्षियोंके सहवासमें चित्रकूट पर्वतपर पर्णकुटी बनाकर उसमें रहने लगे। तीन दिन उदक आहार और चौथे दिन फलाहार करके वेदानुकूल धर्मका आचरण करते थे। इस प्रकार-की उनकी दिनचर्या थी। आगे जाकर जब शूर्पणखा राक्षसी (रावणकी बहन) कष्ट पहुँचाने लगी तो उसे विरूप करके वनसे भगा दिया। उसने रावणको सारी आपबीती सुनाई और सीताके सौन्दर्यका वर्णन करके उसे बलात्कार पूर्वक हर लेनेको प्रोत्साहित किया। रावणने भिक्षुक रूप धारण करके पापबुद्धिसे सीताको लंकामें ले आनेके लिये योजना बनाई और श्रीरामचन्द्रके आश्रममें आकर बलात्कारपूर्वक सीताका अपहरण किया।

माघ व० ८. आठ घटिका दिन चढ जानेपर रावण सीताको बलात्कार-पूर्वक हरकर ले गया।

माघ व० ९. जटायुके साथ युद्ध एवं पक्षच्छेदन, सीताको लंकामें ले जाकर अशोक वनमें त्रिजटाके संरक्षणमें रखना। इसके बाद सीताके लिये रामने अत्यन्त शोक किया और उसके शोधके लिये वे निकल पडे। मार्गमें जटायुने सीताहरणकी घटना कही और प्राणत्याग दिये। उसके पश्चात् ऋष्यमूक पर्वतपर जाकर किष्किंधाधिपति बाली-का वध करके सुग्रीव, हनुमान आदिके साथ अग्नि-साक्षीपूर्वक शपथविधि करके सख्य स्थापित किया, फिर ढूंढते हुए (सीताहरणके पश्चात्) लगभग दस महिनेके बाद जटायुके भाई संपातिने यह खबर दी कि 'सीता लङ्कामें है।'

मार्गं० शु० ९. हनुमानको लंकामें भेजनेका निश्चय होता है।

„ ११. समुद्रोल्लंघन और रातमें सीता भेंट।

मार्ग० शु० १२. शिंशपावृक्षपर बैठकर रातमें जानकीसे सब बातें कहीं और सुनी।

,, १३. जंबुमाली और सात अमात्यपुत्रोंका वध।

,, १४. इन्द्रजितने हनुमानको ब्रह्मास्त्रसे बद्ध किया, सजाके रूपमें पूंछको कपडे लपेटकर जला दिया। उसीसे उस दिन लंकादहन।

,, १५. समुद्र उल्लंघन करके रामकी ओर आनेके लिये हनुमान चल पडते हैं।

मार्ग० व० १. महेन्द्र पर्वतपर आगमन, उसके पश्चात् मधुवन उध्वस्त करके छः दिनों बाद—

मार्ग० व० ७. हनुमान श्रीरामचन्द्रके पास आकर सब बातें साद्यंत बताते हैं।

,, ८. उत्तरा फालगुनी नक्षत्रमें प्रयाणका मुहूर्त किया उसके पश्चात्,

मार्ग० व० ८ से आठ दिन तक यात्रा करके सुग्रीवके साथ रामचन्द्र समुद्र-किनारे आते हैं और समुद्रका उपस्थान करते रहे।

पौष शु० १ से शु. ३ सारी वानरसेना आ पहुँची।

,, ४. बिभीषण रामके पास आये। रामने उनके साथ मित्रता करके उनका अभिषेक किया।

,, ५. समुद्रतरणार्थ समुद्रकी मन्त्रोंद्वारा प्रार्थना करके बादमें चार दिन प्रायोपवेशन किया।

,, १० से १३ चार दिन सेतु बांधा गया।

,, १४. सुवेला पर्वतपर श्रीरामचन्द्र ससैन्य पहुँच गये।

,, १५ से इन तीन दिनोंमें बची हुई वानरसेनाका पार होना।

पौष व० २. सेतुके ऊपरसे आगमन।

,, ३ से १०. आठ दिन लंकाके चारों ओर घेरा देना, विभाजन आदि करना।

,, ११. शुक, सारण नामक राक्षस गुप्तचरके कामके लिये आते हैं।

,, १२. सेनाकी गिनती की गई।

,, १३से३०. रावणने अपनी सेनाकी तैयारी, नियुक्ति और गिनती की।

माघ शु० १. अंगद-शिष्टाई। अंगदके चले जानेपर रामका मायावी सिर और धनुष्य सीताको दिखाकर वश करनेका प्रयत्न।

,, २ से ८. अष्टमीके अन्ततक राक्षस-वानर युद्ध।

,, ९. रातमें इन्द्रजित् एवं रामलक्ष्मण युद्ध। नागमय बाणोंसे इन्द्रजितने रामलक्ष्मणको बांध लिया। मर्मान्तिक चोट खाकर वे गिर पडे। किन्तु इन्द्रजित यह कहता हुआ लंकामें लौट आया कि 'रामलक्ष्मण मर गये।' वानर सेनामें दुःख जनित आर्तनाद सुनाई दिया जिससे पृथ्वी और आकाश व्याप गया।

माघ शु० १०. नागपाश विनाशनार्थ पवनद्वारा गरुडका आवाहन।

,, ११. गरुडागमन और नागपाश-विमोचन।

,, १२. धूम्राक्षका मारुतिने वध किया।

,, १३. अकम्पन हनुमान-युद्ध एवं अकम्पन-वध।

,, १४ से तीन दिनोंतक नील और प्रहस्तका घनघोर युद्ध हुआ और—

व० २. अन्तमें नीलने प्रहस्तका वध किया।

माघ व० २से ४. तीन दिन रामरावण युद्ध और अन्तमें रामने रावणको रणांगणमें पराभूत कर दिया।

माघ व० ५से ८. कुम्भकर्णको उठाया गया ।

,, ९से १४. राम और कुम्भकर्ण युद्ध एवं चतुर्दशीको कुम्भकर्ण-वध ।

,, ३०. लंकामें शोक दिन ।

फाल्गुन शु० १से४. इन चार दिनोंमें विसतन्तु प्रभृति पांच राक्षसोंका वध ।

,, ५से ७. तीन दिनके युद्धके पश्चात् अतिकाय राक्षसका वध ।

,, ८से१२. पांच दिन कुंभ निकुंभके साथ युद्ध और अन्तमें उनका वध ।

,, १३।१४. मकराक्षके साथ युद्ध और वध ।

,, १५ से. इन तीन दिनोंमें इन्द्रजितके साथ घनघोर संग्राम

व० २. करके उसे रणाङ्गणसे भगाया गया । किन्तु इस युद्धमें अनेक वानर सैन्यके घायल हो जानेके कारण

,, ३से७. औषधी लाकर दी गई ।

,, ८से१३. पांच दिनके महासंग्रामके पश्चात् लक्ष्मणने इन्द्रजितका वध किया ।

,, १४. रावणने युद्ध-दीक्षा ली ।

,, ३०. स्वयं रावणने युद्ध आरम्भ किया ।

चैत्र शु० १से५. प्रचुरादि राक्षसोंका वध ।

,, ६ से ८. महापार्श्व एवं विरूपाक्ष-वध ।

,, ९. रावणकी फेंकी हुई शक्ति लक्ष्मणको लगी । किन्तु कोपाविष्ट रामने रावणपर बाणोंकी वर्षा करके उसे पुनः रणांगणसे विमुख कर दिया ।

,, १०. रामका अन्य राक्षसोंके साथ युद्ध ।

चैत्र शु० ११. इन्द्रने अपने रथ और सारथी (मातली) को रामके पास भेजा (अबतक रावण रथपर चढकर और राम पैदल युद्ध कर रहे थे!!!)

,, १२से व०१४. अठारह दिन समान वाहन रामरावण युद्ध होकर चैत्र व० १४ के दिन रावणका वध हुआ।

वा० ३०. रावणका अन्त्य संस्कार।

वैशाख शु० १. रणांगणमें रहनेके पश्चात्,

,, २. विभीषण-राज्याभिषेक।

,, ३. सीता-शुद्धि और वानरसेनाको जीवित करनेके लिये रामका देवताओं द्वारा वर प्राप्त करना।

,, ४. पुष्पक विमानमें लक्ष्मण, सीता आदिके साथ बैठकर अयोध्याके लिये प्रस्थान।

,, ५. पूरे चौदह वर्षोंके बाद फिर भरद्वाज आश्रममें आगमन।

,, ६. नंदिग्रामसे भरतके साथ अयोध्यामें आगमन।

,, ७. श्रीराम राज्याभिषेक।

कुल युद्ध दिन माघ शु० २ से चैत्र कृष्ण १४ शी तक ८७ दिन। इनमें जबसे रावण पहिली बार युद्धभूमिमें आया तबसे लेकर अर्थात् माघ वद्य० २ से ७२ दिन बाद रावण युद्ध हुआ।



